प्रमाण-पत्र

(1) प्रमाणित किया जाता है कि प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध मौलिक रूप में शोध छात्रा का ही कार्य है।

(2) इस शोध छात्रा ने मेरे निर्देशन में निर्धारित अवधि तक नियमानुसार शोधकार्य किया है।

(3) इस अवधि में इसने विभाग में वांछित उपस्थिति भी दी है।

दिनांक 14 नवम्बर, 1990

प्रमाता

(हस्ताक्षर) 29.11.90

(डा० कृष्ण दत्त अवस्थी)

एम०ए०, पीएच०डी० (द्वय) डी०लिट्०

सेवानिवृत्त-आचार्य, हिन्दी-विभाग

पं० जवाहरलाल नेहरू महाविद्यालय, बांदा (उ०प्र०)

त्रिलोचन के काव्य का समीक्षात्मक-अध्ययन

[बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी की पी.एच.डी. उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध]
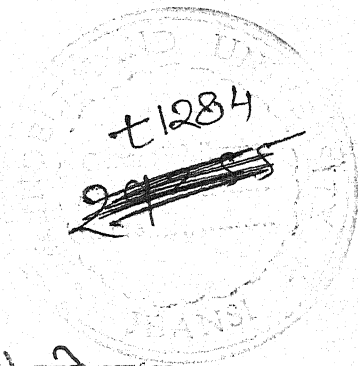
शोध-छात्रा

कु० अर्चना शाही एम.ए., (हिन्दी) बी.एड.

पर्यवेक्षक-

डॉ० कृष्णदत्त अवस्थी एम.ए., पी.एच.डी. [द्वय] डी. लिट्

पूर्व आचार्य, हिन्दी-विभाग

पं० जवाहरलाल नेहरू महाविद्यालय, बाँदा (उ० प्र०)

कीर्ति की पूर्णिमा }
सम्वत् २०४७ वि० }

'त्रिलोचन के काव्य का समीक्षात्मक अध्ययन'

विषय-सूची

(क्रमशः)

भूमिका

साहित्य की धारा एक प्रवहमान सरिता की भांति गतिशील होती है। उसमें उत्तरोत्तर विकास होता रहता है। देशकाल और परिस्थिति के अनुसार साहित्य भी उत्तरोत्तर अपने में प्रगतिशील होता है। हिन्दीसाहित्य के इतिहास का अध्ययन करने पर भी यही बात सिद्ध होती है कि जो काव्य-धारा किसी समय अत्यन्त लोकप्रिय होती है, वह कालान्तर में लुप्त सी हो जाती है। उदाहरणार्थ — द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मक कविता के विरुद्ध छायावादी काव्य अत्यन्त लोकप्रिय हुआ किन्तु कुछ समय बाद प्रगतिवाद ने उसे अपदस्थ कर दिया और काव्य मेंएक नये रूप कासृजन होने लगा। काव्य-धारा की इस परिवर्तनशीलता में सम्प्रति प्रगतिशीलता की धारा का आवेग मुखर है। जब मैं स्नातकोत्तर-कक्षाओं में अध्ययन कर रही थी, तभी से मेरी अभिरुचि और जिज्ञासा प्रगतिशील काव्य के प्रति उत्पन्न हो गयी थी। उस अंकुर को पल्लवित करने का श्रेय मेरे विभागाध्यक्ष डा0रणजीत को है, जिन्होंने मुझे समय-समय पर अपने अमूल्य सुझाव देकर मुझे प्रगतिशील-काव्य के गम्भीर अध्ययन करने में उत्प्रेरित एवं प्रोत्साहित किया।

उन्हीं के सुझाव से मैंने अपने महाविद्यालय के वरिष्ठ-प्राध्यापक श्रद्धेय डा0कृष्णदत्त अवस्थी को अपना शोध-पर्यवेक्षक बनाया और उन्होंने ने ही मुझे 'त्रिलोचन शास्त्री के व्यक्तित्व एवं कृतित्व' पर शोध करने की दिशा दी, जिसका सुपरिणाम प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध है।

इसके प्रथम अध्याय में कविवर त्रिलोचन के जीवन-परिचय पर गम्भीरता से विचार किया गया है। शैशव से ही उन्हें कितना आर्थिक संकट झेलना पड़ा, कितने संघर्षों से लोहा लेना पड़ा, इन सब बातों के मार्मिक तथ्यों का उल्लेख किया गया है। उनकी पत्नी ने अशिक्षित होकर भी उनके जीवन को दूर-

दूर तक प्रभावित किया है। इसके भी रोचक अंश प्रस्तुत किये गये हैं। शास्त्री जी से स्वयं भेंट करके उनके जीवन की अनेक अलिखित विशेषताएँ ज्ञात की गयीं और अपने प्रतिपाद्य-विषय को मौलिक बनाने का प्रयास किया गया है। जीविका के लिए उन्हें अनेक क्षेत्रों का भ्रमण करना पड़ा, इसका भी सजीव उल्लेख किया गया है। अध्याय के उत्तरार्ध में उनकी समस्त उपलब्ध एवं प्रकाशित कृतियों का सामान्य परिचय दिया गया है, जिसके आधार पर कोई भी पाठक किसी कृति का सामान्य समीक्षात्मकपरिचय प्राप्त कर सकता है।

द्वितीय अध्याय में कवि के 'भाव तत्व' की विस्तृत तथा सोदाहरण समीक्षा प्रस्तुत की गयी है। इसमें सर्वप्रथम श्रृंगार आदि रसों की स्थिति पर विचार करते हुए यह दिखलाया गया है कि कवि ने प्रत्येक रस का न्यूनाधिक मात्रा में परिपाक प्रस्तुत किया है। यथार्थवादी प्रगतिशील दृष्टिकोण उनकी मुख्य प्रवृत्ति है। जिसका पालन इस रसात्मक क्षेत्र में भी किया गया है। रसों के अतिरिक्त कवि की अन्य प्रमुख भावनाओं का भी विश्लेषण किया गया है। कवि के प्रकृति-चित्रण की विशेषताओं का उद्घाटन करने के लिए उनकी सभी कृतियों से उद्धरण चुने गये हैं और प्रकृति के विविध रूपों में से उसके आलम्बन रूप को सुन्दरतम सिद्ध किया गया है। वस्तु-चित्रण के क्षेत्र में ग्रामीण-जीवन एवं नागरिक-जीवन, इन दोनों के चित्र लिए गये हैं, जिनमें ग्रामीण-जीवन के प्रति कवि के स्वाभाविक-अनुराग को सिद्ध किया गया है। इसी सन्दर्भ में मानवतावाद, श्रमिक-सहानुभूतिजैसी मानवीय-संवेदनाओं का भी विभाजन किया गया है और यह सिद्ध किया गया है कि कवि का भावपक्ष अत्यंत समृद्ध है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' भी इसकी भावना का चरम-बिन्दु है।

तृतीय अध्याय में कवि के अलंकारों का सोदाहरण परिचय दिया गयाहै, जिसमें क्रमशः कवि के काव्य में प्रयुक्त शब्दालंकारों एवं अर्थालंकारों का सोदाहरण-परिचय प्रस्तुत किया गया है, और निष्कर्ष रूप में प्रस्तुत किया गया है कि

कवि ने स्वाभाविक रूप से अलंकारों का प्रयोग किया है, चमत्कार प्रदर्शन के लिए नहीं। शब्दालंकारों में 'वीप्सा' अलंकार का प्रयोग अधिक किया गया है और अर्थालंकारों में उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक विशेष रूप से प्रयुक्त हुए हैं। उपमाओं की नवीनता एवं उत्प्रेक्षाओं कीमौलिकता सराहनीय है। नवीन अलंकारों में मानवीकरण, विशेषण-विपर्यय और ध्वन्यर्थ-व्यंजना के भी प्रयोग मिलते हैं, किन्तु सर्वाधिक 'मानवीकरण' को महत्व दिया गया है। उनके इस कल्पना-सौन्दर्य में प्रगतिशील यथार्थ-दृष्टिकोण प्रायः प्रधान है।

चतुर्थ अध्याय में त्रिलोचन के काव्य का बुद्धिपक्षीय-अध्ययन प्रस्तुत किया गया है, जिसमें कवि के विचारों का सोदाहरण विश्लेषण करते हुए यह सिद्ध किया गया है कि कवि मुख्य रूप से प्रगतिशील विचारधारा का पोषक है और मानवतावादी जीवन-दर्शन इन्हें विशेष प्रिय है। वे समाज में वर्गभेद, जातिभेद आदिको उचित नहीं समझते और शासन तथा व्यवस्था के प्रति एक प्रखर आलोचक की भांति व्यंग्यात्मक दृष्टिकोण रखते हैं। उन्हें किसानों, मजदूरों, श्रमिकों, दलितों और पीड़ितों के प्रति गहरी सहानुभूति है और यथार्थ के प्रति वे अत्यधिक ईमानदार हैं। इन विचारों के अतिरिक्त उनके अन्य स्फुटिक विचारों का भी विश्लेषण किया गया है, जो उनके व्यक्तिगत-जीवन की अनुभूति से अनुस्यूत हैं।

पंचम अध्याय में कवि की भाषा-शैली की विस्तृत समीक्षा की गयी है और यह सिद्ध किया गया है कि उनकी भाषा व्याकरण-सम्मत है और वे मूल-रूप में लोकभाषा के पक्षधर हैं। वे केवल कोशों की शहनाई नहीं बजाना चाहते, अपितु कल-कारखानों, किसानों और मजदूरों की बनी बनाई भाषा के पक्षधर हैं, क्योंकि वह अकृत्रिम होती है। उनकी रचनाओं में संस्कृत, उर्दू, फारसी, और चलती-फिरती अंग्रेजी के शब्दों के अतिरिक्त आंचलिक शब्दों का भी चुभता हुआ प्रयोग किया गयाहै। शैली-सौन्दर्य की दृष्टि से उनमें बिम्ब-योजना, नाद-सौन्दर्य, चित्रात्मकता एवं गुणात्मकता का यथेष्ठ समावेश है। छन्दों की दृष्टि से वे हिन्दी में

'सॉनेट' के तो सम्राट् सिद्ध होते हैं। इसी प्रकार हिन्दी में सर्वाधिक 'बरवै' छन्द का प्रयोग करके इस छन्द के भी एक मात्र अधिकारी कवि के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके हैं। वे उर्दू की 'ग़ज़ल-शैली' के भी सिद्धहस्त कवि हैं। इन्होंने संस्कृत-वर्णवृत्तों को भी सफलता के साथ लिखा है। इन्द्रवज्रा, वंशस्थ, शिखरिणी आदि छन्दों के प्रयोग इस बात के प्रमाण हैं।

षष्ठ अध्याय में त्रिलोचन के काव्य के शिवम् तत्व पर विचार करते हुए उनके समाजवादी दृष्टिकोण को यथार्थपरक शैली में व्यक्त किया गया है और यह दिखलाया गया है कि वे साम्यवाद से कहाँ तक प्रभावित हैं। वे वर्गहीन-समाज के पोषक हैं तथा धर्म औरईश्वर पर उनको कोई विश्वास नहीं है। वे लोककल्याण की कामना से उत्प्रेरित हैं, अतः उनके काव्य में उद्बोधन-तत्व की प्रधानता है। समाज की बुराइयों का खुलकर उद्घाटन करने में वे कोई संकोच नहीं करते। वे सर्वोदय के विकासवादी सिद्धान्त के समर्थक हैं, इसलिए वे रूढिविहीन-नूतन-समाज की स्थापना करना चाहते हैं, जिसमें मनुष्य-मनुष्य के बीच भेदभाव की खाई समाप्त हो जाये और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना का विकास हो सके।

सप्तम अध्याय में उन्नीस सौ पैंतीस से लेकर अब तक के प्रगतिशील काव्य का संक्षिप्त एवं सारगर्भित परिचय दिया गया है और प्रगतिशील कवियों की परम्परा में उन्हें प्रथमपंक्ति का कवि घोषित किया गया है।

अध्याय आठ में समस्त शोध-प्रबन्ध का उपसंहार लिखते हुए अपने उन मौलिक निष्कर्षों को प्रस्तुत किया गया है, जो इस शोध-प्रबन्ध के महत्वपूर्ण निष्कर्ष हैं।

इस प्रकार यह समस्त शोध-प्रबन्ध अनेक सुधी समीक्षकों, अधिकृत-विद्वानों एवं प्रखर मनीषियों की सहायता से पूर्ण हुआ है। मैं उन सभी महानुभावों का ऋण स्वीकार करती हूँ, जिनके अमूल्य-सुझावों, तर्कों एवं मौलिक संकेतों ने मुझे

सम्बल प्रदान किया है। सर्वप्रथम अपने महाविद्यालय के पूर्व प्राचार्य डा0गोरखनाथ द्विवेदी एवं वर्तमान प्राचार्य डा0बी0एन0 सेठ के प्रति हार्दिक-श्रद्धा व्यक्त करती हूँ कि जिनकी कृपा से मुझे पं0 जवाहर लाल नेहरू महाविद्यालय बाँदा के पुस्तकालय का पर्याप्त लाभ प्राप्त हुआ।

मैं कविवर त्रिलोचन शास्त्री का ऋण किन शब्दों में स्वीकार करूँ, जिन्होंने मुझे अपने साक्षात्कार में ऐसी दुर्लभ और अप्राप्य सूचनाएँ प्रदान कीं, जिनसे मेरे शोध-प्रबन्ध में विशेष मौलिकता आ गयी है।

जिन बाह्य विद्वानों से मुझे इस शोध-प्रबन्ध के प्रणयन में विशेष-सहायता मिली है, उनमें डा0 विश्वम्भर दयालु अवस्थी, अध्यक्ष- हिन्दी-विभाग, अतर्रा-स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अतर्रा(बाँदा) का नाम मुख्य है। इनके अतिरिक्त डा0 विश्वनाथ त्रिपाठी(दिल्ली विश्वविद्यालय), डा0परमानन्द श्रीवास्तव(गोरखपुर विश्वविद्यालय), डा0प्रेम नारायण शुक्ल (कानपुर विश्वविद्यालय), डा0रामविलासशर्मा (आगरा विश्वविद्यालय), डा0यतीन्द्र तिवारी, प्राचार्य- अमपुर डिग्री कालेज कानपुर, डा0राममूर्ति त्रिपाठी, अध्यक्ष हिन्दी विभाग, सागर विश्वविद्यालय, डा0के0डी0बाजपेयी, (सागर विश्वविद्यालय) डा0सरयू प्रसाद अग्रवाल (लखनऊ विश्वविद्यालय) आदि का नाम उल्लेखनीय है।

मेरे महाविद्यालयके विभागाध्यक्ष(हिन्दी) श्रद्धेय डा0रणजीत, डा0 राम गोपाल गुप्त, डा0चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित, डा0श्रीमती मनोरमा अग्रवाल, डा0 ज्ञान प्रकाश तिवारी, डा0 मौर्या जी, प्रो0उषा टण्डन, प्रो0जे0पी0नाग, प्रो0प्रमोद सैराहा, प्रो0वी0के0मेनन, डा0वी0के0त्रिपाठी, आदि गुरुओं से एवं प्रगतिशील कवि केदारनाथ अग्रवाल तथा नरेन्द्र 'पुण्डरीक' और श्री बालकुसुम जी की सहायता का ऋण स्वीकार करती हूँ, इन्होंने मुझे समय-समय पर अनेक पत्र पत्रिकाएँ देकर अनुगृहीत किया है और मुझे जो आशीर्वाद एवं प्रेरणा प्राप्त हुई उन सबके प्रति मैं अपनी कृतज्ञता अर्पित करती हूँ।

मैं अपने शोध पर्यवेक्षक डा0 कृष्णदत्त अवस्थी का ऋण किन शब्दों में व्यक्त करूँ, जिनके बहुमूल्य मार्गदर्शन एवं अथक-परिश्रम से यह शोध-प्रबन्ध अपने समय की सीमा के अन्तर्गत ही पूर्ण हो सका।

अन्त में मैं अपने परिवार के सभी सदस्यों के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने मुझे हर सम्भव सहायता देकर इस शोध-प्रबन्ध के पूर्ण होने में अपनी सक्रिय भूमिका निभायी है। मेरे पूज्य पिता श्री अनिरूद्ध शाही एवं पूज्या माता श्रीमती देवरती शाही का असीम-वात्सल्य मुझे सदैव उन्नति पथ में अग्रसर होने का बल देता है। मेरे अग्रज श्री जंगबहादुर शाही एवं श्री ब्रजेश कुमार शाही तथा श्री राम बहादुर शाही मुझे अध्ययन क्षेत्र में बढ़ने के लिए सदैव प्रेरित करते रहते हैं, अतः मैं यहाँ इन लोगों के सम्बल को असीम सौहार्द्र के साथ स्मरण करती हूँ। इसी प्रकार मेरे अनुज रमेश शाही तथा अग्रजा श्रीमती लक्ष्मी सिंह एवं श्रीमती रानी सिंह के प्रति भी कृतज्ञ हूँ। इन सबसे मुझे अपना मनोबल बनाये रखने में सहायता मिली है।

अत्यन्त स्नेहमयी बहन 'ऋतु' का स्मरण बार-बार आ जाता है, क्योंकि इसकी प्रेरणा एवं विशेष सहायता के द्वारा ही मेरी अनेक समस्याओं का समाधान हो सका है। उसकी इस अमूल्यसहायता के बिना तो यह शोध-प्रबन्ध, कदाचित अपूर्ण ही रह जाता। अतः मैं उसे धन्यवाद न देकर अपने को ही धन्यवाद दिये लेती हूँ, क्योंकि उसने मुझे अपने से अभिन्न ही माना है।

अस्तु, इस शोध-प्रबन्ध से यदि साहित्य का कुछ भी उपकार हो सका और प्रगतिशील-काव्य के पाठकों का कुछ भी ज्ञान-वर्धन हो सका तो मैं अपना श्रम सफल समझूँगी।

अर्चना शाही

अर्चना शाही

" प्रमाण पत्र "

प्रमाणित किया जाता है कि बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झांसी की हिन्दी शोध छात्रा 'कु० अर्चना शाही' पं० जवाहर लाल नेहरू कालिज बांदा, आज दिनाङ्क १४, ८, ९८ को मेरे आवास गृह सागर में मिली। अपनी पी० एच० डी० उपाधि हेतु प्रस्तुत रूपरेखा के प्रथम अध्याय के सम्बन्ध में मुझसे जो प्रश्नावली पूछी उसका यथार्थ उत्तर मैंने प्रस्तुत किया। भेंटवार्ता के आधार पर उक्त उत्तर प्रमाणिक है।

त्रिलोचन शास्त्री

(त्रिलोचन शास्त्री)
अध्यक्ष
मुक्तिबोध सृजन पीठ
विश्वविद्यालय सागर (म० प्र०) [illegible]

प्रथम अध्याय

त्रिलोचन : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

प्रथम अध्याय

'त्रिलोचन' व्यक्तित्व एवं कृतित्व

मनुष्य समाज में उत्पन्न होता, फलता और पुष्ट होता है, अतः उसका समस्त-जीवन समाज से ही अनुप्राणित होता है। इसीलिए समाज-शास्त्रियों ने मनुष्य को एक सामाजिक प्राणी कहा है।" कवि अन्य व्यक्तियों की भाँति इस समाज का ही एक अभिन्न अंग है, लेकिन वह सामान्य व्यक्तियों की भाँति न होकर एक विशिष्ट-व्यक्ति होता है। वह स्वयं समाज से प्रभावित भी होता है और समाज को भी प्रभावित करता है।'

इस उक्ति के अनुसार कवि और समाज दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। कवि में इतनी शक्ति होती है कि वह सोये हुये समाज को जागृत कर देता है, उसे मनचाही दिशा में मोड़ देता है। इसीलिए कवि को आदर देते हुए संस्कृत के विद्वानों ने 'कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूः' कहकर उसका मूल्यांकन किया है।

इस बात को ध्यान में रखते हुए यह समझना आवश्यक है कि कवि का जन्म किस वंश परम्परा में हुआ है?, उसका परिवेश कैसा है?, किन परिस्थितियों में उसने अध्ययन किया, उसका पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन कैसा रहा?, उसकी काव्य-प्रेरणा का मूल स्रोत क्या था?, उसका स्वभाव तथा जीवन-दर्शन क्या था? और उसने क्या लिखा और क्यों? इन सब बातों का परिज्ञान करना आवश्यक होता है। मनोवैज्ञानिकों और शिक्षाशास्त्रियों का भी यही मत है कि "वंश परम्परा और वातावरण ये दोनों मिलकर व्यक्ति के समग्र-व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं।"

उपर्युक्त बातों को दृष्टिपथ में रखते हुए यहाँ पर अपने आलोच्य कवि 'त्रिलोचन शास्त्री' के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का उल्लेख करना सुसंगत लगता है। अतः सर्वप्रथम कवि का संक्षिप्त जीवनपरिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

जन्म स्थान, समय एवं पैतृक परिचय :-

प्रगतिशील कवि त्रिलोचन का जन्म उत्तर प्रदेश के 'सुल्तानपुर'जनपद में स्थित'कटघराचिरानी पट्टी' नामक ग्राम में 20अगस्त, सन् 1917 ई0 में सोमवार के दिन एक अत्यन्त साधारण कृषक परिवार में हुआ। इनके पिता का नाम 'श्री जगरदेव सिंह' और माता जी का नाम'मनवरता देवी' था। ये अपने पिता की पाँचवीं सन्तान हैं। इनके शैशव का नाम 'वासुदेव' था। किन्तु आगे चलकर गुरू ने इन्हें 'त्रिलोचन' नाम से विभूषित किया और आज भी यह इसी नाम से जाने जाते हैं।

जब मैंने इस शोध प्रबन्ध के लेखन से पूर्व उनका एक साक्षात्कार लिया और पूँछा कि आपकी जाति क्या है? तब उन्होंने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया—" मैं हरिजन हूँ।" उनके इस अप्रत्याशित उत्तर से मैं कुछ क्षणों के लिए अवाक् सी रह गयी। मेरी इस स्थिति को समझते हुए वे पुनः अपने उस कथित उत्तर का भाष्य करते हुए बोले —"पहले मैं हरि-जन अर्थात् मनुष्य हूँ वैसे मेरी क्षत्रिय जाति है।"[1]

इन्होंने अपने पिता जी के विषय में लिखा है कि वे हृष्ट-पुष्ट एवं उन्नत शरीर के शक्तिशाली व्यक्ति थे। स्वभाव से अत्यन्त दयालु , धर्मात्मा, परोपकारी एवं कष्ट सहिष्णु थे। यथा —

" विचारता हूँ मैं किन में
गिनूँ तुम्हें - देवों में या ऋषियों में, जो हो,
तुम महिमा-मंडित मनुष्य थे, पाट ताल को
खेत बनाया, मेंड़ई से घर किया, दिया धो
कल्मष दरिद्रता का बस में किया काल को

---

1 दिनांक 5-8-89 को सागर में लिए हुए साक्षात्कार के आधार पर।

ज्ञान पिपासा और धर्म से हुए यशस्वी

धीर वीर गंभीर तपोधन और मनस्वी।"[1]

त्रिलोचन के पिता एक साधारण शिक्षित व्यक्ति थे। और 'रामायण' का सस्वर पाठ करने में विख्यात एवं विशेष लोकप्रिय थे।[2] सम्भवतः इनके परोपकारी एवं सन्त स्वभाव के कारण ही इन्हें 'बैरागी बाबू' के नाम से सभी ग्रामीण जनते एवं पुकारते थे।'[3]

त्रिलोचन की माता उत्तम क्षत्रिय परम्परा की क्षत्राणी थी। अतः उनके स्वभाव में क्षत्रियत्व का प्रभाव था। वे अपने पुत्र 'वासुदेव' को हृष्ट-पुष्ट एवं शक्तिशाली रूप में देखना चाहती थी। ताकि उनका बालक गाँव के दुश्मन पट्टीदारों से निपट सके। इसी दृष्टि से वे अपने बालक के खान-पान पर पूर्ण ध्यान रखती थीं।

शैशव :—

त्रिलोचन ने अपने भाई-बहनों का स्नेह नहीं पाया क्योंकि इनके दो भाइयों तथा दो बहनों का असमय ही स्वर्गवास हो गया। अतः शैशव से ही संघर्ष की भूमिका में पदार्पण करना पड़ा। घर की आर्थिक स्थिति शोचनीय थी। इसलिए इनके माता-पिता ने इन्हें लगभग पाँच वर्ष की अवस्था में ही इनको ननिहाल(कनौरा गंज) भेज दिया था। इसके पीछे पैतृक दृष्टिकोण यह था कि उनका प्रिय बालक भलीभाँति विद्या अध्ययन कर सकेगा। विधि-विधान कुछ विपरीत था। इन्हें वहाँ घर घर के काम-काज से अवकाश नहीं मिलता था। यदि अवकाश मिला भी तो घर के मवेशियों को चराने के लिए जाना पड़ता था। बड़ी कठिनाई से सप्ताह में एक या दो दिन के

1- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 15

2- त्रिलोचन के काव्य राजू0एम0फिलीप, पृ0 16

लिए विद्यालय में जाने काअवसर मिलता था। वे आकस्मिक रूप से घूमते हुए एक बार भाटों के समाज में पहुंच गये। वे लोग कवित्त गाकर अपनी जीविका चलाया करते थे। त्रिलोचन की इच्छा हुई कि मैं भी कविता सीखूँ और गंगा नामक एक भाट ने इनकी विनम्रता से प्रभावित होकर इस शर्त पर इन्हें कवित्त सिखाये, कि तुम इन्हें कभी लिपिबद्ध नहीं करोगे।[1] इस घटना को उन्होंने मुझसे एक भेंटवार्ता में बतलाया कि उस भाट द्वारा दी गयी कला अब और विकसित नहीं हो पायेगी क्योंकि मुझे अपने गुरू को दिये गये वचन का निर्वाह करना है।

ननिहाल में कुछ वर्ष रहने के पश्चात् ही यह अपने घर चिरानीपट्टी वापस आ गये। अपने जीवन संघर्ष की चर्चा करते हुए उन्होंने मुझसे बतलाया कि "एक बार विद्यालय में इनका एक बालक का झगड़ा हो गया और उसने कुश्ती में इन्हें पटक दिया। घर आकर इन्होंने अपने शरीर को सशक्त बनाने का प्रण लिया और इतने दृढ़ हो गये कि अपने सिर से पक्के ईंटों को भी फोड़ देते थे। एक दिन उन्होंने उस लड़के को कुश्ती के लिए ललकारा और उसे पटक कर अपनी पराजय का बदला ले लिया।"[2] इस घटना ने त्रिलोचन को संघर्षों से जूझने के लिए तैयार किया। उनके अजेय व्यक्तित्व के निर्माण में इस प्रकार की अनेक घटनाओं ने सहयोग दिया है।

त्रिलोचन के पिता अपने इस पुत्र को सन्तों के समान ज्ञानी देखने के महत्वाकांक्षी थे। इसलिए उन्होंने बचपन में ही त्रिलोचन को अपने एक मित्र स्वामी जी की सेवा में सौंप दिया था। त्रिलोचन उनके शिष्य के रूप में आसाम से लेकर पंजाब तक विभिन्न वनों-पर्वतों और ग्रामीण अंचलों में वर्षों तक पर्यटनशील रहे और समझ आने पर वे अपने गांव आकर वहीं रहने लगे।

1- दिनांक 5-8-89 के साक्षात्कार पर आधारित

2- वही,

शिक्षा —

त्रिलोचन की प्रारम्भिक शिक्षा ग्रामीण अंचल से ही प्रारम्भ हुई और वे एक प्रतिभशाली मेधावी विद्यार्थी के रूप में जाने जाने लगे। एक दिन की घटना है कि इनके गुरु श्री देवदत्त त्रिपाठी ने कक्षा में 'माहेश्वर सूत्रों'[1] को कण्ठस्थ करने के लिए सभी छात्रों को आदेश दिया। इनके जाते ही सभी छात्र खेल में मग्न हो गये। जब लौटकर गुरु जी ने सभी छात्रों से क्रमशः माहेश्वर सूत्र सुनाने के लिए कहा तब कोई न सुना सका। किन्तु विद्यार्थी वासुदेव (त्रिलोचन) ने उन्हें आद्योपान्त शुद्ध रूप में सुना दिया। गुरु जी वासुदेव की प्रबल प्रतिभा से आश्चर्य-चकित रह गये और उन्होंने इसी आधार पर वासुदेव को 'त्रिलोचन' नाम से विभूषित कर दिया।

त्रिलोचन के पिता जी अपने पुत्र को सुशिक्षित बनाना चाहते थे। किन्तु इनकी माताजी इन्हें पढ़ाने के पक्ष में नहीं थीं। उनका दृष्टिकोण था कि पढ़ेलिखे लोग देहाती जीवन में सफलता नहीं प्राप्त कर पाते। किन्तु पिता की अभिरुचि एवं दादी(बुआ) की इच्छा के आधार पर गांव से कुछ दूर एक विद्यालय में 'धरती' शीर्षक कविता संग्रह में त्रिलोचन ने स्पष्ट लिखा है —

"पढ़ लिख कर क्या होगा, पढ़ना अब बंद करो इसका,
घर काम करे,
पढ़ना हमारे नहीं सहता पर बात मेरी कौन यहाँ सुनता है?'[2]

ग्रामीण शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् शहर में पढ़ने की तैयारी हुई। वहाँ भी ग्रामीण अंधविश्वास ने रोड़े अटकाये। ग्रामीणों को विश्वास था कि जो व्यक्ति शहर पढ़ने जाता है, उसकी मृत्यु हो जाती है किन्तु दादी की कृपा से यह विघ्न भी समाप्त हो गया।

1- अइउण - - हल(ये चौदह सूत्र माहेश्वर सूत्र कहलाते है जिन्हें आचार्य पाणिनि ने शंकरजी से प्राप्त किये थे)—नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नवपंचवारम्।
उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धानेतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम्।।
(लघुसिद्धान्त कौमुदी -टिप्पणी-पृ0 2गीताप्रेस गोरखपुर)

2-धरती, पृ0 82

बुआ जी ने इनकी माताजी को इन शब्दों में समझाया था — त्रिलोचन के शब्दों में —

"मैंने श्रद्धा से, प्रेम से, निष्ठा से,
विद्या को दान कर दिया है,
जान-बूझकर दान कैसे फेर लूँ,
ऐसा कभी नहीं हुआ —
विद्या माता ही अब इसको निरखें-परखें।
रक्षा और पालन-पोषण करें।"[1]

इस प्रकार त्रिलोचन नगर में आकर विद्या अध्ययन करने लगे। जैसे ही जैसे पढ़ाई का स्तर ऊँचा होता गया, इनकी आर्थिक परिस्थिति उत्तरोत्तर जटिल होती गयी। अध्ययन में मेधावी होने के कारण सभी छात्र इन्हें मानते थे। अतः दो धनी मित्र छात्रों ने इन्हें दस-दस रुपया मासिक सहयोग देना प्रारम्भ कर दिया। इसके अतिरिक्त इनकी आर्थिक विपन्नता से द्रवित होकर एक साधु ने भी इनकी आर्थिक सहायता की। कभी पेट भर भोजन मिलता था, तो कभी केवल चने खाकर ही संतोष करना पड़ता था। इस आर्थिक संघर्ष को झेलने के लिए वे रात्रि में रिक्शा-चालक का भी कार्य करते थे।

यह संस्कृत का अध्ययन तो ग्रामीण क्षेत्र में ही करते रहे किन्तु इसके बाद भी उन्होंने संस्कृत शिक्षा में पंजाब से 'शास्त्री' की उपाधि प्राप्त की। इतना ही नहीं काशी में रहकर भी उन्होंने संस्कृत के अध्ययन में दक्षता प्राप्त कर ली। फारसी की शिक्षा प्राप्त करने के लिए यह एक मौलवी के पास जाते थे और पूर्ण श्रद्धा के साथ इन्हें गुरु मानते हुए सात वर्ष तक फारसी का एवं उर्दू का अध्ययन करते रहे। इस प्रकार अपने अध्यवसाय और स्वाध्याय के कारण इन्होंने अपने ज्ञान को विस्तृत कर लिया। इन्होंने शैक्षिक उपाधियों को विशेष महत्व नहीं दिया किन्तु मित्रों के अनेक बार आग्रह से इन्होंने वाराणसी से ही बी०ए० तथा अंग्रेजी-साहित्य लेकर काशी विश्वविद्यालय से एम०

1- धरती, पृ० 82

ए० पूर्वार्द्ध तक अध्ययन किया।

त्रिलोचन एक असाधारण ज्ञान पिपासु विद्यार्थी रहे हैं। फलतः इन्होंने विभिन्न क्षेत्रों से ज्ञानार्जन प्राप्त करके अपने को सम्पन्न बनाया। चाहे स्वदेशी साहित्य हो या विदेशी, चाहे दर्शन हो या भाषा विज्ञान, सभी क्षेत्रों में इन्होंने अपने अध्ययन मनन और चिन्तन के द्वारा दक्षता प्राप्त कर ली। इसके अतिरिक्त स्फुटिक रूप में जहाँ जिससे, जो कुछ ज्ञान मिलने की सम्भावना थी, उसके प्रति पूरी लगन और निष्ठा के साथ लगे रहे। इन्होंने अपनी यायावरी प्रवृत्ति से भी विद्या प्राप्ति में सहयोग पाया है इन्होंने मक्का-मदीना जैसे मुस्लिम संस्कृति प्रधान क्षेत्रों का भ्रमण किया है, और भारत के प्रायः सभी क्षेत्रों का भ्रमण कर चुके हैं। जिससे इनका देश काल और वातावरण का ज्ञान अत्यन्त व्यापक हो गया है।

विवाह एवं पारिवारिक जीवन :-

सन् उन्नीस सौ छब्बीस ई० के आसपास समाज के वातावरण में बाल - विवाह का प्रचलन था, जिसके कारण ग्यारह वर्ष की अवस्था में ही त्रिलोचन का विवाह संस्कार 'जयमूर्ति' नामक एक ग्रामीण बालिका के साथ सम्पन्न हो गया। जिसमें सात्विकता के साथ क्षत्रिय प्रकृति के अनुकूल स्वाभिमान की मात्रा विद्यमान थी और ग्रामीण होने पर भी उनकी बुद्धिमत्ता में कोई कमी नहीं थी। अपने विवाह के सम्बन्ध में शास्त्री जी ने एक साक्षात्कार में मुझे एक रोचक संस्मरण इस प्रकार बतलाया -

"जब मैं विवाह मण्डप में पहुँचा, तो वहाँ पर उपस्थित सभी स्त्रियाँ आपस में धीमे-धीमे बातें करने लगीं। जब मैंने ध्यान देकर सुना तब पता चला कि वे आपस में यह बात कर रही हैं कि दूल्हा बहुत बूढ़ा है।"[1]

1- दिनांक 5-8-89 के साक्षात्कार के आधार पर।

सम्भवतः इस कथन का यह आशय रहा होगा कि वर की अवस्था की तुलना मे कन्या की अवस्था बहुत कम (लगभग पाँच वर्ष की) रही होगी। जबकि प्रचलन के अनुसार समान आयु में ही विवाह होना चाहिए था। सन् उन्नीस सौ अट्ठाइस ई0 के आसपास त्रिलोचन जी के प्रथम पुत्र 'जयप्रकाश सिंह' का जन्म हुआ। जो इस समय 'शीलांग' में शीलांग नार्थ ईस्टर्न हिल यूनीवर्सिटी में हिस्ट्री के प्रोफेसर हैं और इनकी पुत्रवधू भी असम की ही हैं। शास्त्री जी उनके व्यवहार से सन्तुष्ट नहीं रहे। प्रथम पुत्र के जन्म के पश्चात् इनके दाम्पत्य जीवन में लगभग पच्चीस वर्ष का एक लम्बा अन्तराल आया। इसका कारण यह था कि इस बीच त्रिलोचन देशाटन में व्यस्त रहे और जीविकोपार्जन हेतु प्रयत्नशील रहे। अतः जब उन्नीस सौ तितालिस के आसपास त्रिलोचन काशी में रहकर 'हंस' नामक पत्र में कार्य करते थे तभी वे अपनी पत्नी को लेकर काशी में रहने लगे और 1953 में इनके द्वितीय पुत्र 'अमित' का जन्म प्रयाग में हुआ।

शास्त्री जी का दाम्पत्य जीवन सफल रहा है। इनकी पत्नी जयमूर्ति ने अपनी सच्चरित्रता तथा सात्विक प्रवृत्ति के कारण त्रिलोचन को त्रिलोचन बनाया है। वे अपने सद्गुणों के कारण शास्त्री जी को नियंत्रित रखती रही हैं। शमशेर बहादुर सिंह के शब्दों में —" भई वह घबराते किसी से नहीं, सिवाय सच्ची बात अपनी शास्त्राणी जी के। और दरअसल वही इनको ठीक-ठीक समझती भी हैं।"[1]

त्रिलोचन का दाम्पत्य जीवन प्रायः सुखी रहा है। यद्यपि उनके सामने आर्थिक संकट आता ही रहा है किन्तु वे इससे कभी घबराये नहीं हैं। भीषण परिस्थितियों में भी इनकी धर्मपत्नी ने इन्हें सहयोग दिया है और उनका दाम्पत्य प्रेम एक आदर्श जीवन के रूप में उत्तरोत्तर विकसित होता गया है। वे अपनी धर्मपत्नी के

1- राजू0एम0फिलीप, पृ0 2।

योगदान की प्रशंसा करते हुए लिखते हैं —

"मुझे तुम्हारा हृदय निरन्तर बल देता है।
जगज्जलधि में जीवन की नौका खेता है।"[1]

ऐसा नहीं कि कभी पति-पत्नी के बीच मतभेद न हुआ हो। उनकी पत्नी यदि उनकी सफलता पर प्रसन्न होती थी तो दूसरी ओर भूल करने पर रोष भी प्रकट करती थीं। "अन्य स्त्रियों की भाँति वे भी शास्त्री जी के ऊपर उस समय बरस पड़ती थीं जब कभी त्रिलोचन अपनी घुमक्कड़ प्रकृति के कारण देर रात तक घूम-घाम कर घर पहुँचते थे। किन्तु अपनी विनोदी प्रकृति के कारण वे शीघ्र ही उनके कोप को दूर कर देते थे।"[2]

त्रिलोचन अपनी पत्नी की भावनाओं का आदर करते थे। जैसा कि निम्न_लिखित पंक्तियों में दृष्टव्य है —

"कितनी ठेस लगेगी उसको अपने मन में
क्या-क्या सोचे बैठी होगी, कैसे कह दूँ।"[3]

वे जब कभी रूठ भी जाती थीं तब वे उन्हें मना लेते थे। उन्हीं के शब्दों में —"पत्नी को गाँव जाने की सलाह दी जिससे घर पैसा दे सकूँ। विरोध मिला। बतबढ़ाव हुआ। पत्नी रोई, यद्यपि मैं कठोर नहीं हुआ - - - पीछे पत्नी को मना लिया।"

पत्नी ने त्रिलोचन के ऊपर अपना कितना प्रगाढ़ स्नेह का सागर उर्मिल कर दिया है, इसकी एक झलक 'धरती' के निम्नलिखित उद्धरण से स्पष्ट है —

1- अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ० 13
2- भेंटवार्ता के आधार पर, 5-8-89
3- उस जनपद का कवि हूँ, पृ० 42

"मैं बीमार खाट पर लेटा हूँ मन मारे

सिरहाने बैठी हो तुम, माथे पर अपना हाथ पसारे

पूछ रही हो(दृग में चिन्ता, वाणी में विश्वास अटल है)

अब कैसी तबियत है।"[1]

जहाँ पत्नी अपने पति पर इतनी तन्मयता के साथ न्योछावर रहती है वहाँ पति का भी कर्तव्य है कि वह भी उसके इस अगाध स्नेह का प्रतिदान दे। त्रिलोचन ने अपने इस कर्तव्य का पूर्ण आस्था के साथ निर्वाह किया है। वे सुख-दुख की चिर – संगिनी पत्नी के विषय में स्वनिष्ठ थे। जैसा कि निम्नलिखित उद्धरण से स्पष्ट है–

"दुःख के एकान्त में जब
मैं कराहूँ मौन
ध्यान में देखूँ तुम्हीं को
और है ही कौन
यह कथा नीरव कहूँ
दृग में बहूँ
इन मलिन धूसर दिनों को तुम न तोलो।"[2]

त्रिलोचन अपनी धर्म पत्नी से अगाध स्नेह करते थे इसका एक प्रमाण इस निम्न – लिखित उद्धरण से भी मिल जाता है –

"आज तुम्हारी आँखों में मैं अपना जीवन
देख रहा नीरव गाता है गीत समीरण।"[3]

इनकी पत्नी कविता लिखने से इसलिए चिढ़ती थीं कि कविता लिखने से कुछ लाभ नहीं होता। समय का अपव्यय होता है। वे पत्रकारिता एवं कहानी लेखन को अधिक महत्व

1- धरती, पृ० 52

2- सबका अपना आकाश, पृ० 53

3- अनकहनी भी कुछ कहनी है।, पृ० 12

देती थीं। अतः वे उनकी निगाह बचाकर ही कविता लिखते थे। कभी-कभी शास्त्री जी अपनी पत्नी से चिढ़ भी जाते थे। वे सीधी सादी और अपढ़ थीं उन्हें शिक्षित करने का प्रयास किया गया लेकिन विशेष ध्यान भी नहीं दिया गया।"[1]

कवित्व प्रेरणा :—

त्रिलोचन जी से मैंने स्वयं मिलकर उनकी कवित्व प्रेरणा के विषय में प्रश्न किया उसके उत्तर में उन्होंने मुझे बताया —''घर की परिस्थिति ठीक न होने के कारण मैं शिक्षा प्राप्त करने के लिए पाँच छः वर्ष की अवस्था में अपने मामा के घर कनौरागंज भेज दिया गया। वहाँ पढ़ाई के स्थान पर घर का काम-काज करना पड़ता था। जब अवकाश मिलता था तब अहीरों के साथ मिलकर मामा जी के जानवरों को चराता था। अहिरों से बिरहे सुना करता था और उनसे प्रेरित भी होता था। मेरे मन में भी उसी तरह लिखने की भावना जागृत हुई। इसके अतिरिक्त गंगा नामक भाट से अनेक सरस कवित्त सुनने को मिले जिससे मेरे मन में काव्य सृजन की प्रेरणा जागृत हुई।"[2]

इसके अतिरिक्त अन्य लोगों ने अपने अपने ढंग से उनकी काव्य प्रेरणा में अनुमान से विभिन्न बातें कही हैं। यथा —"काव्य साधना की मूल प्रेरणा उन्हें कहाँ से मिली यह कहना बड़ा मुश्किल मालुम होता है। उनके बचपन के गुरु और पिता जी के मित्र स्वामी जी के साहचर्य और कृपा ने ही उनमें काव्य-रुचि का बीजारोपण किया होगा।"[3]

1- त्रिलोचन के काव्य, राजू०एम०फिल०शोध, पृ० 23-24

2- 5-8-89 की भेंटवार्ता के आधार पर

3- त्रिलोचन के काव्य, राजू०एम०फिल०शोध, पृ० 37

एक दूसरा मत है कि इनके परिवार के ऊपर भगवती सरस्वती प्रसन्न रहती थीं तभी तो इनके पिता अपढ़ होने पर भी रामायण बाँच लेते थे। तीसरा मत यह है कि इनकी दादी (बुआ) उन्हें विद्वान् बनाने के पक्ष में थीं। हो सकता है उनके आशीर्वाद के प्रभाव से इनमें कवित्व फूट निकला हो।

मेरा विश्वास यह है कि कवित्व प्रतिभा तो ईश्वरी देन होती है। केवल अध्ययन के बल पर कोई कवि नहीं हो सकता जैसा कि निम्नलिखित श्लोक से स्पष्ट है —

'यत्सारस्वतवैभवं गुरूकृपापीयूषपाकोद्भवं
तल्लभ्यं कविनैव नेव हठतः पाठप्रतिष्ठाजुषाम्।
कासारे दिवसं वसन्नपि पयः पूरं परं पंकिलं,
कुर्वाणः कमलाकरस्य लभते किं सौरभं सौरिभः ॥'

अर्थात् सरस्वती का जो वैभव है वह तो गुरू के कृपामृत का परिणाम होता है। उसे तो कवि ही प्राप्त कर सकता है। हठ-पूर्वक पढ़ कर प्रतिष्ठा प्राप्त करने वाले व्यक्ति उसे नहीं प्राप्त कर सकते। जलाशय में दिन भर रहता हुआ भी जल को मलिन बनाता हुआ भैंसा क्या कमल की सुगन्ध प्राप्त कर सकता है?

काव्यशास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान् आचार्य मम्मट ने शक्ति-निपुणता और अभ्यास इन तीनों को सम्मिलित रूप में काव्य का हेतु माना है। यथा —

'शक्तिर्निपुणता लोककाव्यशास्त्रद्यवेक्षणात्।
काव्यं शिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे।'

अर्थात् 'कवित्व शक्ति' (जो जन्मजात या ईश्वरीय देन होती है) लौकिक ज्ञान, तथा काव्यशास्त्रीय अध्ययन आदि से प्राप्त निपुणता और काव्य के ज्ञनकार व्यक्तियों से शिक्षा लेकर उसका अभ्यास करना, ये तीनों मिलकर एक कारण हैं। इससे यह स्पष्ट है कि

1- 'काव्य प्रकाश' प्रथमअध्याय, — मम्मट

कवित्व प्रतिभा तो ईश्वरीय देन है। वह अध्ययन आदि से नहीं प्राप्त होती। अस्तु शास्त्री जी की भी कवित्व प्रतिभा नैसर्गिक देन के रूप में ही मानी जा सकती है। इसके अतिरिक्त जीवन संघर्ष में व्यक्ति को कवि बनने में सहायता देते हैं। पन्त के शब्दों में –

"वियोगी होगा पहला कवि,
आह से उपजा होगा गान
उमड़कर आँखों से चुपचाप
वही होगा कविता अनजान।"

यह जीवन संघर्ष उसी को कवि बनने में सहायता देते हैं, जिसमें बीज रूप में कवित्व प्रतिभा विद्यमान हो। कहना न होगा कि शास्त्री जी के जीवन में सबसे बड़ा संघर्ष आर्थिक दैन्य का रहा है। जैसा कि उन्होंने अपनी अनेक कविताओं में व्यक्त किया है– जीविका की खोज में लगभग पच्चीस वर्ष तक पत्नी का वियोग रहने से पन्त के उस कथन का भी पूर्ण अस्तित्व प्राप्त हो जाता है जिसमें 'वियोगी होगा पहला कवि' की बात कही गई है।

इस प्रकार कवित्व प्रतिभा तो उनमें थी ही, आर्थिक संघर्ष और वियोग व्यथा ने उसे अंकुरित और पल्लवित किया। इसके अतिरिक्त संस्कृत, उर्दू, फारसी व अंग्रेजी के प्रगाढ़ अध्ययन ने इन्हें निपुणता प्रदान की और निरन्तर विभिन्न साहित्यिक क्षेत्रों में काम करते करते इन्हें काव्य का अभ्यास भी हो गया। अतः प्रतिभा, निपुणता और अभ्यास इन तीनों के सम्मिलित तत्व ने इन्हें प्रथम श्रेणी का सफल कवि बना दिया। इस प्रकार इनकी काव्य प्रेरणा तो इन्हीं के मतानुसार अहिरों के 'बिरहों' और गंगा भाट के कवित्तों से जागृत हुई। तत्पश्चात् व्यापक अध्ययन एवं जीवन संघर्षों ने उसको पल्लवित किया और निरन्तर काव्याभ्यास से उसमें फल सृजन की क्षमता भी उत्पन्न हुई।। यही है त्रिलोचन की काव्य प्रेरणा का मूल उत्स, जिसको अभी तक कोई

भी समीक्षक पूर्ण आत्मविश्वास के साथ नहीं कह सका है। इसका यह अर्थ न समझा जाए कि मुझे इस निष्कर्ष पर किसी प्रकार का दर्प है। यह तो श्रद्धेय कविवर त्रिलोचन जी का ही प्रसाद है जिसे उन्होंने मुझसे व्यक्तिगत साक्षात्कार में मौखिकरूप में बतलाया।

त्रिलोचन का व्यक्तित्व :-

व्यक्तित्व के दो पहलू होते हैं। वाह्य और आन्तरिक। अपने वाह्य व्यक्तित्व को तो अपनी अनेक कविताओं में व्यक्त किया है। यथा -

"वही त्रिलोचन है, वह - जिस के तन पर गंदे
कपड़े हैं, कपड़े भी कैसे - फटे लटे हैं,
यह भी फैशन है, फैशन से कटे-कटे हैं,
कौन कह सकेगा इस का यह जीवन चंदे
पर अवलंबित है।"[1]

इनके व्यक्तित्व के विषय में लक्ष्मीशंकर श्रेष्ठ का निम्नलिखित कथन सटीक लगता है - "कुछ श्यामता लिए पक्के वर्ण, लगभग सवा पाँच फीट कद के साँचे जैसे में भी पाण से लगने वाले किसी व्यक्ति को - सुखपूर्वक, आराम से बैठकर अथवा लेट कर पढ़ने के पूर्ण सुविधा-सम्पन्न उपकरणों के होने के बावजूद - कमरे में टहलते हुए, किसी पुस्तक को पढ़ने में लीन पायेंगे, विशेष कर तब जब उस व्यक्ति के माथे में लम्बाई चौड़ाई की अपेक्षा अधिक हो, चेहरा कुछ-कुछ त्रिकोण-सा (ऊपर चौड़ा नीचे सकरा) हो, और गर्दन का पिछला हिस्सा शरीर के गठन के मुकाबले पर्याप्त अस्वाभाविक रूप

1- उस जनपद का कवि हूँ, पृ०॥

से फैला हो तो आप निस्संकोच रूप से मान लें कि ये ही हमारे त्रिलोचन हैं।"[1]

त्रिलोचन धुन के पक्के हैं, जो चाहा वही करते हैं। इन्होंने जीवन संघर्ष में तप कर ही खरित होने की भांति अपने को उज्ज्वल बनायाहै। कवि के ही शब्दों में — "कभी नहीं देखा इसको चलते धीमे।

धुन का पक्का है, जो चेते वही चितये

जीवन इसका जो कुछ है पथ पर बिखरा है

तप-तप कर ही भट्टी में सोना निखरा है।"

त्रिलोचन वाह्य रूप में भले ही उतने आकर्षक न दिखायी देते हों लेकिन उनका अन्त-र्व्यक्तित्व बड़ा ही उदार एवं स्पष्ट है। उन्हें कभी झिझक नहीं होती हर जगह उत्साह से जाते हैं। वे वाह्यरूप से निर्धन भले ही हों किन्तु मन से धनी हैं। उनकी वाणी में ओजस्विता है। वे किसी के भी मिथ्या अभिमान को चूर-चूर कर देने की क्षमता रखते हैं उन्हीं के शब्दों में —

"झिझक कहीं भी नहीं, कहीं भी समुत्साह से

जाता है, दीनता देह से लिपटी है, मन

तो अदीन है, नेत्र सामना करते हैं, पथ

पर कोई भी आये, ओजस्वी वाग्धारा

बहती है, भ्रमग्रस्त जनों को पार उतारा करती है,

खर आवर्तों में ले लेकर मथ

देती है मिथ्याभिमान।

इन्होंने अपने व्यक्तित्व के विषय में लिखा है कि 'त्रिलोचन फौलादी है उसके मन में स्वाभिमान है जो उसके नेत्रों से झलकता है।'[3]

1- त्रिलोचन के काव्य, राजू०एम०फिलीप, पृ० 27

2- उस जनपद का कवि हूँ, पृ०11

3- वही, पृ० 12

त्रिलोचन के आलोचकों की भी कमी नहीं है। लोग उसे आवारा और अक्खड़ समझते रहे हैं। न उसने खेती की परवाह की, न अपने को शक्तिशाली बनाया और यहाँ तक कि वृद्धा माता की ही परवाह की। इतना अवश्य है कि कविता के क्षेत्र में उसने अपना सिक्का जमा लिया है।'[1]

किन्तु यह कथन वास्तविक नहीं है। आर्थिक दैन्य को मिटाने के लिए ही उन्होंने स्थान-स्थान पर जीविका खोजने का प्रयास किया और माँ की सेवा के लिए ही अपनी पत्नी को उनके पास रखते रहे हैं।

उनके रहन-सहन के बारे में शम्भूनाथ मिश्र का कहना है —" सालों लम्बी दाढ़ी और अचानक एक दिन सफाचट। आज कुर्ता-पाजामा पहनते हैं, कभी केवल कुर्ता लँगोट में देखे गये, आज सायकिल पर, कल बस में, परसों पैदल। कहकर नहीं आना – बिना कहे बार-बार असमय भी आ जाना और घण्टों जाने का नाम न लेना। गर्मी हो या जाड़ा दोनों वक्त स्नान करना। साफ चमचमाते गिलास में पानी पीना – कम से कम तीन गिलास और अधिक से अधिक छः सात गिलास। साल में कई बार पान छोड़ना शुरू करना -- लिखने से लेकर उच्चरण तक की शुद्धता पर कान देना। परस्पर विरोधी बातें करना। टोकने पर 'सो तो है' कहकर चुप हो जाना। वैसे चुप रहते उन्हें कम ही देखा है।'[2]

त्रिलोचन का आन्तरिक व्यक्तित्व उदार है। वे स्वभाव के अक्खड़ और स्वाभिमानी हैं। वे बड़े से बड़े व्यक्ति के सामने भी अपने व्यक्तित्व को बौना नहीं होने देते। वे माँस मदिरा के व्यसन से उन्मुक्त रहकर, 'सादा जीवन उच्च विचार' के व्यक्तित्व

1- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 14

2- त्रिलोचन के काव्य, राजू0एम0फि0लीप, पृ0 29

पर विश्वास रखते हैं। वे कबीर तुलसी और निराला के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से बहुत अधिक प्रभावित हैं। वे अपनी रूचि का उल्लेख करते हुए कहते हैं —

"मुझको हरियाली पसन्द है खुलकर खिलना,
फूलों का मुझको भी आह्लादित करता है।" [1]

वे कृषक जीवन के प्रति विशेष आकृष्ट रहते हैं। ग्रामीण संस्कृति ने उनके हृदय में घर कर लिया है। इसीलिए वे कृषि के सम्बन्ध में कहते हैं —

"यह जीवन की हरी ध्वजा है इसका गाना
प्राण-प्राण में गूंजा है मन-मन का माना।" [2]

त्रिलोचन ने सदैव मानवता पर आस्था रखी है और उसने पराजय में भी विजय का गान गाने का प्रयास किया है। इनकी इस प्रवृत्ति का उल्लेख अधोलिखित पंक्तियों में भी पाया जाता है —

"मनुष्यता तुझसे नवीन जीवन पायेगी
घोर पराजय में भी गान विजय के तू गा।" [3]

त्रिलोचन चरित्र के धनी हैं। उनके काव्य में जो प्रेम या श्रृंगार का चित्रण है। वह उनके दाम्पत्य जीवन की ही विरासत है, जैसा कि उनके काव्य संग्रहों में प्राप्त है। यथा —

"प्रिये कहीं भी रहो, कहो पर अपने मन की
मेरे मन से, हो लहरें अपने जीवन की।" [4]

1- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 63
2- वही, पृ0 62
3- वही, पृ0 16
4- वही, पृ0 20

अपने अन्तर्व्यक्तित्व के विषय में त्रिलोचन स्वयं वक्तव्य देते हैं। यथा —

"सांसों के द्रुतगामी रथ पर नहीं रुका हूँ
चिर यात्री मैं ठोकर खाकर नहीं झुका हूँ।
क्षण भर को भी मुझे आज तक झूठी आशा
कहीं नहीं भरमा पायी है, नहीं लुका हूँ
वज्रपात के डर से घर में, मन की भाषा
छाती के भीतर धक-धक धड़कती रही है,
नहीं हवा की लहरों पर उत्ताल बही है।"[1]

त्रिलोचन का अक्खड़ व्यक्तित्व बड़ा कष्टसहिष्णु है। वे बाहुबल पर विश्वास करते हैं। इनका फक्कड़ जीवन चने चबाकर प्लेटफार्म में आश्रय लेकर भी जीवन से हार नहीं मानता है। कठोर परिश्रम, ईमानदारी और धैर्यशीलता उनकी प्रकृति में घुलमिल गये हैं। ये आत्म प्रशंसा से सदैव दूर रहते हैं, और चाटुकारिता से चिढ़ जाते हैं। उनके स्वाभिमान ने एक जगह बंधकर नौकरी नहीं करने दी। इसीलिए उन्हें कभी काशी, कभी इलाहाबाद, कभी रांची और कभी भोपाल आदि नगरों में जाकर जीविकोपार्जन करना पड़ा।-

इनके व्यक्तित्व के विषय में श्री नन्दकिशोर नवल का मत है —" त्रिलोचन शीशे की तरह साफ, दृढ़ प्रकृति के और साथ ही सन्त अथवा श्रेष्ठ मनुष्य की तरह विलक्षण व्यक्ति हैं।"[2]

त्रिलोचन बहुज्ञ होते हुए भी बाल प्रकृति के हैं। उन्हें व्यक्तिगत रूप से किसी से ईर्ष्या या द्वेष नहीं है। घुमक्कड़ होना उनकी प्रकृति है। उनकी विनोदी प्रकृति है, सम्भवतः वे संघर्ष की वेदना को ही छिपाये रखने के लिए ठहाका मारकर

1- उस जनपद का कवि हूँ। पृ० 29

2- राजू०एम०फि०लीप, पृ० 27

हँसते हैं। वे बोलते समय सदैव श्रोता का ध्यान रखते हैं। यदि भाषण देने में आते हैं तो इतने मस्त हो जाते हैं कि उन्हें समय का ध्यान नहीं रहता। उनकी प्रकृति है कि उन्हें वे एक बार जो कह गये उसी पर डटे रहते हैं। यदि किसी गोष्ठी में वे कविता सुनाने से इन्कार कर देते हैं तब बार-बार आग्रह करने पर भी नहीं सुनाते और सरल इतने हैं कि किसी नये कवि या साहित्यकार के यहाँ बिना बुलाये भी पहुंच जाते हैं। वे कार्य क्षेत्र में अपने नियम के पक्के हैं। यदि कार्यालय में पहुंचने में पांच मिनट का भी बिलम्ब हो जाए तो तुरन्त छुट्टी का आवेदन-पत्र देकर उस पर रेती में जाकर उच्च स्वर में काव्य-पाठ करते हैं।[1]

त्रिलोचन की स्वाभाविक विशेषतायें हैं जिनका उल्लेख इस प्रकार मिलता है —"किसी जगह जाने की डुग्गी पीटकर न जाना, किसी शहर में जाकर किसी बहुत घनिष्ठ मित्र से न मिलना, किसी घनिष्ठ मित्र की बीबी को दिल्ली तक पहुंचाने जाना और उतनी लम्बी यात्रा के बाद उस शहर में पहुंचकर प्लेटफार्म से ही लौट आना, कभी-कभी रोज दिखाई पड़ने वाली जगहों पर महीनों नारद रहना, आदि-आदि उनकी सहजता के असहज कारनामें हैं।"[2]

उनका खाना खाने का ढंग भी निराला है। जो वस्तु पहले आ जाती है, उसी को खाने लगते हैं। यह कोई आवश्यक नहीं है कि सारी भोजन सामग्री आने पर ही भोजन करें।

त्रिलोचन व्यवहार में बड़े विनम्र हैं। वे अपना व्यक्तित्व किसी पर नहीं थोपते। दूसरों की भी बात सुनते और उनकी बातों का स्पष्ट उत्तर देते हैं। उन्हें अपनी विद्वत्ता का गर्व बिल्कुल नहीं है। इतना अवश्य है कि वे अशुद्ध उच्चारण

1- राजू०एम०फि०लीप, 'त्रिलोचन के काव्य' पृ० 30

2- वही, पृ० 31

करने वाले को इस दृष्टि से टोक देते हैं जिससे उसमें सुधार आ जाये। उन्हें किसी भी मानवीय संकट में दूसरों का साथ देने की आदत है। वे गरीबों और पीड़ितों की वेदना को भली भांति समझते हैं। उनकी निश्छल प्रकृति इतनी सरल है कि वे अपने विश्वसनीय व्यक्ति के प्रति समर्पित हो जाते हैं। उनकी चाय में कालीमिर्च अधिक रहती है जिसे हम यदि कालीमिर्च का गाढ़ा कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। त्रिलोचन अपने ठहाकों के लिए प्रसिद्ध है जैसा कि उनके निम्नलिखित कथन से ही सिद्ध होता है —

"अट्टहास कर अट्टहास कर अट्टहास में
मन को गड़ने वाले दर्द डूब जाते हैं....
दुःखों का दुरतिक्रम घेरा
अट्टहास ही तोड़ सका है अभियानों में।"[1]

नागार्जुन इन्हें 'ग्रामात्मा' का अभिधान देना उचित समझते हैं क्योंकि ग्रामीण जीवन के सम्बन्ध में इनका समग्र व्यक्तित्व समर्पित सा है।"[2]

डा० रामविलास शर्मा ने त्रिलोचन के व्यक्तित्व के विषय में लिखा है - "अब भी वे हँसते हुए मिलते हैं। उनकी बातों में वैसा ही रस होता है। सड़कों पर घूमते हुए साहित्य चर्चा में डूब जाने की क्षमता बरकरार है और तीस साल से बरकरार है। यह कोई जीवन की साधारण सफलता नहीं है।"[3]

सारांश यह है कि त्रिलोचन का बाह्य व्यक्तित्व अभद्र होता हुआ भी अप्रतिम है। उसमें कृत्रिमता न होकर सहजता है। उनके नेत्रों में एक असाधारण दीप्ति

1- दिगन्त, पृ०37
2- त्रिलोचन के काव्य, राजू०एम०फिलीप, पृ० 34
3- स्थापना, 6 पृ० 85

है। शरीर से पूर्ण स्वस्थ, व्यक्तित्व से अतिशय उदार, कर्म से महान कर्मयोगी, कष्ट सहिष्णुता से महान योगी और तितिक्षा से एक महान सन्त। उन्होंने जीवन संघर्षों से जीवन की राह देखी है। हार कर भी जीत के गीत गाये हैं। स्वभाव के अक्खड़ और व्यक्तित्व के फक्कड़ हैं। उनकी वाणी में ओज है और चरित्र में दृढ़ता। वे समाज के गरल को पीकर जन-जन को अमृत बाँटते हैं। इसलिए मुस्कुराते रहना उनकी प्रकृति है। वे जितने सरल और सहज है सम्भवतः इस स्तर पर पहुँचकर कोई कवि ऐसा न होगा। परोपकार उनकी प्रकृति में सम्मिलित है। उनमें निराला के अक्खड़ व्यक्तित्व की बहुत कुछ छाप देखने को मिलती है। अतः यदि उनके व्यक्तित्व को मैं एक पंक्ति में कहना चाहूँ तो इस प्रकार कहूँगी —

"यदि हम त्रिलोचन के समग्र व्यक्तित्व को समझना चाहें तो कबीर, तुलसी और निराला के व्यक्तित्व को एकीकृत कर देना चाहिए।"

जीविका निर्वाह :—

शास्त्री जी को जीवन में बहुत ज्यादा आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा। पहले तो इन्होंने जीविकोपार्जन का साधन कृषि को बनाया किन्तु जमीन कम होने से पूरे परिवार का गुजर-बसर नहीं हो पाता था। इस कारण शास्त्री जी जीविकोपार्जन हेतु गाँव छोड़कर काशी चले गये। काशी में इन्होंने कईजगह नौकरी की तलाश की परन्तु सफलता नहीं मिली। अन्त में इन्होंने जीविका चलाने के लिए हाथ से खींचने रिक्शा चलाना आरम्भ कर दिया। कुछ दिनों पश्चात् यह काशी से बनारस आए। सन् 1939 से 1941 तक इन्होंने बनारस में कहानी (मासिक पत्रिका) में काम किया किंतु स्वच्छन्द प्रवृत्ति के कारण अधिक समय तक न ठहर सके। पुनः काशी लौट कर तीस

रूपये मासिक वेतन पर प्रेस में प्रूफ रीडर का काम करने लगे। यहाँ पर स्व0 मुंशी प्रेमचन्द 'हंस' पत्रिका प्रकाशन कर रहे थे। इस पत्रिका में इन्होंने 1943 से 1946 तक काम किया। 1946 से 1950 तक 'चित्ररेखा' मासिक पत्रिका में सहायक सम्पादक के रूप में काम किया। 1952 से 1953 तक गणेशराय इण्टर कालेज में आंग्ल भाषा के प्रवक्ता के रूप में कार्य किया। 1953 से 1954 तक हि0सा0स0प्रयाग में (हिन्दी अंग्रेजी मानक कोश) में कार्य किया। 1954 से 1959 तक हिन्दी शब्द सागर सं0प0स0 रहे।

1959 से राँची राष्ट्रीय प्रेस में मैनेजर के पद को गौरवान्वित किया। 1960 से 1967 तक हिन्दी शब्द सागर, लघु हिन्दी शब्द सागर (संशोधित परिवर्धित संस्करण) तथा इसी अवधि में संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर, लघु हिन्दी शब्द सागर और लघुतर हिन्दी शब्द सागर का संपादन भी किया जो अलग-अलग ग्रन्थों के रूप में प्रका - शित है। 1967 से 1972 तक विदेशी छात्रों को संस्कृत, हिन्दी, उर्दू की शिक्षा दी अर्थात् शिक्षण कार्य किया। 1972 से 1975 तक 'जनवार्ता' दैनिक में सहायक सम्पा- दक के रूप मेंकार्य किया। 1975 से 1978 तक हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल में भाषा सम्पादक के रूप में कार्य किया। 1978 से 10मार्च 1984 तक उर्दू हिन्दी द्वैमासिक कोश, उर्दू विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय में कार्य किया।

28मार्च, 1984 से अब तक मुक्तिबोध सृजन पीठ, डा0 हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर मध्यप्रदेश में निर्देशक के पद पर कार्यरत हैं।

इस प्रकार शास्त्री जी ने अपने जीविका निवृत्ति के अनेक कार्य किये। कहीं भी ज्यादा दिन तक कार्य न कर सके, इसका कारण उनका स्वच्छन्द स्वभाव ही हो सकता है।

मित्रवर्ग :—

समाज मे रहकर कोई भी व्यक्ति एकाकी नहीं रह सकता। शास्त्री जी एक साहित्यकार हैं और एक साहित्यकार होने के नाते आपकी मित्रमण्डली में अधिकतर साहित्यकार मित्र ही सम्मिलित हैं। एक सहृदय कवि होने के नाते आपके मित्रों की संख्या भी बहुत ज्यादा है। किन्तुउनमें से सबसे निकट मित्रों में शमशेर बहादुर सिंह, नागार्जुन, शिवदान सिंह चौहान, जगदीश, केदारनाथ सिंह, विजयदेव नारायण शाही, जगत शंखधर, केदारनाथ अग्रवाल आदि।

जीवन की विशिष्ट घटनाएँ :—

जीवन की एक घटना ने शास्त्री जी को तैरना सिखा दिया। उस बचपन की घटना को मुस्कराते हुए बताते हैं कि एक बार मैं मित्रों के साथ नदी के किनारे खड़ा था। मुझे तैरना नहीं आता था इस कारण नदी में कभी स्नान नहीं करता।उस दिन मेरे एक शरारती मित्र ने नदी में ढकेल दिया। जब डूबने की स्थिति आ गयी तो मैंने हाथ पैर चलाना शुरू कर दिया और धीरे-धीरे किनारे पर आ गया। उस घटना के बाद से मैं अच्छा तैराक बन गया।

वर्तमान स्थिति :—

त्रिलोचन जी ने मार्च 1990 तक सागर विश्वविद्यालय में 'मुक्तिबोध सृजन पीठ' के अध्यक्ष पद पर कार्य किया है। सम्प्रति दिल्ली में रहकर स्वतंत्ररूप से साहित्य सेवा कर रहे हैं। इन्होंने अवधी के बरवै छन्द में अमोला नामक एक असाधारण काव्य ग्रन्थ लिखाहै। यह उनकी सहजतम कृति है। जिसमें त्रिलोचन ने बैसवाड़े के किसान की बोली में जीवन के विभिन्न अनुभवों को काव्य का जामा पहनाया है।

यह ग्रन्थ 1990 में प्रकाशित हो चुका है। अब वे विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के लिए लेख लिखते हैं। यदि कोई शोधार्थी उनसे कुछ परामर्श करने के लिए जाता है तो उसे यथेष्ठ समय देकर उसका मार्ग दर्शन करते हैं और अन्य मिलने जुलने वाले साहित्य प्रेमियों से सत्संग करते है। जब मैंने उनसे साक्षात्कार में पूछा कि आप क्या लिख रहे हैं और आगे क्या लिखने का विचार है तब उन्होंने बतलाया था, —"मैं इस समय अमोला को संशोधित करके प्रकाशन योग्य बना रहा हूँ। भविष्य की योजना के बारे में उन्होंने बताया — मैंने अभी इस विषय में कुछ नहीं सोचा है।

इस प्रकार त्रिलोचन अभी पूर्ण स्वस्थ हैं और एकाकी होते हुए भी साहित्य सृजन के प्रति जागरूक हैं। उनसे आशा की जाती है कि वे भविष्य में अनेक बहुमूल्य ग्रन्थों का सृजन करके प्रगतिशील कवियों की परम्परा में सर्वश्रेष्ठ साहित्यकार के रूप में प्रतिष्ठित हो सकेंगे।

प्रारम्भ पृष्ठभूमि

किसी भी कवि या लेखक की सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक पृष्ठ-भूमि का ज्ञान कर लेना इसलिए आवश्यक है कि किसी न किसी प्रकार से व्यक्ति के निर्माण में इन परिस्थितियों का न्यूनाधिक योगदान अवश्य रहता है। ऐसा नहीं हो सकता कि वह समाज की गतिविधियों से प्रभावित ही न हो। वह जिस परिवेश में रहता है उससे कुछ न कुछ सीखता है। जिस वातावरण में पलता है, तदनुकूल उसकी प्रवृत्तियाँ निर्मित होती हैं। इसी प्रकार जैसी राजनीति उस समय घटित होती है, उसकी प्रतिक्रिया उसके मन और मस्तिष्क में अवश्य होती है। उदाहरणार्थ — गाँधी जी के

1- साक्षात्कार के आधार पर।

स्वराज्य आन्दोलन के समय अनेक नवयुवक उनसे प्रभावित हुए, परिणाम स्वरूप अनेक नवयुवकों ने विदेशी शासन की सेवायें छोड़ दीं। अनेक प्रतिभशाली नवयुवकों ने अपने अध्ययन से विराम लेकर देश सेवा के व्रत में अपने को लगा दिया। डॉ० राजेन्द्र प्रसाद, सुभाष चन्द्र बोस, जवाहर लाल नेहरू जैसे महान व्यक्तित्व अपने परिवेश सेही प्रभावित हुएहैं और इतने महान बने। यदि हम कवियों पर विचार करें तो हम देखेंगे कि जयशंकर प्रसाद काशी नगरी में पृष्ठभूमि से प्रभावित होकर इतने उच्चकोटि के सांस्कृतिक कवि बन सके। निराला को निराला बनाने का श्रेय तो उनकी घरेलू परिस्थितियाँ, सामाजिक संघर्ष एवं सांस्कृतिक पर्यावरण है। पन्त जी को प्रकृति का सुहावन परिवेश जन्मकाल से ही मिला जिसके कारण वे प्रकृति चित्रण के उत्कृष्ट कवि बन सके। इस प्रकार यह सिद्ध हो जाता है कि किसी भी व्यक्ति के निर्माण में उसकी समसामयिक पृष्ठभूमि विशेष उत्तरदायित्व वह करती है।

अस्तु कविवर त्रिलोचन की उस प्रारम्भिक पृष्ठभूमि का विवेचन प्रस्तुत है जिनके प्रभाव से 'वासुदेव' त्रिलोचन बन सका।

सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि :—

त्रिलोचन एक सामान्य कृषक परिवार में उत्पन्न हुए थे। आर्थिक दैन्य का अभिशाप इन्हें शैशव से ही भोगना पड़ा। यहाँ तक कि प्रारम्भिक शिक्षा के लिए भी उन्हें ननिहाल की शरण लेनी पड़ी। विद्यार्थियों की सहायता से अपनी आर्थिक समस्या का समाधान करना पड़ा। अतः जीवन संघर्ष से जूझने की प्रवृत्ति इनमें छात्र जीवन से ही जागृत हो गयी। संस्कृत के गुरू देवदत्त की शिक्षा से इन्हें संस्कृत और संस्कृति के प्रति अनुराग हो गया। सम्भवतः इसी कारण इन्होंने शास्त्री की उपाधि अर्जित की और काशी के सांस्कृतिक जीवन से यह बहुत अधिक प्रभावित भी हुए।

त्रिलोचन के जन्म से ही देश और समाज में उथल-पुथल एवं अशान्ति थी। सन् 1918 से लेकर 1921 तक देश में अन्न का उत्पादन बुरी तरह से प्रभावित रहा, उससे समाज आर्थिक विपन्नता का शिकार हुआ। भयंकर अकाल और महामारी के दुष्प्रभाव से समाज में लोगों का जीवन दुर्लभ हो गया और लाखों लोग मृत्यु के शिकार हुए। खाद्य पदार्थों के अभाव के कारण प्रत्येक वस्तु का मूल्य बढ़ गया जिससे केवल श्रमजीवी जनता ही नहीं अपितु मध्यम वर्ग के व्यक्ति भी प्रभावित हुए और यहाँ तक कि उसका प्रभाव बुद्धिजीवियों और सफेदपोश कर्मचारियों के हितों पर भी पड़ा। इस प्रकार 1930 तक भारत में शोषक और शोषित वर्ग के बीच एक गहरी खाई उत्पन्न हो गयी। एक ओर सामन्त, पूँजीपति, दलाल और ब्रिटिश साम्राज्यवादी थे तो दूसरी ओर किसान, मजदूर एवं अन्य मध्यम श्रेणी तक के व्यक्ति थे जिनका समाज में शोषण हो रहा था। इस प्रकार समाज में आर्थिक वैषम्य और प्रबल संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो गयी थी। रूस की सामाजिक क्रान्ति का प्रभाव भारत में भी होने लगा था। इस प्रकार भारतीय समाज में पर्याप्त अशान्ति और विघटन की स्थिति उत्पन्न हो गयी थी तथा सांस्कृतिक जीवन भी सुचारू नहीं रह गया था।

राजनीतिक परिस्थितियाँ :—

त्रिलोचन शास्त्री का जन्म उस समय हुआ जब देश परतंत्र था। अंग्रेजी शासन का दुष्प्रभाव समाज पर इतना अधिक था कि किसी को बोलने तक की स्वतंत्रता नहीं थी। सरकारी नौकरियों में जाति के आधार पर ही प्रवेश दिया जाता था। विशेष

1- भारत का इतिहास, को०अ०अंतोनोवा, ग्रि०म०बोंगर्द लेविन, ग्रि०ग्रि०कोतोव्स्की के आधार पर

रूप से ब्राह्मण क्षत्रिय कुलीन जातियाँ समझी जाती थीं और राजनीतिक दृष्टि से उन्हें महत्व देना उचित भी था क्योंकि आभिजात्य वर्ग को मिलाकर ही अंग्रेज यहाँ शासन कर सकते थे। अपनी इसी नीति के आधार पर अंग्रेजों ने पुराने राजाओं, जमींदारों, पूँजीपतियों एवं सामन्तों को उच्च पदों पर प्रतिष्ठित करने का रवैया बना लिया था। जिससे निम्न वर्ग में एक गहरा असन्तोष व्याप्त हो गया था।

हमारे देश में अंग्रेजों ने विकास के नाम पर भी कुछ काम किया। अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार-प्रसार किया जिससे उन्हें शासन चलाने के लिए अंग्रेजी शिक्षित लिपिक मिल सके। लार्ड मैकाले की नीति के आधार पर भी यहाँ की शिक्षा-दीक्षा चलाई जा रही थी। इस प्रकार सांस्कृतिक परतंत्रता का वातावरण बनाना भी अंग्रेजी शासन की नीति का एक अंग था। अंग्रेजों ने देखा कि भारत सोने की चिड़िया है इसलिए यहाँ का धन एकत्र करके इंगलैण्ड भेजने की कूटनीति बनाये हुए थे। विदेशी वस्त्रों का प्रचलन हो जाने से हमारे देश का न जाने कितना द्रव्य विदेश जा रहा था।

अंग्रेजों के कूटनीतिज्ञ व्यवहार के कारण भारत में जन-जागृति उत्पन्न करने का श्रेय बाल गंगाधर तिलक, महात्मा गाँधी, पं० मोतीलाल नेहरू जैसे महानेताओं को दिया जा सकता है। इन लोगों ने हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान का स्वर सबल किया साहित्य के क्षेत्र में भारतेन्दु जैसे अनेक कवियों और लेखकों ने अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह की चिनगारी सुलगायी जो उत्तरोत्तर पनपती गयी और द्विवेदी युग में मैथिलीशरण गुप्त जैसे अनेक कवियों और लेखकों ने इस भावना को पल्लवित किया। अनेक बार हमारे राष्ट्रीय नेताओं को कारागारों की यातनाएँ सहनी पड़ी और अंग्रेजों के अत्या - चारों का शिकार होना पड़ा किन्तु अनेक संघर्षों के परिणाम स्वरूप अंग्रेजों को भारत

छोड़ना ही पड़ा और सन् 1947 में हमारा देश स्वतंत्र हो गया। इस प्रकार हिंसा की अहिंसा पर, सत्य की असत्य पर, अनीति की नीति पर विजय हुई और दानवता के साम्राज्य का अन्त हो गया। इन्हीं परिस्थितियों में हमारे कवि त्रिलोचन ने सन् 1945 ई0 में अपनी प्रथम रचना 'धरती का प्रकाशन करवाया था।

इस प्रकार त्रिलोचन की परिस्थितियाँ स्वातंत्र्य पूर्व और स्वातंत्र्योत्तर युग को प्रतिनिधित्व करती है। इसलिए उनकी रचनाओं में उन दोनों स्थितियों का पर्याप्त प्रभाव दूर-दूर तक देखने को मिलता है।

प्रगतिशील कवि त्रिलोचन की काव्य यात्रा का अपना एक विशिष्ट परिचय है। 'धरती' से लेकर 'अमोला' तक उनके काव्य संग्रहों का जो क्रमिक प्रकाशन हुआ है उसका संक्षिप्त रेखाचित्र इस प्रकार प्रस्तुत है —

क्रम	पुस्तक का नाम	वर्ष	प्रकाशन स्थान
1	धरती	1945 ई0	नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद
2-	गुलाब और बुलबुल	1956	वाणी प्रकाशन नई, दिल्ली
3-	दिगन्त	1957	राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिली
4-	ताप के ताए हुए दिन	1980	संभावना प्रकाशन, हापुड़
5-	शब्द	1980	वाणी प्रकाशन, दिल्ली
6-	उस जनपद का कवि हूँ	1981	राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
7-	अरधान	1983	यात्री प्रकाशन, दिल्ली
8-	अनकहनी भी कुछ कहनी है	1985	राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
9-	तुम्हें सौंपता हूँ	1985	राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
10-	फूल नाम है एक	1986	राजकमल प्रका0 नई, दिल्ली
11-	देशकाल	1986	राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली

12-	सबका अपना आकाश	1987	राजकमल प्रका0 नई दिल्ली पटना
13-	चैती	1987	वाणी प्रकाशन नई दिल्ली
14-	अमोला	1990	वाणी प्रकाशन नई दिल्ली

धरती :— (1945)

प्रस्तुत ग्रन्थ त्रिलोचन की प्रारम्भिक कविताओं का प्रथम संग्रह है। इसमें जीवन के विभिन्न अंगों का स्पर्श किया गया है— और जहाँ तक मानव की गति है, उस समस्त व्यापक परिवेश का यथार्थ चित्रण, इसका प्रतिपाद्य विषय है। इस संग्रह की कविताओं को हम तीन वर्गों में विभाजित कर सकते हैं। (क) प्रकृति सौन्दर्य परक-कवितायें (ख) सामाजिक जीवन की कवितायें (ग) प्रेम-परक कवितायें।

प्रकृति सौन्दर्यपरक कवितायें :—

त्रिलोचन प्रकृति सौन्दर्यपर मुग्ध होने वाले कवि हैं। वे प्रकृति को काव्य की प्रेरणा शक्ति भी मानते हैं और इसका चित्रांकन करने में छायावादी कवियों की भांति तन्मय दिखलायी पड़ते हैं। यथा —

"पेड़ों के पल्लव से ऊपर
उठता धीरे-धीरे ऊपर
अन्धकार चन्द्रिका स्नात
तरुओं पर जैसे पारा।"[1]

कवि प्रकृति से अक्षय प्रेम का अनुदान पाता है। वह उसके सुन्दर रूप से अभिभूत है। इसलिए वह प्रकृति को सुंदर और निर्मल रूप में देखता है। अतः मानना पड़ता है कि प्रकृति के प्रति त्रिलोचन का निश्छल अनुराग है। वे उसे मानव जीवन की चिर

1- धरती, पृ0 67

सहचरी के रूप में देखते हैं।

<u>सामाजिक जीवन की कविताएँ :—</u>

कवि मुख्यतः समाजवाद का पुजारी है इसलिए इस संग्रह में सामाजिक-कविताओं का बाहुल्य है। उनकी प्रगतिशीलता भी समाज का अंग बनकर अभिव्यक्त हुई है।

सामाजिक कविताओं में लौटने का नाम मत लो, सोच समझकर चलना होगा' बढ़ अकेला' 'जिस समाज में तुम रहते हो' 'आजकल लड़ाई का जमाना है आदि रच-नायें महत्त्वपूर्ण है। सामाजिक कविताओं में ग्राम्य जीवन भी मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त हुआ है जैसे —' उठ किसान ओ' तथा चम्पा काले अक्षर नहीं चीन्हती आदि कविताएँ दृष्टव्य हैं। त्रिलोचन मानवीय शक्ति पर समाज के भविष्य का भार समझते हुए कहते हैं —

"जीवित मानव महिमा तुमसे
तुम मानव जीवन के भर्ता
तुम मानव जीवन के कर्ता
तुम मानव जीवन के हर्ता।"[1]

उनकी प्रगतिशीलता में पूँजीवादियों को कोसना। पुरूषार्थ और आशावाद को सँवा-रना भी सम्मिलित है। तभी तो वे कहते हैं —

"बिना पूँजीवाद को मिटाये किसी तरह भी
यह जीवन स्वस्थ नहीं हो सकता।"[2]

इस प्रकार की प्रचारात्मक कविताओं में कवित्व का ह्रास हो गया है और कविता गद्यात्मक लग रही है।

1- धरती, पृ0 15
2- वही, पृ0 58

प्रेमपरक कवितायें :—

त्रिलोचन प्रगतिशील प्रेम के स्वस्थ रूप का चित्रण करते हैं। उनमें विला - सिता का अभद्र रूप नहीं है। आज मैं अकेला' 'जब जिस क्षण मैं हारा' 'मुझे तुम्हारी याद आती' आदि में त्रिलोचन के स्वस्थ प्रेम के दर्शन होते हैं। वे प्रेम में भी सक्रि - यता के प्रबल पोषक है। प्रेम उन्हेकर्म के क्षेत्र से बहिर्मुखी नहीं कर सकता।यथा —

"मेरी दुर्बलता का हर कर
नयी शक्ति नव साहस भर कर
तुमने फिर उत्साह दिलाया
कर्मक्षेत्र में बढ़ूँ संभल कर
तब से मैं अविरल बढ़ता हूँ
बल देता है प्यार तुम्हारा।"[1]

उनके प्रेम में सहजता है। वे ग्रामीण गृहस्थ आश्रम के स्वस्थ प्रेम का सरलता के साथ चित्रण करते हैं। इस प्रकार त्रिलोचन का प्रेम चित्रण स्वस्थ, सरल, निश्छल और सहज है।

'धरती' संग्रह में भावपक्ष की ओर कुछ संकेत दिया गया है। मेरी दृष्टि में इसमें भारतीय जनचेतना का यथार्थ रूप चित्रित हुआ है। यथार्थ का आश्रय लेने के कारण कवि ने 'धरती' में अपनी भावना के पैरों को दृढ़ता के साथ जमाया है। उनके भावोंमें मानसिक स्वस्थता है जिसे वे पूर्ण ईमानदारी के साथ व्यक्त करते हैं।त्रिलोचन का कलापक्ष भी सुन्दर व मौलिक है।'खिला दिन का कमल' 'गीत बन जाते हृदय के भाव' जैसी कविताओं में उनकी सहज कल्पनाओं का सुन्दर रूप दिखाई देता है।

इस संग्रह की कतिपय कवितायें संगीतात्मकता और लयात्मकता से परि - पूर्ण हैं और उनके छन्द भी नव प्रयोगों से युक्त हैं।

1- धरती, पृ० ॥

इस प्रकार त्रिलोचन का यह प्रथम काव्य संग्रह जीवन और समाज की प्रत्येक धड़कन से जुड़ा हुआ है। उसमें परम्परा और प्रयोग दोनों का सामंजस्य है। इसी प्रकार भावपक्ष और कलापक्ष इन दोनों दृष्टियों से हम इसे एक सफल काव्य-संग्रह कह सकते हैं।

गुलाब और बुलबुल —(1956ई0)

त्रिलोचन जी की यह रचना उनकी गजलों और चतुष्पदियों का एक संग्रह है। जिसमें कुल मिलाकर एक सौ दो (102) गजलें तथा एक सौ एक (101)चतुष्पदियों का संग्रह है जो पुस्तक के अन्तिम भाग में संगृहीत हैं। हिन्दी में गजल जैसे ईरानी संस्कृति के तोहफे को उतारना एक विशेष बात है। यद्यपि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने भी 'रसा' उपनाम से हिन्दी में गजलें लिखी किन्तु हिन्दी भाषा की प्रकृति के अनुकूल वे नहीं हो सकीं किन्तु त्रिलोचन ने अपनी गजलों में संवेदन और शिल्प को लेते हुए भारतीय जनमानस के सांस्कृतिक और बौद्धिक पक्ष को अक्षुण्ण रखते हुए हिन्दी के भाषागत संस्कारों को पकड़ने और पहचानने का प्रयास किया है। एक आलोचक के शब्दों में —

"भावों की सहजता और भाषा की सादगी त्रिलोचन की गजलों का खास पहलू है। दरअसल, कवि त्रिलोचन रागमयी स्थितियों को अपने रचनात्मक संयम से आवेग रहित बनाते हैं। इसीलिए इन गजलों में भावों की चमत्कारपूर्ण सृष्टि न होकर अनुभव की दीप्ति मिलेगी।"[1]

त्रिलोचन कहीं भी हों अपना सिद्धान्त और अपना दृष्टिकोण बड़ी निर्भीकता के साथ स्पष्ट करते हैं। उन्हें अपना दुख दर्द दूसरों के सामने सुनाने की आदत नहीं

1- गुलाब और बुलबुल, आवरण पृष्ठ, गोविन्द प्रसाद

है। रहीम ने भी कहा है —

"रहिमन पर घर जाय के दुख न कहिय रोय
सुन अठलइहैं लोग सब बाँट न लैहे कोय।"

इसी से प्रभावित त्रिलोचन भी कहते हैं —

"लोग कच्चा तुम्हें बतलायेंगे खुश होकर
गैर के आगे गिला अपनों का माया न करो।"[1]

उन्हें यदि संसार से सम्मान नहीं मिलता है केवल तिरस्कार ही मिलता है तब भी कोई रंज नहीं है वे अपने इस सिद्धान्त को सबके लिए उपदेशात्मक रूप में व्यक्त करते हैं —"अच्छा तो ये है त्रिलोचन कि तू बुरा मत मान
जो तिरस्कार ही मिलता है पुरस्कार नहीं।"[2]

इस नश्वर शरीर से अधिक लगाव न रखकर प्रेम को सर्वोपरि महत्व देते हैं और यदि शरीर प्रेम की दिव्य ज्योति से युक्त है तो उसे महत्व देते हैं।

"इन्सान क्या है, मिट्टी का पुतला बना मिटा
यद्यपि ज्योति भी है अगर उसमें प्यार है।"[3]

गुलाब और बुलबुल में कवि ने प्रकृति को विशेष महत्व दिया है। वे उससे प्रेरणा लेते हैं। प्रकृति के प्रति अपना रागात्मक दृष्टिकोण व्यक्त करते हैं। उन्हें प्रकृति से जो उपदेश मिलता है उसे अपनी संघर्षात्मक स्थिति में भी स्वीकार करते हैं —

"खिड़की पे जो गौरैया चहचहाती है
जीवन के गान अपने वह सुनाती है
जाने कहाँ कहाँ से दिन में जा-जाकर
प्राणों की लहर पंखों में भर लाती है।"[4]

1- गुलाब और बुलबुल, पृ० 18 2- गुलाब और बुलबुल, पृ०20
3- वही, पृ० 66 4- वही, पृ० 46

वे प्रकृति के परोपकारी रूप पर मुग्ध होकर कहते हैं —

"शीश पर फूल फल जो लेता है
दूसरों को ही सौंप देता है
छाया अपनी लिए सदा तत्पर
वृक्ष ही बस परार्थ चेता है।"[1]

यहाँ पर कवि ने वृक्ष को ही परोपकारी लिखकर प्रकारान्तर से मानव जीवन की स्वार्थपरता पर गहरी चोट की है। वे मानव जीवन में कार्यरत व्यक्ति के लिए धुन का पक्का होना अत्यावश्यक मानते हैं क्योंकि वे स्वयं ही धुन के पक्के हैं। उनकी लगन सच्ची है और उस लगन में सब कुछ भूल जाते हैं —

"जिनके जी में लेगन है धुन है, उन्हें चैन कहाँ?
धुन में चलते हैं, धुन में ही विराम करते हैं।"[2]

इस प्रकार त्रिलोचन जी का यह संग्रह भावना प्रधान है। उसमें शाब्दिक चमत्कार गौड़ है। उनकी भाषा में स्वच्छता और सादगी है। उसका प्रभाव बड़ा ही तीव्र है। इस संकलन में जहाँ हिन्दी और उर्दू शब्दों का सम्मिश्रण है वहीं वे आंचलिक शब्दों के प्रयोग से भाषा की आत्मीयता में वृद्धि करते हैं एक आलोचक के शब्दों में —

"दरअसल त्रिलोचन की गजलों में लफ्जों की झंकार कम और भावना का ज्वार ज्यादा है। उनकीगजलों में झरने का वेग और संगीत भरा है।"

अस्तु मेरी दृष्टि में गुलाब और बुलबुल 'हिन्दी के लिए अपने ढंग का एक नया प्रयोग है जिसमें हिन्दी की प्रकृति उसके संस्कारों को सुरक्षित रखते हुए कवि ने उसे एक नए रूप में प्रस्तुत किया है। उन्होंने इसमें जो प्रेम की पूजा व्यक्त की है

1- गुलाब और बुलबुल, पृ0 46

2- ऋतुगंध, पृ0 100 अंक नौ, रवीन्द्र उपाध्याय।

उसमें हा हाकार का स्वर नहीं सुनाई देता अपितु एक विशिष्ट गम्भीरता दिखलाई पड़ती है। "कहते न बने सहते ही बने मन ही मन पीर पिरइबो करे" पजनेश की इन पंक्तियों में व्यक्त सिद्धान्त इनकी गजलों में पूर्णतः उतर आया है। उनमें प्रयुक्त उर्दू शब्दावली भी इतनी क्लिष्ट नहीं है जो जनमानस में न उतर सके। ये यहाँ भी अपनी आंचलिक शब्दावली का मोह संवरण नहीं कर सके। इन शब्दों के प्रयोग से भी कवि ने अपनी गजलों एवं चतुष्पदियों को संवारने का सफल प्रयास किया है। इस प्रकार हिन्दी में गजलों का यह प्रयोग नयी विधा के क्षेत्र में सर्वथा प्रशंसनीय एवं अभिनन्दनीय है।

दिगन्त —(1957ई0)

प्रस्तुत काव्य संग्रह उन्नीस सौ सत्तावन में प्रकाशित हुआ। इसमें कवि की काव्य प्रतिभा का क्रमिक विकास हुआहै। इसमें कुल सत्तावन सानेट संग्रहीत हैं। सानेट छन्द अंग्रेजी छन्द है। यहाँ पर इनकी समाजवादिता की पृष्ठभूमि पर प्रगतिशील चेतना का विस्तार अधिक है। इसके सम्बन्ध में एक आलोचक का मत है —"धरती के कविने दिगन्त तक पहुंचते-पहुंचते अपनी काव्यात्मक प्रतिभा में एक प्रकार की नवीनता और वैविध्य का समावेश किया है।"[1]

प्रस्तुत संग्रह की रचनाएँ चार वर्गों में विभाजित की जा सकती है —

(1) प्रगतिशील सामाजिक कविताएँ

(2) प्रेमपरक कविताएँ

(3) राजनीतिपरक कविताएँ

(4) अन्य स्फुटिक कविताएँ

1- उमेश मिश्र, प्रगतिवादी काव्य, पृ0 249

प्रगतिशील सामाजिक कविताएँ :-

इस संग्रह की अनेक कविताएँ यथार्थवादी सामयिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करती हैं। यथा--

"करता हूँ आक्रमण धर्म के दृढ़ दुर्गों पर
कवि हूँ नया मनुष्य यदि मुझे अपनायेगा
उन भानों में अपने विजय गान गायेगा।"[1]

इस प्रकार त्रिलोचन सामाजिक वैषम्य के विरोधी हैं। इसलिए वे यहाँ क्रान्तिकारी के रूप में भी दिखते हैं। ऐसे स्थलों में उनका व्यंग्य भी बड़ा चुटीला हो जाता है। वे यहाँ स्पष्ट रूप से मार्क्सवाद की प्रगतिशील चेतना से प्रभावित हैं।

प्रेमपरक कविताएँ :-

त्रिलोचन का प्रेम स्वस्थ और सपुष्ट रूप में यथार्थपरक गतिशील होकर व्यक्त हुआ है। इसलिए स्पष्टता के साथ उन्होंने संयोग और वियोग दोनों पक्षों को चित्रित करने में सफलता प्राप्त की है। उनके इस पवित्र प्रेम मेंकितनी पवित्रता और निश्छलता के दर्शन होते हैं। वे कहते हैं —

"ऐसा मत समझो तुमको मैं नहीं चाहता।
तुम्हें चाहता हूँ अपने प्राणों से बढ़कर
यह अत्युक्ति नहीं है, लेकिन मैं कराहता कभी नहीं हूँ।"

प्रेम की गम्भीरता में डूबकर कवि वियोग की स्थिति में कहता है —

"काँटे गड़कर पैर पकड़ लेते हैं जैसे
वैसे ही यह याद तुम्हारी मेरे मन को
पकड़ लिया करती है। तब घर और विजन को
भूल भाल जाता हूँ और न जाने कैसे
आँखों में वह पथ पहाड़ी आ जाता है।"[3]

1- दिगन्त, पृ0 15
2- वही, पृ0 14 3- वही, पृ0 20

इस उद्धरण से कवि के प्रेम की गम्भीरता और उसकी सत्यता का सहज में ही प्रमाण मिल जाता है।

राजनीतिपरक कविताएँ :—

राजनीति के क्षेत्र में त्रिलोचन मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित है। इसकी झलक उनकेअनेक कथनों में प्राप्त होती है। यथा —

"मुक्ति कहाँ है, मुक्ति कहाँ है? जीवन बन्दी है,
पंछ फड़फड़ाती है मन में मुक्ति विचारी,
तन के बंधन में जन मन निरूपाय पड़ा है।"[1]

इसी प्रकार त्रिलोचन नेअन्य अनेक राजनीतिक रचनाएँ की हैं जिनमें कभीनेताओं के भ्रष्टाचार पर और कभी सरकारी तन्त्र पर कठोर प्रहार किया है।

अन्य स्फुटिक कविताएँ :—

कवि ने अनेक महापुरूषों के विषय में भी कविताएँ लिखी हैं — काशी का जुलाहा, तुलसी बाबा, गालिब आदि ऐसी ही रचनाएँ हैं। इनके माध्यम से कवि ने अपनी श्रद्धा भावना व्यक्त की है। यथा —

"तुलसी बाबा, भाषा मैंने तुमसे सीखी
मेरी सजग चेतना में तुम रमे हुए हो।"

उक्त कविताओं के अतिरिक्त उन्होंने अपने व्यक्तिगत जीवन के विषय में अनेक रचनाएँ की हैं।

इस प्रकार दिगन्त की जिन रचनाओं में कवि राजनीतिक या उपदेशक बन जाता है वहाँ पर कवित्व का ह्रास हो जाता है। किन्तु जहाँ उसका स्वाभाविक कवि

1- दिगन्त, पृ0 39
2- वही, पृ0 56

उभरकर सामने आता है वहाँ सजीवता मार्मिकता और कलात्मकता उसे कवित्व के उचित धरातल पर प्रतिष्ठित कर देती है।

ताप के ताए हुए दिन :—(सन् 1980)

सन् 1980 में यह संग्रह प्रकाश में आया। इसमें कुल 45 कविताएँ संकलित हैं जिस पर इन्हें '1981 का 'साहित्य अकादमी' पुरस्कार प्राप्त हुआ। भावाभिव्यंजना की दृष्टि से इस संग्रह की कविताओं में सामाजिक यथार्थ की व्यंजना करने में कवि विशेष सफल हुआ है। उसने ग्राम समाज और कृषक जीवन को निकट से देखा है। इसी प्रकार नागरिक जीवन की समस्याओं औरवहाँ पर श्रमिकों की दुखद परिस्थितियों का अनुशीलन किया है। वे वर्ग वैषम्य और वर्ग संघर्ष को स्पष्टता के साथ अंकित करते हैं और राजनीतिक क्षेत्र पर व्यंग्य बाण वर्षा कर अपनी लेखनी को पैनी करते हैं।

इस संग्रहमें कुछ ऐसी भी रचनाएँ हैं जिनका व्यक्तिगत अनुभूतियों से सीधा सम्बन्ध है। वे प्रेम को भी उदात्त एवं प्रगतिशील दृष्टिकोण से देखते हैं। प्रकृति यहाँ भी उन्हें प्रेरणायें देती है। वह कवि को जीवन का मार्ग दिखलाती है और अपने में रमा कर कर्मठता का पाठ पढ़ाती है। इसके अतिरिक्त कवि ने अपने व्यक्तिगत जीवन और काव्य साधना के विषय में भी बहुत कुछ लिखा है। इस प्रकार त्रिलोचन का यह संग्रह कवि की व्यापक मानवीय चेतना का केन्द्र बिन्दु है। यथा —

"मैं सबके साथ हूँ अलग-अलग सबका हूँ।
मैं सबका अपना हूँ, सब मेरे अपने हैं।"[1]

1- ताप के ताए हुए दिन, पृ0 63

उनकी मगई-महरा नामक विस्तृत कविता सामाजिक चेतना का यथार्थ चित्र है जिसमें निम्नवर्ग में होने वाली पंचायत, जाति का कोड़ा, दण्डविधान आदि का सजीव चित्र प्रस्तुत किया गया है।

त्रिलोचन ग्रामीण जीवन की विषमताओं और विसंगतियों को भलीभांति प्रस्तुत करते हैं। वे कहते हैं कि –

"विषम समाज व्यवस्था सम जब दिखलाएगा।
तभी, तभी सन्तोष इस हृदय में आएगा।"[1]

प्रेम के विषय में त्रिलोचन ने इस संग्रह में दाम्पत्य प्रेम को वरीयता दी है। यहां उन्होंने संयोग और वियोग दोनों पक्षों का सरस एवं स्वाभाविक चित्रण किया है। इसमें कवि कितना निश्छल एवं स्पष्ट है। यथा –

"आओ इस आम के तले
यहां घास पर बैठें हैं
जी चाहा बात कुछ चले
कोई भी और कहीं से।"[2]

इस संग्रह में कवि ने प्रकृति चित्रण में अनेक कविताएँ लिखी हैं। प्रकृति के आलम्बन एवं एवं उद्दीपन रूप इन दोनों के चित्रण में कवि की प्रकृति रम गयी है। इनकी प्रकृति में मानवीय चेतना भी मिल गयी है। इसलिए प्रकृति कोमल, मधुर, सुन्दर, उग्र, भयंकर और प्रेरक होकर कविताओं में उतर आयी है। यथा –

"नदी ने कहा था, मुझे बांधो,
मनुष्य ने सुना और
आखिर उसे बांध लिया।

1- ताप के ताए हुए दिन, पृ० 93

2- वही, पृ० 38

बाँधकर नदी को
मनुष्य दुह रहा है
अब वह कामधेनु है।"[1]

कवि ने वर्तमान राजनीति पर भी कठोर व्यंग्य किया है। चुनाव के दिनों में नेता लोग कैसे-कैसे गुल खिलाते हैं इसे कवि के शब्दों में देखिए —

"इलायची से बसा हुआ रूमाल लगाया
आँखों पर कि वह चले आँसू और साथही
नाम किसान मजूर का लिया और हाथ ही
नया दिखाया नेता ने, स्वर नया जमाया
उसी पुराने गलेसे चकित थे सब श्रोता
कैसे शेर बन गया बिल्ली, कौन बात थी।"[2]

इस संग्रह में त्रिलोचन जी की व्यक्तिपरक कवितायें केवल वैयक्तिक नहीं हैं अपितु वे मानव जीवन का प्रतिनिधित्व करती हैं।त्रिलोचन स्वयं इस संग्रह के विषय में कहते हैकि मैंने इसमें सामान्य सत्य का विशेषीकरण करने का प्रयास किया, किन्तु 'घर वापसी, अपना ही घर,' सरसों के फूल आदि कविताओं में हमें कवि के व्यक्तित्व की भी झलक मिल जाती है।

काव्य कला की दृष्टि से प्रस्तुत संग्रह में 31 छोटी-छोटी कविताएँ हैं, 10 सानेट और चार लम्बी कविताएँ हैं। जो सरस, रागात्मक और प्रवाहयुक्त हैं।कुछ में तो लोकगीतों जैसा आनन्द आता है। छन्दों की दृष्टि से इसके सानेट बहुत ही सफल हैं। इस कला में वे बच्चन और प्रभाकर माचवे से भी आगे बढ़ गये हैं।इसी - लिए फणीश्वरनाथ रेणु ने लिखा है —"त्रिलोचन के सानेट के लिए ही मैं उसे शब्द-योगी कहता हूँ।"

1- ताप के ताए हुए दिन, पृ0 13 2- ताप के ताए हुए दिन, पृ0 52
3- त्रिलोचन के काव्य, राजू0एम0फिलीप, पृ0 142

शैली की दृष्टि से कवि ने इसमें वर्णनात्मक शैली को विशेष महत्व दिया है किन्तु व्यंग्यात्मक शैली, उद्बोधन शैली, विवेचनात्मक शैली और भावात्मक शैली की भी सरसता विद्यमान है। जीवन का यथार्थ प्रत्येक शैली में विभिन्न रूपों में मिलता है। उनकी भाषा सरल और सहज है उसमें लोकोक्तियोंऔर मुहावरों के भी प्रयोगमिलते हैं। वे जनजीवन की भाषा को अधिक महत्व देते हैं।

बिम्ब विधान की दृष्टि से यह संग्रह प्रशंसनीय है उसमें श्रव्य बिम्ब और दृश्य बिम्ब अधिक महत्वपूर्ण हैं।

इस प्रकार प्रस्तुत संग्रह त्रिलोचन की भाव-भूमि और वैचारिक चिन्तन का दस्तावेज है जिसमें यथार्थवादी प्रगतिशील चेतना की कलात्मक अभिव्यक्ति करने के लिए कवि ने कथ्य के अनुकूल छन्दों का चयन किया है। वे प्रगतिशील काव्य परम्परा के महान पोषक के रूप में उदित हुए हैं और उनकी सारस्वत प्रतिभा का सम्मान करके साहित्य अकादमी स्वयं सम्मानित हुई है।

<u>शब्द :—</u> (1980)

त्रिलोचन की रचनाओं में इस संग्रह का अनेक दृष्टियों से बड़ा महत्व है। अनेक आलोचकों ने भी इसकी प्रशंसा की है। श्री दिविक रमेश ने लिखा है — "त्रिलोचन की किताबों में मुझे सबसे जानदार और शानदार शब्द ही लगती है।इस रचना में 117 सानेट छन्दों का संग्रह है और 1980 ई0 में इसका प्रकाशन हुआ। इसमें जहाँ एक ओर कवि ने काव्य ि दर्शन सम्बन्धी रचनाओं को रखकर अपना सूक्ष्म चिन्तन प्रस्तुत किया है वहीं उसने सामाजिक चेतना की भी यथार्थ झलक प्रस्तुत की है। उनकी समस्त कविताओं को पाँच वर्गों में विभाजित किया जा सकता है —

(1)प्रकृति विषयक रचनाएँ

(2)काव्य चिन्तन विषयक रचनाएँ

(3)दार्शनिक रचनाएँ

(4)सामाजिक यथार्थपरक रचनाएँ

(5)अन्य स्फुटिक रचनाएँ

<u>प्रकृति विषयक रचनाएँ</u> :— इस संग्रह में कवि ने प्रकृति का सुंदर एवं गाम्भीर्य रूप प्रस्तुत किया है। यथा —

"जो कल भरी-भरी लगती थी, अब काँटे का
आच्छद पहने इस गुलाब की टहनी ही रह
गई, कह गई बिन बोले जैसे — आभारी
हूँ मैं, पाया है मैंने अपने काँटे का।"[1]

इसके अतिरिक्त 'उड़ते हैं पारावात' तरू की छाया' 'दोपहरी' 'केन किनारे' आदि कविताओं में उनके सुंदर से सुंदर प्राकृतिक चित्र मिलते हैं जिसमें कवि की रागात्मकता साकार हो उठी है।

<u>काव्य चिन्तन विषयक रचनाएँ</u> :—

ये रचनाएँ बड़ी ही गम्भीर हैं। इनमें शब्द - शब्द से, 'आहत शब्दों से' 'बोले मुझसे शब्द' 'स्वर समुद्र' आदि रचनाओं में कवि का चिन्तन बड़ा ही प्रौढ़ है।

यथा — "शब्दों में भी हाड़ मांस है, जीवन घर कर
वे भी जीवधारियों के स्वरयंत्र संभाले
स्फुट अस्फुट दो धाराओं में प्रवहमान है।"[2]

<u>दार्शनिक रचनाएँ</u> :— इस शीर्षक के अन्तर्गत कवि दार्शनिक एवं रहस्यवादी सा प्रतीत होता है।इस वर्ग की कुछ रचनाएँ 'तितिक्षा' 'हार-हार कर' 'जीवन अब तक' आदि का विशेष महत्व है। यथा —

1- शब्द' पृ0 16
2- वही, पृ0 32

समझाया

"तुमने मुझे मर्म जीवन का – मैंने पाया
तुम जल हो मैं निहित बिंब हूँ, उड़ते घन के
प्रतिबिम्बों पर सुस्थिर, तार हृदय के झनके
ससि ससि से, जीवन जग कर आगे आया।"[1]

सामाजिक यथार्थपरक रचनाएँ —

इस प्रकार की रचनाओं में कवि विशेष प्रगतिशील प्रतीत होता है। दुःख से दबे हुए मानव' ईश्वर''अपना ही दुःख आदि रचनाएँ इसी प्रकार की है।

यथा :— "दुःख से दबे हुए मानव, आ आ मैं ले लूँ
तेरा सब दुःख तू हल्का होकर सिर ताने
आसमान में इस दुनिया को अपनी माने
जिसको अपनी नहीं मानता किसको दे लूँ
तेरा ईर्ष्या-द्वेष-कपट-पाखण्ड उसे लूँ
और डाल दूँ तुरत महासागर के थाने।"[2]

अन्य स्फुटिक रचनाएँ :—

स्फुट रूप में कवि की वैयक्तिक अनुभूतियाँ, प्रेम, महापुरूषों पर आधारित कविताएँ एवं आत्मकथ्य परक रचनाएँ आती हैं। यथा —

"स्निग्ध कूट कौशल है जो तुम मुझे देखकर
जल झझा में थोड़ा सा मुस्का देती हो,
मेरे ऊपर क्या विपत्ति में रस लेती हो।"[3]

यहाँ पर कवि ने प्रेम के दृश्य को कौशल के साथ प्रस्तुत किया है। इस प्रकार त्रिलोचन का यह संग्रह मेरी दृष्टि में भी अत्यन्त उत्कृष्ट है। उसमें भावना, और कर्तव्य एक

1- शब्द, पृ0 21
2- वही, पृ0 19   3- वही, पृ0 20

रस हो गये हैं। प्रकृति और जीवन एक दूसरे से इतने मिल गये हैं कि जिनको सरलता से पृथक नहीं किया जा सकता। इससंग्रह की रचनाओं में हृदय पक्ष और बुद्धिपक्ष का जैसा सुन्दर समन्वय मिलता है, स्यात् वैसा अन्य संग्रह में नहीं। इनमें कवि का चिन्तन अतल की गहराइयों तक पहुंच गया है। जीवन और मृत्यु के दोनों स्वरों के बीच कवि ने क्या-क्या नहीं देखा और किसके-किसके चित्र नहीं उतारे। यदि हम यह कहें कि इसमें कवि की गहनतम जीवन की अनुभूतियों के साथ चिन्तन का समन्वय करके कवि ने कलात्मक कौशल का सुन्दर प्रदर्शन किया है तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। स्वयं त्रिलोचन जी ही ने मुझे साक्षात्कार में बतलाया था कि मैं अन्य संग्रहों की तुलना में 'शब्द' से सर्वाधिक सन्तुष्ट हूं।"[1]

उस जनपद का कवि हूं — (1981ई0)

'उस जनपद का कवि हूं' काव्य संग्रह त्रिलोचन जी का एक विशिष्ट काव्य संग्रह है जिसमें संकलित कविताओं का रचनाकाल 1950 से 1954 तक है। इसमें अधिकांश कविताएँ सन् 1951 की हैं।

"संकलित कविताओं का रचनाकाल 1950-54 है। 53 और 54 की कविताएँ तीन से चार तक हैं, 50 की कविताएँ एक दर्जन से कुछ ऊपर हैं, 51 की कविताओं की संख्या अधिक है और 52 की कविताएँ अपेक्षाकृत कम है।"[2]

इस रचना संग्रह का प्रथम संस्करण 1981 में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में कुल 106 कविताएँ संग्रहीत हैं। कविवर केदार सिंह के शब्दों में "उस जनपद का कवि हूं" की कविताएँ त्रिलोचन की काव्य-यात्रा के एक महत्वपूर्ण दस्तावेज हैं। 1950 के

1- कवि से व्यक्तिगत साक्षात्कार के आधार पर 5-8-89

2- उस जनपद का कवि हूँ, स्वगत, त्रिलोचन।

आसपास का समय समकालीन भारतीय इतिहास और त्रिलोचन की कविता में एक विलक्षण उथल-पुथल के साथ प्रवेश करता है। मतलब इसी समय त्रिलोचन सानेट की ओर मुड़ते हैं। त्रिलोचन का सानेट की ओर मुड़ना एक ऐसी घटना थी जो बिल्कुल चुपचाप घटित हुई पर जिसने आगे आने वाली कविता की नियति को दूर तक प्रभावित किया।"[1]

इन कविताओं का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है —

(1) आत्मकथ्यात्मक

(2) प्रकृति विषय

(3) प्रगतिशीलतापरक

(4) प्रणयपरक

(5) स्फुटिक

आत्मकथ्यात्मक रचनाएँ :— इस वर्ग में वे कविताएँ आती हैं जिन्हें हम त्रिलोचन की वैयक्तिक रचनाएँ कह सकते हैं। इनमें कवि का जीवन ही मुख्य रूप में सामने आता है। कुछ रचनाएँ उनके ऐहिक जीवन को व्यक्त करती हैं और कुछ उनके कवि व्यक्तित्व को इंगित करती हैं। 'वही त्रिलोचन है' 'चीर भरा पाजामा' 'भीख माँगते' 'हृष्ट-पुष्ट उन्नत शरीर' 'पीछे मुड़कर देख रहा हूँ' आदि रचनाएँ उनके भौतिक जीवन पर प्रकाश डालती हैं और कवि है वही त्रिलोचन' प्रगतिशील कवियों की नयी लिस्ट' कविता सुनते-सुनते' 'जब मैंने ये कहा' 'कवि है नहीं त्रिलोचन' 'शर्मा ने यह कहा' 'कविता के बेड़बे पर' 'गद्य-पद्य कुछ लिखा करो' 'बड़े बड़े शब्दों में' आदि रचनाएँ उनकी काव्य साधना से सम्बन्धित हैं।

1- अजर विश्व, 'उस जनपद का कवि हूँ' नई दुनिया 6 जून, 1982 पृ0 7

इनकी आत्मपरक कविताओं की यह विशेषता है कि इन्होंने अपने विषय में ही व्यंग्य किया है जो किसी भी कवि के लिए सरल बात नहीं है। इसके अतिरिक्त ये अपनी प्रशंसा से दूर रहकर तटस्थ भाव से लिखते हैं। इन कविताओं की एक विशेषता यह है कि इनकी व्यष्टिगत भावना भी समष्टि के लिए है।

"खाली पेट भरूं कुछ काम करूं की चुप मरूं
क्या अच्छा है जीवन जीवन है प्रताप से
स्वाभिमान ज्योतिष्क लोचनों में उतरा था,
यह मनुष्य था, इतने पर भी नहीं मरा था।"[1]

इसी प्रकार अपनी कविता के सम्बन्ध में भी वे व्यक्ति से बढ़कर जीवन की व्यापक परिधि तक पहुंचते हैं —

"बड़े- बड़े शब्दों में बड़ी-बड़ी बातों को
कहने की आदत औरों में है पर मेरा
ढर्रा अलग गया है, ढाकों के पातों को
थाली की मर्यादा देकर पहला घेरा
तोड़ दिया, रस जीवन का जीवन से।"[2]

<u>प्रकृति-विषय</u> —

त्रिलोचन का स्वच्छन्द व्यक्तित्व प्रकृति के विविध रूपों में अनेक रूपता के साथ रमा हुआ है। प्रस्तुत संग्रह में 'घिर आए बादल बसन्त के''प्राणाधिके बसन्त आ गया'है''चांदनी रात है''ये शिरीष का फूल''बाढ़ चांदनी की आयी है''संध्या ने मेघों के कितने चित्र बनाए''आंय-आंय करती दुपहरिया''कटहल के फूलों की लहरों में''फूल मुझे भाये बबूल के''बादल घिरे हुए हैं''बैठे धूप में हरी मटर की'

1- उस जनपद का कवि हूं, पृ0 13
2- वही, पृ0 116

'नन्ही सी गौरेया' 'आदि कविताएँ प्रकृति के विविध रूपों के सजीव चित्र प्रस्तुत करती है। इनका प्रकृति चित्रण अति सामान्य भावभूमि से यात्रा करता हुआ अपनी मौलिक छटा दिखलाने में सक्षम है, यथा —

"रवि शशि का अभिनव आयोजन है कण-कण पर
वर्ण-वर्ण उच्छ्वास पा गया है क्षण-क्षण पर।"[1]

यहाँ प्रकृति की गम्भीरता दर्शनीय है। वैसे तो त्रिलोचन ने प्रकृति की प्रतीकात्मकता को अधिक नहीं सवारा किन्तु जहाँ कहीं भी उसकी प्रतीकात्मकता स्वीकार करते हैं वहाँ उनकी कलात्मकता निखर उठती है।

"खिलो-खिलो, फुल खिलो, तुम्हारे खिलने से ही
मेरा मन खिलता है, किसी डाल पर हो तुम
सौरभ बन कर उड़ो, पवन की लहरों पर तुम
पास तुम्हारे आता हूँ, इन लहरों से ही।"[2]

उन्होंने प्रकृति का उद्दीपन रूप में भी स्वीकार कियाहै। उनकेउद्दीपन में भी एक मौलिकता है।

"चाँदनी रात है, सन्नाटा है, बैठा हूँ
गंगा के तट पर, धारा बहती जाती है,
अविराम भाव के अतल सिंधु में पैठा हूँ
नीरव निश्छल यह हवा कहाँ से आती है।"[3]

त्रिलोचन की प्रकृति के विषय में एक आलोचक का कथन यथार्थ है —

"उषा दुपहरिया, 'सन्ध्या, 'रात' 'चाँदनी आदि के मनोरम चित्र त्रिलोचन जी ने अपनी कविताओं में खीचे हैं। 'हरियाली के माथे पर बिंदी शोभित 'उषा' 'अयि-अयि करती नाच रही' 'जलती हुई दुपहरिया, मेघों से हाथी तथा घोड़े, पेड़' आदमी, जगत आदि के चित्र बनाने वाली सरव्यथ, अपरिस्फुट, रहस्यपूर्ण आकार वाले

1-
2- उस जनपद का कवि हूँ, पृ035
3- वही, पृ0 47

चित्रों को रचने वाली रात किरणों के सुकुमार कलेवर में स्वर्ग की सारी श्री को उमड़ने वाली चाँदनी का बाढ़, आदि इस संग्रह की खासियत है।

प्रगतिशीलतापरक :—

त्रिलोचन मुख्य प्रगतिशील कवि हैं। उनकी इन रचनाओं में सामाजिक यथार्थ अपने वास्तविक रूप में व्यक्त हुआ है, जिनमें मार्मिकता और अनुभूति मुखर है। कभी सीधे ढंग से कभी लाक्षणिक पद्धति से अपनी बात कहते हैं। यथा —'भीख माँगते' 'दुखों के बाणों से बिद्ध' 'यह निर्मम आघात सहो' 'चन्द्रमुखी ने गोरकी की तस्वीर निहारी' 'अपश्रकथ प्रसाद' 'जैसे दीवारों को खा जाती है नोना' 'आओ मुकाबला करें' 'नींद कहाँ है नींद कहाँ है' 'यह कबन्ध युग है' 'कल फिर वह भिक्षुक आया था' 'प्रगतिशील कवियों की नयी लिस्ट' 'गद्य-वद्य कुछ लिखा करो' 'बड़े-बड़े शब्दों में' आदि रचनाओं में कवि की प्रगतिशीलता अपने विविध रूपों में व्यक्त हुई है।

"मैं यथार्थ का प्रेमी हूँ, शिव हो, सुन्दर हो,
पद पदार्थ का संग चाहता हूँ, जो जमा हुआ है:
गर्दों सामाजिक जीवन समाज पर वह अड़ जाए।"[1]

यहाँ पर कवि अपने यथार्थ के स्वरूप को व्यक्त करता है। उसने सुन्दर की अवहेलना नहीं की है। इतना अवश्य है कि वह सामाजिक जीवन को स्वच्छ रूप में देखने का आग्रही है। उसे दुर्बलों के प्रति सहानुभूति है।

इनकी प्रगतिशीलता कभी-कभी नयी-नयी उपमायें लेकर गम्भीर सामाजिक यथार्थ को व्यक्त करती है —

"जैसे दीवारों को खा जाती है नोना
व्यथा धैर्य को खा जाती है, इससे बचना
कठिन दिखायी देता है बेचारी सोना

1- त्रिलोचन के काव्य, राजू०र०म०पिलीप, पृ०94 2-उस जनपद का कवि हूँ, 86

सोने जैसी पक्की साफ़ थी तो भी लचना
पड़ उसे किस से उसका लेना देना।"[1]

निष्कर्ष यह है कि त्रिलोचन की प्रगतिशीलता इतनी व्यापक है कि उसमें भारतीय ग्रामीण जीवन से लेकर विविध क्षेत्रीय यथार्थ को इस प्रकार व्यक्त किया है जिसमें कलात्मकता बनी रहती है। व्यंजना शक्ति का चमत्कार उनकी अनुभूति से जुड़कर बोलता है। उनमें जहाँ कहीं व्यंग्य व्यक्त होता है, वहाँ काव्य का प्रभाव विशिष्ट बन जाता है। यथा —

"है यह कबंध युग है- सिर सबका पेट में घसा है,
बाहें खोजने की जाती है इधर उधर जब भी वे
जो कुछ पाती है उसे जकड़ लाती है।"[2]

इस आधार पर हम कह सकते हैं कि इस संग्रह में प्रगतिशीलता अपने चरम शिखर पर आरूढ़ है।

प्रणय-परक :— प्रगतिशीलता में प्रणय व्यापार कोई अश्लील नहीं है। वैसे भी श्रृंगार को 'रसराज' तो कहा ही गया है। इस दृष्टि से त्रिलोचन की प्रणय विषयक रचनाएं नये सामाजिक यथार्थवाद को व्यक्त करती हैं। वे प्रेम को भी प्रगतिशील दृष्टिकोण से देखते हैं। उनकी प्रणयगत अनुभूतियाँ स्वस्थ एवं स्वाभाविक हैं। उनमें न अतिरिक्त बौद्धिकता है और न भावुकता का अतिरेक है। कतिपय उदाहरणों से उनके प्रेम का उदात्त रूप स्पष्ट कर रहे हैं।

"सखि, आज तुम समीप नहीं हो यहाँ मेरा मन
अस्थिर है सोचता हूँ — कहाँ होगी कैसे
तुम इस समय न जाने कैसा सूनापन
प्राणों में भर आया है, तुम भी तो वैसे
बेगानों में नहीं गयी हो।"[3]

1- उस जनपद का कवि हूँ, पृ० 73
2- वही, पृ० 103
3- वही, पृ० 33

इन पंक्तियों में लोक श्रृंगार की सरस और सरल अभिव्यक्ति हुई है? प्रणय की यह साधना वासना से ऊपर ऊँची उठी हुई है —

"कुछ हो तुम हो, ध्यान तुम्हारा, याद तुम्हारी
रहे, और कुछ न हो, रहूँगा मैं आभारी।'[1]

इन पंक्तियों में प्रेम का कितना उदात्त और स्पृहणीय रूप देखने को मिलता है —

"पास तुम्हारे ही मन उड़-उड़ कर जाता है,
स्वर भी गान तुम्हारे जुड़-जुड़ कर गाता है।"[2]

यहाँ पर कवि की लगन और उसकी प्रणय साधना का रूप कितना स्पष्ट है। वियोग की स्थिति में भी वह आश्वस्त है। मन की साध मन से मिलकर कुछ गुनगुनाने के लिए कितनी आतुर है। अधोलिखित पंक्तियों में देखिए —

"प्रिये, कहीं भी रहो, कहो पर अपने मन की बात
मेरे मन से दो लहरें अपने जीवन की।"[3]

त्रिलोचन जी ने प्रणय का संयोग पक्ष भी गहरी अनुभूतियों के साथ कलात्मक ढंग से व्यक्त किया है। इसकी सूक्ष्मता अवलोकनीय है —

"पलकें नीचे गिरीं, आँख में कहाँ ढिठाई
तब तक आ पाई थी, रोम-रोम ही मानों
आँख बन गया, सिहरन से लहराया, दानों
से किस के यह हर्ष भरा था और मिठाई
मन में पाग उठी थी मेरी और तुम्हारी
दो दुनिया अब एक थी उधर कोयल बोली
कहीं पपीहा बोला, केरी यों ही हो ली
प्राणों की मन की छवि अपने आप उतारी
हमने अपनी-अपनी आँखों में यह ऐसे/हुआ कि जान न पड़ा'[4]

1-उस जनपद का कवि हूँ, पृ032   2- वही, पृ0
3- वही, पृ0 20   4- वही, पृ0 39

निष्कर्ष यह है कि प्रस्तुत संग्रह में प्रेम के विविध रूपों का उदात्त चित्रण किया गया है। उनकी प्रेम विषयक भावानुभूति पाठक के मन में तीव्र प्रभाव छोड़ती है। उनकी प्रगतिशीलता का यह रूप भी विशेष महत्वपूर्ण है।

स्फुटिक :—

इस संकलन में कुछ रचनाएँ ऐसी भी है जिन्हें व्यक्ति विशेष पर लिखी हुई कविताएँ कह सकते हैं। उदाहरणार्थ — 'बापू तुम होते तो' 'यह कविता गांधी के सम्बन्ध में लिखी गयी है। उन्होंने अपने पिता जी के ऊपर भी सुन्दर कविता लिखी है —' हृष्ट-पुष्ट उन्नत शरीर वर' यही वह कविता है।

संस्मरण के रूप में भी कुछ कविताएँ लिखी गयी हैं, 'कल फिर वह भिक्षुक' 'सुकनी उस बुढ़िया को' आदि रचनाएँ इसी प्रकार की है।

इस प्रकार प्रस्तुत संग्रह की कविताएँ अपने युग की धड़कने हैं। कवि जिस समाज में रहता है उसका यथार्थ-परक चित्रण करने में उनकी कलम ने जरा भी संकोच नहीं किया। उनकी वैयक्तिक कविताएँ भी समष्टि चेतना को झकझोर देती है। कविवर केदारनाथ सिंह ने भी इस संग्रह के विषय में अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किए हैं —

"उस जनपद का कवि हूँ" की कविताएँ एक जनपद से उठकर अपने समय की सम्पूर्ण जनचेतना के अनेक ज्ञात विज्ञात छोरों को छू लेने वाली कविताएँ हैं, जिनमें स्वाधीनता के बाद के कुछ आरम्भिक वर्षों की सबसे सच्ची और समर्थ धड़कनें सुनी जा सकती है।"[1]

अरधान :— 'अरधान' का प्रथम संकरण सन् 1983 में प्रकाशित हुआ। इसमें कुल 71 कविताएँ हैं। जिनमें 15 छोटी कविताएँ, केवल तीन पंक्तियों वाली, 19 सानेट हैं, चार बड़ी कविताएँ, एक गद्य कविता दो कहानीनुमा कविताएँ हैं और अन्य बीस कविताएँ हैं। इस संग्रह की विशेषता है कि महाकुम्भ में जो भयानक नरसंहार हुआ था उसका

1- त्रिलोचन के काव्य, राजू०रम०पिलीप, पृ० 11

बड़ा ही रोमांचक एवं प्रभावपूर्ण चित्रण पच्चीस कविताओं के माध्यम से किया गया है। कवि की हार्दिक वेदना कुम्भ का लेखा करते हुए कहती है कि —

"लाशों की प्रदर्शनी देखी कुम्भ नगर में
आज दूसरा दिन था देखा, उमड़ रहा था
झुण्ड दर्शकों का चर्चा थी डगर-डगर में
मानव ने यह असहनीय आघात सहा था
मुर्दे पड़े हुए थे, मुँह नाक से बहा था
काला और पनीला रूधिर, गंध का लहरा
हल्का उठता था .... ।"[1]

'अरघान' में संगृहीत छोटी कविताएँ कहीं-कहीं बिल्कुल निरर्थक जान पड़ती हैं परन्तु कुछ लघु कविताएँ पाठक को प्रभावित कर लेती हैं। यथा — यौवन के विषय में कवि लिखता है —"दौड़ते हुए हिरन
यौवन के
राग है"[2]

यहाँ पर यौवन की चंचलता और अल्पकालिकता को कवि ने कितने सुन्दर ढंग से रूपायित किया है।

प्रकृति के साथ कवि का रागात्मक सम्बन्ध है। इस संग्रह में भी 'बरसाती उषा''प्रसन्न ताल''आंधी''अरण्यानी''तरंग''पलाश''तारे चुपचाप देखा करते हैं' 'जाड़े की घनमाला'आदि रचनाएँ प्रकृति चित्रण से सम्बद्ध हैं। प्रकृतिचित्रण का एकदृश्य—

"महुए के दल निकले
लाल, लाल, लाल, लाल
कोमल, कोमल
छोटे-छोटे
रोमल, रोमल ।"[3]

1- अरघान, पृ0 48 2— अरघान, पृ0 30
3- वही, पृ0 18

यहाँ पर महुए की नवीन पत्रों को कवि ने कितनी सूक्ष्मता से देखकर शब्द-चित्र बनाया है। उसके ही अनुकूल भाषा सौन्दर्य कवि कीअपने देन है। इस संग्रह में सन् 1953 के महाकुम्भ के विषय में जो पच्चीस कवितायें लिखी हैं वे भी सानेट हैं जिसमें कवि का संवेदनशील हृदय व्यक्त हुआ है।

निष्कर्ष यह है कि त्रिलोचन का यह संग्रह मानवीय संवेदनाओं से परिपूर्ण है।काव्यसौन्दर्य की दृष्टि से इस संग्रह का भी विशेष महत्व है। इनकी रचना के सम्बन्ध में एक आलोचक का कथन विचारणीय है -

"त्रिलोचन के यहाँ जो कसाव मिलता है वह संयोजन के संयम से है। भाषा और छन्द में कसी स्थितियाँ ही रूपायित होती हैं। इसीलिए यहाँ रूप है 'रूपवाद' नहीं। त्रिलोचन की शिल्प-साधना स्थिति-योजन कीही साधना है।" [1]

अनकहनी भी कुछ कहनी है —

'अनकहनी भी कुछ कहनी है' यह काव्य संग्रह सन् 1985 ई० में नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ। इसमेंकुल 96 कवितायें संगृहीत हैं और सभी सानेट छन्द में लिखी गयी हैं। इन कविताओं का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है —
(1)चिन्तन प्रधान रचनायें (2) आत्मपरक रचनायें (3)श्रृंगार एवं प्रेम परक रचनायें (4)साम्यवादी रचनायें (5)मानवतावादी रचनायें (6)वैज्ञानिक रचनायें (7)व्यंग्य -परक रचनायें (8)सामाजिक दुर्दशा परक रचनायें (9)नवजागरणपरक रचनायें (10) कवि और साहित्यपरक रचनायें।

चिन्तनपरक रचनायें :-

' इस संग्रह में चिन्तन प्रधान रचनाओं का बाहुल्य है। 'परदा अपनों से होता है''आदर्शों का भेद और मैत्री''दुख तो कोई चीज नहीं है''कहाँ किसी से कुछ

1- आवरण पृष्ठ 'अरघान'

मत''पहली नजर बता देती है''जीना सबसे कठिन काम है''हँसता है अकाल' 'कवि तो मानव आत्मा का''चिन्ताओं के सागर में''सुख के झूले पर'आदि रचनाओं में कवि का बौद्धिकपक्ष उसके गम्भीर चिन्तन को व्यक्त करता है।

"यह दुनिया है, यहाँ कौन किसका है, लग कर
जीना है तो यहाँ कुछ न कुछ करना होगा।
× × × ×
धक्के मारो इसी भीड़ पर, इससे डरना
जीवन को विनष्ट करना है, जिसने छीना
नहीं सिद्धियों को विघ्नों से, उस का जीना
नहीं मनुष्योचित है, यों प्रारब्धवाद से
कुछ भी होता नहीं, अगर औरों से कीना
रखोगे तो क्या पाओगे, खेत खाद से
उर्वर होता है, जीवन भी आघातों से
विकसित होता है, बढ़ता है उत्पातों से।"[1]

आत्मपरक कविताएँ :— कवि का आत्मपरक कथ्य भी व्यापक है। यथा :—

"हृदय चाहते हो तो दे दूँ, इस में कोई
द्विधा नहीं है और हृदय ही तो जीवन का
मूल स्रोत है : उसे सौंप कर तुम्हें विजन का
भय मन से दूर हो जाएगा उसकी ....।"[2]

यहाँ कवि ने अपनी सहृदयता को स्पष्ट शब्दों में व्यक्त किया है।

श्रृंगारपरक तथा प्रेमपरक कविताएँ :— कवि ने प्रणय सम्बन्धी रचनाओं में आत्मविश्वास के साथ अपनी निश्छलता का परिचय दिया है। हृदय का यह संगीत वासना से ऊपर उठकर प्रणय का परिचय देता है —

1- अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ0 14

2- वही, पृ0 24

"मुझे भरोसा रहा तुम्हारा, सदा रहेगा,
किससे और कहूँगा अपने मन की बातें,
होती ही रहती है उजली काली रातें
मन अपने अनुमान सुनाकर किसे कहेगा।"[1]

इस वर्ग की कुछ कविताएँ इस प्रकार हैं —'लिखा हुआ था भेंट हो गयी' 'नहीं चाहता कभी तरस खाओ इस जन पर' 'प्रेम कुछ नहीं' 'जैसे तुमको छू लेता हूँ' 'हम तुम दोनों आज दूर हैं' आदि रचनाएँ इसी प्रकार की है।

साम्यवादी रचनाएँ :— कवि का साम्यवाद उसके हृदय की धड़कन है। उसने आशावादी स्वर अपनाकर सतत विकास को जीवन का खेल माना है —

"कहीं भटकते होंगे, लू की लपट यही है
उठती सुरभि लहरियाँ गई अदृश्य जहाँ है,
सूने हैं पेड़ों की डालें, अगर कहीं है,
छिपी कली स्काध तो नहीं भ्रमर वहाँ है।"[2]

मानवतावादी रचनाएँ :— मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाकर कवि ने वर्गभेद को सदैव दूर रखने का प्रयास किया है। यथा —

"हिन्दू मुसलमान ईसाई अब ये सारे
नाम मिटेंगे सब मनुष्य होंगे तुम हारे।"[3]

वैज्ञानिक रचनाएँ :— कवि समाज का सजग प्रहरी होता है। वह आज के वैज्ञानिक रूप से भी प्रभावित है। उसे विज्ञान के ध्वन्सात्मक रूप से बड़ी चिन्ता है। क्योंकि वे विज्ञान की इस विनाशिनी शक्ति से जीवन को सुरक्षित रखना चाहते हैं और उसको सुरक्षित रखने का विश्वास भी है —

"हुई असत् वृत्तियाँ सदा को सुप्त रहेंगी
जैसे हैं विकीर्ण विद्युत्कण उन का संग्रह,

1-अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ0 27
2- वही, पृ0 15 3— वही, पृ0 19

विच्छेदन, विस्फोटन है शक्ति का दुराग्रह
जीवन की धाराएँ नीरव नित्य बहेंगी।"[1]

<u>व्यंग्यपरक कविताएँ</u> :— त्रिलोचन का व्यंग्य भी अनूठा एवं प्रभावशाली है। पुराने रूढ़िवादी जो आज के यथार्थ को नहीं समझते उनके ऊपर कवि ने कठोर व्यंग्य किया है—

"टर्र-टर्र कर काशी-कूप निवासी बोला
नया क्या हुआ है, कुछ हो तो नहीं हुआ है
कौन साधना है यह, धोखा औरजुआ है।
बोला जब मुँह तथ्योद्घाटनार्थ ही बोला।"[2]

'तुम हिंदू हो' 'नयी पढ़ाई अजी पढ़ाई है' 'मेरी भी तकदीर बाँच दो' 'चिन्ता छोड़ो' 'यह कर दूँगा वह कर दूँगा' आदि रचनाएँ इसी वर्ग में आती हैं।

<u>सामाजिक दुर्दशा</u> :— समाज का दुःखदर्द कवि का दुःखदर्द है। कवि समाज का प्रतिनिधि होता है।

"भीषण कमी अन्न की, बलात्कार ही अनुदिन
बढ़ने वाली गाथाएँ, हत्याएँ डाके
चोरी, रिश्वतखोरी, कोई बुरा न ताके
राम राज्य है, रामराज्य ही बढ़ती के दिन।"[3]

'व्यथा हुई मुझे' 'मनुष्य भिखारी को भी' 'कोई रोकता नहीं' 'धन की इतनी नहीं मुझे जन की परवाह है' 'आदि रचनाएँ इस पर्ग का प्रतिनिधित्व करती है।

<u>नवजागरण</u> :— कवि वर्तमान व्यवस्था से क्षुब्ध है। वह जन-जन में नई चेतना का स्वर भरना चाहता है। यथा —

"जीवन का विद्रोह मोह से काम न कोई
हुआ आज तक उठो, शक्ति जागे जो सोई।"[4]

1- अनकहनी कुछ कहनी है, पृ0 58
2- अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ0 37
2- वही, पृ0 38
4- वही, पृ0 39

वह मानवता को बाधाओं से लड़ने का सन्देश देता है। उनसे लड़ने के लिए अखण्ड विश्वास जागृत करने के लिए सशक्त शब्दों में कहता है —

"बाधाओं के सम्मुख थक कर बैठ न जाना
तुम मनुष्य हो मनुष्यता का यह बाना है,
करते ही जाएगी उस को जो ठाना है,
अंतिम क्षण तक तुमने भी तो सीना ताना।"[1]

जीवन के राह बताऊँ क्या' 'चुपचाप चले, जीवन की दूसरी दिशा है' 'जीना सबसे कठिन काम है' 'आदि रचनाएँ इसी प्रकार की हैं। इनसे मानव जीवन के प्रति नया उत्साह और आशा जागृत होती है।

कवि और साहित्यपरक रचनाएँ :—

त्रिलोचन जी ने कभी कवियों पर कभी साहित्यकार पर विविध प्रकार की कविताएँ लिखी हैं। वे जन साधारण के कवि है इसलिए वे कविता को ही जन साधारण की वस्तु बताते हैं —

"साधारणीकरण कथनी की बात नहीं है
करनी में आए तो आए कविता सब का
मान करेगी वह जीवन से दूर कहीं है
ऐसा मत समझो टूटा वह सपना कब का।"[2]

इसके अतिरिक्त 'उनके लिए नहीं लिखता मैं' 'छूट-छूट कर भी' कविता की रंगीनी' 'कवि तो मानव आत्मा का शिल्पी होता है' 'सोचा था मन ही मन यह गाऊँ वह गाऊँ ' कोई समझ न पाए अगर तुम्हारी बोली' आदि रचनाओं में कवि कविता आदि के विषय में मौलिक बात कहता है।

1- अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ0 39

2- वही, पृ0 103

स्फुटिक रचनाएँ :— स्फुटिक रचनाओं में काशी विषयक रचनाएँ अपना महत्व रखती हैं। इनमें कहीं तो काशी की प्रशंसा तो कहीं उसकी बुराइयों का भी चित्रण मिलता है। यथा —"भले-बुरे, गुण्डे, सज्जन सब यहाँ पड़े हैं।

सौ हिन्दू के जले मुसलमान के गड़े हैं।"[1]

इसके अतिरिक्त काशी मुझे गाँव सी लगती है''काशी में अब कौन काशीपुरी पवित्र है' आदि रचनाएँ काशी के प्रति कवि के हार्दिक लगाव को व्यक्त करती है। इसी प्रकार एक दो रचनाओं में गाँधी जी पर, जवाहर पर भी लिखा गया है।

संक्षेप में कवि का यह संग्रह विशेष महत्वपूर्ण है। जिसमें कविता का स्तर सराहनीय है। सामाजिक यथार्थ, कठोर व्यंग्य, नव जागरण और आत्मानुभूति में उनके संघर्षशील दुर्दम्य व्यक्तित्व की ऐसी स्पष्ट झाँकी दिखलायी है जो अन्य प्रगतिशील कलाकारों में दुर्लभ है।

तुम्हें सौंपता हूँ :— (1985 ई0)

तुम्हें सौंपता हूँ' यह त्रिलोचन जी की कविताओं का आठवाँ संग्रह है। जिसमें सन् 1935 से 1983 तक की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कविताएँ संग्रहीत हैं जिनसे कवि के रचनात्मक विकास पर प्रकाश पड़ता है। इसमें कुछ कुल 79कविताएँ संगृहीत है। जबकि आलोचक गोविन्द प्रसाद ने इसमें 81 कविताओं का संग्रह कहा है। ग्रन्थ के अन्त में 'शान्ति पर्व' के नाम से चार काव्यरूपक भी लिखे गये हैं जो द्वितीय विश्वयुद्ध के नरसंहार के विषय में हैं। त्रिलोचन जी ने इनमें जीवन को विध्वंस में झोंकने वाली महाशक्तियों के विरुद्ध तीखा वार किया है। इस संग्रह में कवि ने मानवीय वेदना, प्रेम, आशा और स्वप्न को संजोने का स्तुत्य प्रयास किया है। प्रकृतिचित्रण कवि की रागात्मकता से जुड़ा हुआ है। 'अंकुर' का वृत्त' 'निर्झर' 'कोयलिया

1- अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ0 68

न बोली''चारों ओर घोर बाढ़ आयी है''समुद्र के किनारे जैसी रचनाएँ प्रकृति के विभिन्न रूपों को व्यक्त करती हैं —

"दूर, अति दूर, क्षितिज के पार
कनक का रच सुन्दर संसार
हरित अंकुर ले उठा उभार
प्राप्त कर जग का मृदु व्यवहार।'[1]

कवि ने रक्त के प्यासे मानव को धिक्कारते हुए लिखा है —

"मानव तेरी अब तक मिटी न प्यास रक्त की
धरती जिस पर पहले खेला,
उसकी तूने की अवहेला।'[2]

वह जीवन रूपी पक्षी को आगे बढ़ने का संदेश देता है। यथा —

"उड़ चल उड़ चल मेरे पक्षी, तेरा दूर बसेरा
दिन उड़ता निज पर फैलाये
बदल रहा जग बिना बताये
दिन के संग चलाचल पीछे आता घोर अंधेरा।"[3]

कवि की विचारात्मक कविताओं में 'तमसो मा ज्योतिर्गमय''तमिस्त्र युग की पुकार' 'आत्मालोचन' शान्ति यहाँ मिलती है''रहस्य'आदि रचनाएँ इसी प्रकार की हैं। विश्व बन्धुत्व की ओर भी कवि की दृष्टि है। वह आशावाद का सहारा लेकर आगे बढ़ने के लिए कृत संकल्प है।

"राह में चलता रहूँगा
ठोकरें सहता रहूँगा
गिर पड़ूँगा, फिर उठूँगा
और फिर चलता रहूँगा
ठोकरों से हार के, कोई डरेगा क्या?'[4]

1-तुम्हें सौंपता हूँ, पृ0 13 2- तुम्हें सौंपता हूँ, पृ022
3- वही, पृ0 29 4- वही, पृ0 87

उन्होंने अपनी कुण्डलियों के माध्यम से सरकारी व्यवस्था पर कठोर व्यंग्य किया है —

"छोड़ा है सरकार ने गेहूँ का व्यापार
हुआ मंडियों में शुरू व्यापारी व्यौहार
व्यापारी त्यौहार लगा है डलने गल्ला
दर्शक डाँडी देख चकित है अल्ला-अल्ला
फखरुद्दीन अली अहमद को यह थोड़ा है
बातों के घोड़े को सजग भेजोड़ा है।"[1]

सारांश यह है कि प्रस्तुत संग्रह की रचनाएँ विविध आयामों को स्पर्श करती हैं किंतु मानवीय जीवन उसकी समस्यायें उसके दुख दर्द कवि के मानस को कुरेदते हैं। अतः मानवीय कल्याण के लिए उसकी संवेदना कविताओंसे फूट-फूट कर बहती है। निराशा और कुण्ठा उसे छू नहीं सकती। आशा, उत्साह और क्रान्ति के लिए उसका स्वर सबल है। वह भावात्मकता एवं विचारात्मकता में सामंजस्य स्थापित करता हुआ आगे बढ़ता है और जीवन के प्रतिअगाध विश्वास व्यक्त करता है। उसकी अभिव्यक्ति को उसकी भाषा शैली पूर्ण सहयोग प्रदान करती है। यही कारण है कि त्रिलोचन की रचनाशीलता में नवीनता और ओजस्विता का अनुभव होताहै।

<u>फूल नाम है एक</u> ' — त्रिलोचन जी का यह एक ऐसा काव्य संग्रह है जिसमें कवि की काव्य साधना अपने चरम शिखर पर पहुँचती हुई प्रतीत होती है। इसकृति का प्रकाशन सन् 1986 में 'राजकमल प्रकाशन' दिल्ली में हुआ है। इसमें कवि का सौन्दर्यबोध सामाजिक यथार्थ, अनुभूति की तरलता और प्रकृति की रागात्मकता मानव जीवन का संघर्ष, अपने भव्यतम रूप में व्यक्त हुआ है। मानव मुक्ति का पवित्र उद्देश्य सर्वोपरि बनकर प्रकाशित हुआ है। कवि का शब्द चयन भावानुकूल है। इस कृति के सम्बन्ध में एक आलोचक का निम्नलिखित वक्तव्य पूर्ण यथार्थ है और मैं भी उसके इस कथन से सहमत हूँ —

1- मुझे सौंपता हूँ-पृ0 99

"त्रिलोचन का नाम आते ही किसी बहुत ऊँची या बहुत गहरी या बहुत ठोस, अप्रतिम और विराट वस्तु का बोध होने लगता है जैसे धरती, दिगन्त या ताप के तार हुए दिन या शब्द और अरघान। अनेक दशकों में फैली काव्य परिधि धीमें धीमें पकती हुई काव्य संचेतना, ढेरों रचनाएँ के बीच प्रौढ़ होता हुआ सौन्दर्यबोध सघन से सघनतर होता हुआ रचाव और इस सबसे लैस धीरे-धीरे सामाजिक रूपान्तरण की प्रक्रिया में ललित अवदान करते-बढ़ते हुए कवि त्रिलोचन।

"फूल नाम है एक' कवि त्रिलोचन की इसी रचना यात्रा की अत्यन्त ठोस अभिव्यक्ति है। लोकमानस के कितने ही रंग, प्रकृति का लीला-विलास और मनुष्य संजटिल संघर्ष अपनी तीव्र रागात्मकता के साथ कठोर कलानुशासन में निबद्ध होकर ऐसी काव्यमणि के रूप में यहाँ उपस्थित है, जिसके आलोक में मानव मुक्ति का पवित्र उद्देश्य जगमगा रहा हो।"

संक्षेप में त्रिलोचन की इस कृति में भी सानेट छन्दों का प्रयोग किया गया है। यद्यपि आकार की दृष्टि से यह कृति विस्तृत तो नहीं लगती किन्तु रचना-कौशल की दृष्टि से यह सराहनीय है। इसमें जीवन की कठोर धरती की धड़कने स्पष्ट सुनाई देती हैं। व्यंग्य का तीखापन कवि के अन्तःकरण से फूट कर इतना पैना हो गया है कि जिससे केवल पाठक और श्रोता ही नहीं अपितु पूरा समाज तिलमिला उठता है। रोमांच उत्पन्न करने वाली इन रचनाओं का कलात्मक कौशल भी सराहनीय है। जीवन के विभिन्न अनुभव कवि संयत लेखनी से उतरे आए हैं। जिनके बहुरंगी चित्र कभी हमें गुदगुदाते हैं, कभी उत्तेजित करते हैं और कभी जीवन जीने केलिए हमें नया उत्साह और नवीन स्फूर्ति देकर सचेत करते हैं। इस प्रकार इस संग्रह की रचनाओं की जड़े धरती में हैं किन्तु उसका तना अति स्थूल और दृढ़ समाजवाद का है जिसमें आशा और उमंग

1- सबका अपना आकाश, त्रिलोचन, आवरण पृ0 से उद्धृत

के फूल खिलते हैं और उत्साह के मधुर फलों का आनन्द सहज ही में हमें अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है।

कवि श्री त्रिलोचन की कृति 'फूल नाम है एक' पर भवानी प्रसाद मिश्र'पुरस्कार देने की घोषणा श्रेष्ठ कृतियों पर प्रतिवर्ष पुरस्कार देने की योजना के अन्तर्गत मध्यप्रदेश साहित्य परिषद ने वर्ष 1985 में कर दी है।

देशकाल :— (1986ई0)

पद्य के अतिरिक्त त्रिलोचन जी का गद्य भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। उन्होंने कुछ कहानियाँ भी लिखी हैं जो देशकाल नाम से प्रकाशित है। ये कहानियाँ संख्या में कुल 20 हैं। ये कहानियाँ हिन्दी कहानी से बिल्कुल भिन्न है।जिनमें अनेक किंवदन्तियाँ एवं लोक कथाओं का संस्कार सन्निहित है। इनमें भारतीय जनमानस अपने उज्ज्वल रूप में प्रस्तुत किया गया है। एक आलोचक का मत है —"त्रिलोचन की ये कहानियाँ एक क्लासकीय मिजाज की कहानियाँ है यहाँ लेखक यथार्थ जीवन से सीधे रचना में उतरता है और लोक जीवन को सीधे रखने वाले भारतीय मूल्य उस यथार्थ के साथ जुड़े चले आते हैं। ये कहानियाँ परम्परागत हिन्दी कहानी से अलग एक नये संसार से पाठक का साक्षात्कार कराती हैं। वस्तुतः ये रचनाएँ पाठक को लोक कथाओं, किंवदन्तियों और रूप कथाओं के उद्भुत और उसकी अन्तश्चेतना में गहरे बैठे संस्कार लोक में ले जाती हैं।भाषा की उज्ज्वल और मांसल रमणीयता कथ्य को न केवल मूर्त करती है अपतु उसे सात रंगों से रंग कर प्रस्तुत करती हैं। इनमें से गुजरना भारतीय जीवन और मानसिकता के उज्ज्वलतर और श्रेष्ठतर आयामों को स्पर्श कर लेने जैसा है।"[1]

इन कहानियों में से पहाड़ की आत्मा, देशकाल, अपनी इज्जत'आप करो' और चिन्ता शीर्षक कहानियाँ रचनात्मक दृष्टि से ही नहीं अपितु वैचारिक दृष्टि

1- देशकाल' आवरण पृष्ठ

से भी महत्वपूर्ण है। सम्भवतः लेखक की दृष्टि में देशकाल कहानी सर्वश्रेष्ठ हैं क्योंकि उसी के नाम पर पुस्तक का नामकरण किया गया है। इस संग्रह की ग्यारहवीं कहानी बरसा लागलि मोरी गुइया' में लोक जीवन का अधिक से अधिक मार्मिक स्पर्श किया गया है और लोकभाषा के पुट में उसे अच्छी तरह सँवारा भी है।

इस प्रकार ये कहानी संग्रह आधुनिक हिन्दी कहानी से कुछ भिन्न और अद्भुत होता हुआ लोक जीवन के यथार्थ को छू लेता है। लोकोक्तियाँ और मुहावरे भाषा को गति देते हैं। रचनाकार का सामाजिक दृष्टिकोण सम्मिश्रित भाषा के प्रयोग से स्वाभाविक रूप से व्यक्त हुआ। अतः त्रिलोचन का यह प्रयास भी सराहनीय है। यह बात दूसरी है कि आलोचक वर्ग इन कहानियों से अधिक सन्तुष्ट नहीं हो सका।

सबका अपना आकाश — प्रस्तुत संग्रह प्रथम संस्करण 1987 में नयी दिल्ली से प्रकाशित हुआ। उसमें त्रिलोचन जी के मधुर एवं भावपूर्ण 52 गीत संगृहीत हैं। यद्यपि गीतों में स्वानुभूति का विशिष्ट महत्व है लेकिन इन्होंने उन्हें व्यापक बनाने की चेष्टा की है जिससे काव्य सौन्दर्य निखर उठा है। इन गीतों में एक विशेषता यह भी है — कवि की लोक भाषानुराग बरबस छलक पड़ा है। यथा —

"दियना छू के तुम जगा दो
बात बन ही जाएगी
× × ×
सभी जीना चाहते हैं
अँजुरी में माँगते हैं।"

यहाँ 'दियना' और 'अँजुरी' शब्द लोकभाषा के हैं किन्तु यदि इनके स्थान पर 'दीया' और 'अँजुली' शब्द होते तो वह स्वारस्य कभी नहीं आ सकता था जो लोकभाषा के शब्दों से व्यक्त हुआ है। इन गीतों को वर्गीकृत रूप में इस प्रकार देख सकते हैं — (1) प्रकृतिविषयक गीत (2) नवचेतना के गीत (3) आशावादी गीत (4) प्रेरक गीत

1- सबका अपना आकाश, पृ0 7।

(5)विचारप्रधान गीत(6)स्वानुभूतिपरक गीत(7)प्रगतिशील गीत(8)प्रणयविषयक गीत

प्रकृतिविषयक गीत :— मानव प्रकृति की गोद में जितना सुखी रह सकता है उतना अन्यत्र नहीं। उसके विषय में अन्तः प्रेरणा से लिखना स्वानुभूति को तृप्त करना है। कवि ने प्रकृति को अपनी अन्तः करण की आँखों से देखा है'धीरे-धीरे पुरवइया लहराने लगी' 'उषा आ रही है'चादनी रात नीरव तारे''स्निग्ध श्यामघन की छाया है''आ गई है रात शरद का यह नीला आकाश'' राका आयी''फूलों भरी रात''बादल घिर आए' आदि रचनाओं में कवि ने प्रकृति को विभिन्न रूपों में देखा है इससे कुछ पाया है और कुछ सीखा है। प्रकृति का मानवीकृत रूप, ध्वन्यात्मकता को पाकर धन्य हो जाता है।

यथा —

"बरखा मेघ मृदंग थाप पर
लहरों से देती है जी भर
रिमझिम रिमझिम नृत्यताल पर
पवन अथिर आए।"[1]

नवचेतना के गीत :— कवि समाज का पक्का पक्षधर है। अत्याचार का विरोधी है और मानवतावाद का पुजारी है। तभी तो सिंहनाद करता हुआ कहता है —

"नव मनुष्यता का लेकर विश्वास
अधिकारी मनुष्य के अत्याचार
के विरुद्ध करते ही चलो प्रहार
अत्याचारी को निस्तेज बनाओ।"[2]

इस संग्रह में नवजीवन के सिंह द्वार पर आओ' चेतना हो गयी सावधान, 'दीप जलाओ गाओ-गाओ गान''जो उठायी है ध्वजा झुकने न देना''बहुत बहुत आगे चलना है'ज्योति नयी उकसाओ''पैर बढ़ाओ'आदि रचनाएँ कवि की नवीन युग चेतना की पूर्ण सफलता के साथ अभिव्यक्त करती है।

1- सबका अपना आकाश, पृ0 9

2- वही, पृ0 10

आशावादी गीत :—

किसी की परिस्थिति में घुटने टेकना त्रिलोचन की नियति नहीं है। वह जीवन को स्वच्छ बनाने का पक्षधर है। द्वेष दम्भ, अन्याय, घृणा, छल आदि को दूर भगा देने के लिए कृतसंकल्प है। निम्नलिखित पंक्तियों में इनके विचार दृष्टव्य हैं—

"इस जीवन में रह न जाए मल,
द्वेष दंभ अन्याय घृणा छल,
चरण-चरण चल गृह कर उज्ज्वल
गृह-गृह की लक्ष्मी मुसकाओ।"[1]

प्रेरक गीत :— इनके प्रेरकगीत भी आशावाद के ही पूरक हैं? फिर भी कवि की प्रेरणा इतनी सशक्त है कि उसे पृथक करने की आवश्यकता है। गाओ गाओ गान, उषा आ रही है, संभावनाएँ फहरा रही हैं, आदि गीत इस वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं —

"सब अपनी अपनी लय पाएँ
कभी तुम्हारा स्वर दुहराएँ
एक लहर में लहराएँ फिर
कण्ठ, कण्ठ के गान।"[2]

विचारप्रधान गीत :— कवि के गीत केवल भावुकता के ही क्षितिज को नहीं छूते अपितु चिन्तन पक्ष को भी साथ में लेकर चलते हैं। यथा —

"कि व्यूह बनते हैं दलों के एक दल चुनना पड़ेगा
फिर महाभारत निकट है
लक्षणों से यह प्रकट है
नीरव हैं रहें पर
भर चुका अब धैर्य घट है।"[3]

यहाँ पर तृतीय विश्वयुद्ध की समस्या में कवि के चिन्तन पक्ष को सामाजिक उत्तरदायित्व के साथ व्यक्त किया है।

1- सबका अपना आकाश, पृ0 16

2- वही, पृ0 21 3- वही, पृ0 35

'कौन विजयी है जगत् में' 'कौन हारा है' अभी चला क्या' बहुत - बहुत आगे चलता है, 'सो गया था दीप मैंने फिरजलाया' आदि कविताओं में कवि का चिन्तन बोलता है, युग की पदचाप सुनायी पड़ती है और विचारों की शृंखला भूमि से उठकर क्षितिज का अवलम्बन करती हुई प्रतीत होतीहै।

<u>स्वानुभूतिपरक गीत</u> — इन गीतों में कवि की अनुभूतियाँ विविध रूपों में व्यक्त हुई हैं।

यथा — "मैंने भूलों पर भूले कीं भूलों से तुमको बाँध लिया।
जीवन की सीधी राह नहीं
दुर्गम पर्वत है, सागर है
मिलती है उसकी थाह नहीं
मैंने जीवन के जलनिधि को अपनी लहरों से साध लिया।"[1]

'याद रहेगा' 'न जाने हुई बात क्या' 'मुझे लगता है कोई बुलाता है' 'आयी जो हार' आदि गीतों में कवि का वैयक्तिक अनुभव बोल रहा है।

<u>प्रगतिशील गीत</u> :— त्रिलोचन जी ने गीतों में भी प्रगतिशीलता का पक्ष नहीं छोड़ा।यथा—

"गाता अलबेला चरवाहा
चौपायों को साथ सँभाले
पार कर रहा है वह बाहा
गए साल तो व्याह हुआ है
अभी-अभी बस जुआ छुआ है?
घर घरनी परिवार है आँखों के आगे।"[2]

यहाँ पर कवि ने चरवाहे की मस्ती उसका उत्तरदायित्व, प्रणय, आदि सभी को ,प्रगतिशीलता के मनोरम ढाँचे में ढालने का प्रयास किया है।

<u>प्रणयविषयक गीत</u> :— प्रणय भी प्रगतिशीलता का एक अंग है। कवि ने उसे भी जमकर लिखा है। उसमें भी प्रकृति ने उसे साथ लिया है और कलात्मकता में भी उसे आश्वस्त किया है। यथा —

1- सबका अपना आकाश, पृ0 57
2- वही, पृ0 17

"स्निग्ध श्याम घन की छाया है ग्रीष्म पन्थ पर याद तुम्हारी
वृक्षहीन यह निर्जन यात्रा
भूमि मूक उत्ताप भरी है
मन के मौन मनन की मात्रा
तूल कर छन्दों में उतरी है

जब देखा सौन्दर्य तुम्हें पथ पर चलते पाया,
समय मैं तुम्हें फिर-फिर पुकारू तुम न बोलो।'[1]

स्नेह मेरे पास है, लो स्नेह मुझसेलो, याद रहेगा आदि रचनाओं में कवि के प्रेम एवं विरह के बीसों चित्त उभरकर सामने आए हैं।

निष्कर्ष यह है कि प्रस्तुत संग्रह कवि की भावुकता का प्राण है, कल्पना का मधुर उच्छ्वास है और ~~अनुभूत~~ अनुभूति के ताने-बाने से बुना प्रत्येक भाव स्वानुकूल शब्दावली में इतनी सुन्दरता के साथ व्यक्त हुआ है कि पाठक एक बार छायावादी गीतों को भी भूल जाता है।

चैती :— चैती त्रिलोचन जी का नवीनतम संग्रह है।जिसका प्रकाशन 1987 में हुआ। जिसमें कुल 34 कविताएँ संगृहीत हैं। इनमें कवि ने जीवन से जीवन की बात कही है। इसमें विशेष काव्यात्मकता है एक आलोचक के शब्दों में —"त्रिलोचन जीवन में निहित मन्द लय के कवि है। प्रबल आवेग और त्वरा की अपेक्षा यहाँ कभी कुछ थिर है लेकिन रागात्मक संयम और लयात्मक अनुशासन के साथ।"[2]

इसमें भी प्रकृति से कवि की रागात्मकता अक्षुण्ण है। रजनीगंधा, कार्तिक का पयान' 'बसन्त पयोध और धरणि आदि रचनाएँ प्रकृतिचित्रण से सम्बद्ध हैं।यथा —

"नव बसन्त खिला जब भाग्य सा,
भुवन में तब जीवन आ गया,
गगन ने उस को अपनाव से,
अतुलगौरव से अपना किया।'[3]

1- सबका अपना आकाश, पृ0 49 2- ~~चै~~ चैती, आवरण पृष्ठ गोविन्दप्रसाद
3- वही, पृ0 34

यहाँ पर कवि ने बसन्तके लिए भाग्य की उपमा देकर नवीनता प्रदर्शित की है और धरती से लेकर आकाश तक उसकी प्रभावकारिता का उल्लेख किया।

इस संग्रह का शब्द शिल्प भी सराहनीय है। जब वर्षा की झड़ी लग जाती है, तब उसका साकार रूप प्रस्तुत करनेके लिए कवि शब्द चित्रों की प्रदर्शनी सी लगा देता है — "वर्षा

"फुहार, कभी झीसी, कभी झिर्री, कभी रिमझिम
और कभी झर झर झर झर
बिजली चमकती है
चिर्री गिरती है
पेड़ पातो सभी कांपते हैं।"[1]

इसमें झीसी, झिर्री, रिमझिम, झरझर और चिर्री शब्दों का प्रयोग यह सिद्ध करता है कि कवि ने कितनी सूक्ष्मता से प्रकृति का अवलोकन किया है और उसकी गम्भीरता को व्यक्त करने के लिए कितने सफल शब्द चित्रों का प्रयोग किया है।

इस संग्रह में कुछ श्रृंगारी रचनाएँ भी हैं जिनमें उदात्त मानवीय प्रेम सांस लेता प्रतीत होता है। क्यो देखा''इच्छा, क्षण की खिड़की, जैसी रचनाएँ इनके श्रृंगारी पक्ष को व्यक्त करती है। कवि का हृदय पक्ष भी यत्र-तत्र मुखर हो गया है। उदाहरणार्थ -- अच्छाई की परिभाषा करता हुआ कवि कहता है —

"जिसको सब चाहें
सब खोजें
सब अपनाएँ
वही अच्छाई है।'[2]

'सारनाथ' के विषय में कवि ने अपने हृदय की प्रतिक्रिया व्यक्त की है जिसमें व्यंग्यात्मक पद्धतिसे सारनाथ के वर्तमान कृत्रिम रूप पर आक्रोश व्यक्त किया है। सारांश

1- चैती, पृ0 20
2- वही, पृ0 30

यह है कि चैती संग्रह में वस्तुओं के प्रति कवि का केवल रागात्मक भाव ही व्यक्त नहीं हुआ है अपितु वस्तुओं का स्वतंत्र अस्तित्व भी बना रहता है। उसमें भाषा का ठेठ रूप विद्यमान रहता है और नाटकीयता के साथ उसका चुटीलापन उसे प्रभविष्णु बना देता है।

अमोला :— (1990ई0) अमोला त्रिलोचन की वह रचना है जिसमें कवि ने ग्रामीण 'अवधी' में बरवै छन्दों का सर्वाधिक प्रयोग किया है। हिन्दी में किसी कवि ने इतने अधिक बरवै छन्द नहीं लिखे हैं। इस छन्द पर कवि का एकाधिकार सिद्ध होता है। इन छन्दों की कुल संख्या 2685 है। एक आलोचक के शब्दों में —"अमोला त्रिलोचन की सबसे सहज कृति है। वह अभिव्यक्ति उनकी रचनात्मक अनिवार्यता थी। इसमें मुक्तकों में संकलित अन्तरंग जीवन कथा का रस है। 'अमोला' जनपदीय है। इसलिए वास्तविक एवं सारभौम है। इसमें युग की पीड़ा निजी पीड़ा में निहित होकर आयी है। पीड़ा को त्रिलोचन ने बैसवाड़े के किसान की बोली में हमें सुनाया है, फक्कड़पने में अंगीकार करके। मानव उपवास, बेकारी, भूख, उपेक्षा, प्रियजनवियोग, और जल-वायु, धरती, आकाश, वनस्पति, प्रिय संयोग आदि जीवन — अमोला की डालें पत्ते, जड़ें और फुनगियाँ हैं।"[1]

'अमोला' में श्री विश्वनाथ त्रिपाठी द्वारा कथित इतनी ही विशेषताएँ नहीं हैं उसमें जीवन के अनेक अनुभव उद्देश्यात्मक रूप में भी प्राप्त होते हैं। कवि बतलाता है कि जब आप दूसरे को सहयोग देंगे तभी आपको सहयोग मिलेगा —

"हाथ दिहे से पावा जाए हाथ
एही बियाँ होए साथे से साथ।"[2]

उन्होंने मानसिक चिन्ता को दूर करने के लिए ग्रामीण लोग क्या करते हैं इस बात को बड़ी तन्मयता के साथ प्रस्तुत किया है। ग्रामीण जीवन के दो खेल मुख्य हैं — एक —

1- विश्वनाथ त्रिपाठी, अमोला, आवरण पृष्ठ
2- अमोला, पृ0 12

'हुड़डुआ' दूसरा 'सुर्रा'। इन दोनों कोखेलने से चिन्ता को दूर होते हुए कवि ने देखा है। उसी के शब्दों में —

"कबहुँ हुड़डुआ खेलेसि कबहुँ सुर्र
एही बिधी मन कइ चिंता भइ फुर्र।"[1]

त्रिलोचन यह बतलाते हैं कि व्यक्ति और समाज दोनों एक दूसरे से संपृक्त हैं। समाज से अलग होने पर व्यक्ति की हानि होती है। समाजवाद के इस रूप को काव्यात्मक शब्दों में देखिए —"तार तार जोअनि सबकइ अरूझानि
जे अलगानेन ते पइहइँ हित हानि।"[2]

कवि ने श्रृंगारी भावनाएँ भी उच्चकोटि की है। जिसमें वासना की गंध नहीं आती। उदात्त प्रेम को तन्मयता का बोध होता है —

"जेसस जेसस भुईं तरवा तजईं तोहार
तेसस तेसस जिउ लोटत चलइ हमार
उठे चले बैठे ओलरे हर दाइ
तोहरिन सुधि हमार आपन कुछु नाइ।"[3]

चिन्ता को दूर करने के लिए कवि का कहना है कि स्वावलम्ब के आधार पर ही उसे दूर किया जा सकता है अन्यथा वह प्रफुल्लित ही रहेगी।

"चिंता अपने चितए जरि बरि जाइ
अनचितार परफुलित रहइ अधिकाइ।"[4]

प्रकृति चित्रण के क्षेत्र मे त्रिलोचन प्रगतिशील कवियों में बेजोड़ हैं। बादल आने पर भूमि वैराग्य को छोड़ देती है क्योंकि जिसके लिए उसने तप किया है अब उसका सुहाग मिल गया है। प्रकृति के श्रृंगारी रूप में धरती और आकाश के प्रेम की परिकल्पना को देखता है —

1- अमोला, पृ0 12 2- अमोला, पृ0 10
3- वही, पृ0 9 4- वही, पृ0 16

"बरखा पाए भुईं-बिरईं छइलाईं
अपने सुखे फुलाईं थेवारि हरिआईं।'
बदराने तजि दिहेसि भुम्मि बरराग
जओने लागि तपी तप मिला सोहाग।'[1]

कवि का अनुभव है कि गुणी व्यक्ति भी समाज में अकेला नहीं रह सकता। चाहे वह कितना ही समर्थ क्यों न हो। अकेले रहने पर उसकी शक्ति क्षीण हो जाती है।

यह संसार व्यवहार प्रधान है। इसमें जब हम किसी का उपकार करते हैं तब हमारा यह कर्तव्य होता है कि हम उपकृत व्यक्ति को बात-बात पर उलाहना न दें कि हमने तुम्हारे साथ यह किया है अन्यथा उसके हृदय में भेद उत्पन्न हो जाएगा और अनेक भेद ग्रन्थियों से वह प्रतिक्रिया भी व्यक्त कर सकता है। लोक जीवन के इस अनुभव को कवि ने इस प्रकार वाणी दी है —

"बाति बाति यह जेका उलवा लाइ
ओका जिऊ मँ गाँठिनि गाँठि देखाईं।"[2]

समाज में जिसकी जितनी शक्ति है उसका उतना ही सम्मान होता है। इस बात कोकवि ने गाय और भैंस के लौकिक उदाहरण द्वारा बड़ी सुन्दरता से स्पष्ट किया है —

"गाइ कँ पगहा भइँसि क लागइ छान
जेहिकर जेस बल तेहि कर तेस सनमान।'[3]

लोक जीवन के सामान्य अनुभव को व्यक्त करने में कवि ने अति सूक्ष्म दृष्टि का परिचय दिया है। रास्ता चलने में भूल कभी नहीं होती यदि पथिक दूसरोंसे पूछता चले। तात्पर्य यह है कि व्यक्ति को अहम्वादिता छोड़कर विनम्रता, विवेक और स्वावलम्ब का आश्रय लेना चाहिए। तभी सही पथ पर चलकर अभिलषित की प्राप्ति की जा सकती है।

"गुनी होइ केउ केतनऊ जिउचल होइ
रहै अकेल अकेल त दुर्बल होइ।'[4]

1- अमोला, पृ0 16
2- वही, पृ0 124
3- अमोला, पृ0 42
4- वही, प 0 77

लोक जीवन में देखा जाता है कि यदि कोई सहयोग चाहता है और हम उसको सहयोग देते हैं तो हमारे शुभ-कार्य में सारा संसार सहायता करता है। तात्पर्य यह है कि समाज में रहकर व्यक्ति को समाज का सहयोग करना चाहिए, तभी उसे अपने काम में सहयोग मिल सकता है। लोक जीवन के इस अनुभव को कवि ने लाक्षणिक भाषा में इस प्रकार कहा है ,—

"जहाँ हाथ चाहै होइ जाइ जे हाथ
सुभ काजे, तेकर जग चाहै साथ।"[1]

इस संसार में हर व्यक्ति की अलग-अलग प्रकृति होती है। संस्कृत में 'भिन्न रुचिर्हि लोकः' इस उक्ति के अनुसार बात सार्थक लगती है। हरव्यक्ति के कार्य के अनुसार कार्य करने का ढंग भी अलग-अलग होता है। अतः जो जिस प्रकार का होता है वह वैसी ही संगति करता है। उदाहरणार्थ — गुणी गुणी का साथ करेगा, विद्वान् विद्वान् का साथ करेगा। चोर- चोर का साथ करेगा। इस बात को त्रिलोचन जी इस प्रकार कहते हैं —

"एतना मनई एतना एतना ढंग
जे जेहि ढङ्डे ते तेस पकरइ सङ्ग।"[2]

इस समाज में सच्चा मित्र वही है जो कष्ट में पड़े हुए मित्र में सहारा दे। नहीं तो मित्रता का अर्थ ही क्या है—"तुलसी ने भी यह बात कही है।"[2] त्रिलोचन जी ने इस बात को अपने ढंग से इस प्रकार कहा है —

"गिरे परे बढ़ि के थाम्हेसि जे हाथ
ते साथी आ अवर कहइ कइ साथ।"[4]

1- राह भुलाइ त अपुनइं करइ उपाइ
सबसे पूछत जाजत राही जाइ।' अमोला, पृ0 154

2- अमोला, पृ0 176

5- अमोला पृ0 58

3-

4- विपतिकाल कर सतगुन नेहा/श्रुति का सम मित्र गुन एहा।

इसी प्रकार गुणी व्यक्ति की महिमा स्पष्ट करतेहुए कहते हैं कि गुणी व्यक्ति चाहे बहुत बिगड़ता हो या लोगों से दूर भगता हो या लोगों का तिरस्कार करता हो अथवा क्रोधी हो फिर भी व्यक्ति उसके पास जाते हैं। कारण यह है कि गुण का महत्व सर्वोपरि है। कालिदास के शब्दों में —

'गुणाः पूजा स्थानं गुणिषु न च लिंगम् न च वयः'

अर्थात् गुण पूजा के स्थान होते हैं। गुणी व्यक्ति में यह नहीं देखा जाता कि यह स्त्री है या पुरुष अथवा यह बालक है युवा है या वृद्ध है। त्रिलोचन जी की भी यही धारणा है किन्तु अभिव्यक्ति का माध्यम लोकजीवन की वह शक्तिमयी भाषा है जिससे कथ्य में एक अदभुत चमत्कार आ गया है। शब्द विन्यास की पृष्ठभूमि में भाव भंगिमा का कौशल इस प्रकार दर्शनीय है —

"बिगड़इ चिटकइ छिटकइ झिटिकि कोहाइ
तेहु मा गुन ताके भनई नगिचाइ।" (अमोला पृ0 59)

इस प्रकार सूक्ष्म विवेचन से यह बात पूर्णतया सिद्ध हो जाती है कि त्रिलोचन लोक - भाषा केअप्रतिम कवि हैं। जिस प्रकार खड़ी बोली में इनका अधिकार है उसी प्रकार अवधी में भी। ऐसा लगता है कि बरवै छन्द तो उनके घर का छन्द है। उनके पास मनीषा की ऐसी टकसाल है जिसमें लोकभाषा के शब्द निकलते चले आते हैं, उन्हें इसके लिए कोई प्रयास नहीं करना पड़ता। उनका लोकजीवन इतना विशाल है जिसकी परिधि में शतशः अनुभव प्रकाश स्तम्भ की भांति जीवन की दिशा दिखलाते हैं। चाहे उनके इन अनुभवों को हम उपदेश की संज्ञा दे दें, चाहे जीवन का प्रगाढ़ अनुभव कह दें, अथवा जनजीवन की वाणी कह दें, है यही समाज का जीता जागता अनुभव। जिसमें युगीन अनुभव व्यक्ति के नहीं समाज के बन कर बोलते हैं। अतः इस रचना कोहम जीवन की अनुभूतियों के सघन समावेश का प्रतिमान कहें तो कोई अतिशयोक्ति न होगी।

—

द्वितीय अध्याय

त्रिलोचन के काव्य में भाव-पक्ष

द्वितीय अध्याय

त्रिलोचन के काव्य में भाव पक्ष

मेरी दृष्टि में मुख्यतया त्रिलोचन विचार-पक्ष के कवि हैं किन्तु ऐसा नहीं है कि उनकी रचनाओं में भावुकता न हो। उनमें भी मानव हृदय है, उनमें भी संवेदनाएँ हैं, उनमें भी दुःख-सुख कीअनुभूतियों के रंग बिरंगे चित्र हैं, पददलित शोषित, पीड़ित, असहाय, श्रमिक, कृषक और श्रमजीवी तथा सर्वहारा वर्ग के प्रति उनका हार्दिक लगाव है। ऐसे स्थलों में उनका हृदय उन दुखियों के हृदय को कभी सहलाता है — कभी आशा बंधाता है और कभी पराजय से विजय की ओर जाने के लिए प्रेरणा देता है। वह स्वतंत्रता का प्रेमी है। देश-प्रेम और राष्ट्रीयता भी उनका एक स्वर है। यदाकदा जब वे उन स्वरों में गाते हैं, तब जागृति के गीत फूट पड़ते हैं और उनका भाव-प्रवण-कवि कभी अन्यायियों को ललकारता है, कभी मानवता का पक्ष लेकर सिंहनाद करता है। वह क्रान्तिदृष्टा बनकर नवीन समाज का सृष्टा बनना चाहता है। यही उसकी ललक है, जो कहीं गीतों में, कहीं मुक्त छन्दों में और कहीं उनके सानेटों में देखी जा सकती है। इस प्रकार वे भावक्षेत्र के भी सफल कवि सिद्ध होते हैं।

यद्यपि प्रगतिशील कवियों का काव्य-रस से मुख्य सम्बन्ध नहीं प्रतीत होता,क्योंकि वे रसवादी न होकर जीवनवादी हैं।उनकी कविता में बुद्धि रस ही प्रधान रहता है किन्तु त्रिलोचन इसके अपवाद हैं। उनकी रचनाओं में श्रृंगार आदि सभी रसों का परिपाक हुआ है। यहाँ पर मैं उन सबके उपयुक्त उदाहरण देकर अपने कथ्य की पुष्टि करना चाहूँगी।

<u>श्रृंगार रस :</u>— प्रगतिशील कवि यथार्थवादी होते हैं। अतः उनकी दृष्टि में यथार्थमय श्रृंगार प्रगतिशीलता के अन्तर्गत ही आता है। जीवन में मुख्यतया श्रृंगार के दो पक्ष देखे जाते हैं — संयोग श्रृंगार और वियोग श्रृंगार। त्रिलोचन ने इन दोनों पर अपनी

लेखनी चलायी है और स्वाभाविक सौन्दर्य और प्रेम को यथार्थ के ढाँचे में ढालकर पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है –

"आज पवन शांत नहीं है श्यामा
देखो शांत खड़े उन आमों को
हिलाए दे रहा है
उस नीम को/झकझोर रहा है
और देखो तो
तुम्हारी कभी साड़ी खींचता है
कभी ब्लाउज/कभी बाल"[1]

यद्यपि कवि ने प्रकृति के उद्दीपन रूप के साथ अपनी प्रेम भावना को प्रेयसी के प्रति व्यक्त किया है। यथार्थवाद की दृष्टि से संयोग श्रृंगार का यह रूप उदात्त लगता है।

"मुझे इच्छा थी
तुम्हारे इन हाथों का स्पर्श
कुछ और मिले
और/इन आँखों के
करुण प्रकाश में/नहाता रहूँ
और/ सांसों की अधीरता भी/कानों सुनूँ
बिल्कुल यही इच्छा थी
सर दर्द क्या है।"[2]

यहाँ पर श्रृंगार के क्षेत्र में प्रियतम की अतृप्त इच्छा का चित्र खींचने में कवि ने सफलता प्राप्त की है। दर्शन, स्पर्शन और श्रवण जन आनन्द की तृप्ति ही कवि का मुख्य उपालम्भ है। अष्टांग कामुकता की श्रेणी में ही उक्त तीनों भावनाएँ आ जाती है। शब्द,

---

1- वैती, पृ0 13
2- वही, पृ0 15

स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इन पाँच विषयों में से कवि ने क्रमशः स्पर्श, रूप और शब्द विषय को उक्त उद्धरण में व्यक्त किया है। इसे ऐन्द्रिक श्रृंगार की श्रेणी में गिना जाएगा।

"चेष्टाएँ, गति
मुद्रा जो मुख पर
भावों से उछट-उछट कर
उरेह उठती थी
मेरी आँखों में आ बसी है
अब जीवन के प्रवाह में कहीं
मैं पत्थर जैसा हूँ।"[1]

यहाँ पर कवि ने श्रृंगार के एक अंग का चित्रण किया है जहाँ कवि ने प्रेयसी की मुख-मुद्राओं, उसकी चेष्टाओं और उसकी गतिविधियों का संस्मरणात्मक चित्रण किया है जो उद्दीपन के रूप में श्रृंगार का एक मुख्य अंग बन गया है।

"चिर सरल स्नेह, हो जाय चूक तो नीरव मुझे क्षमा कर दो
दुर्बल हूँ, यह तो छिपा नहीं
दुर्भाग्य भरे इस जीवन पर
तुमने कब-कब की कृपा नहीं
उर के स्पन्दन में एक-एक मुसकान तुम्हारी गूँज रही,
उन मुसकानों की एक लहर इन सूनी आँखों में भर दो।"[2]

यहाँ पर श्रृंगार के क्षेत्र में क्षमा, याचना करना कभी दुर्भाग्य को कोसना, कभी दुर्बलता दिखाकर प्रियतमा की सहानुभूति प्राप्त करना और उसकी मन्द मुस्कान की प्रशंसा करना ये सभी बातें श्रृंगार की पुष्टि किया करती है। भूलों के लिए क्षमा माँगने का यह प्रयास कवि की यथार्थ दृष्टि का आदर्श है —

"कहा तुम्हारा हाथ, कहा कुछ नहीं, चुप रहा,
सध्या हँस दी थी, पूरनमासी का चंदा

1- बैती, पृ0 26
2- [illegible], पृ0 88, तुम्हें सौंपता हूँ।

उग आया था चोटी पर झाड़ी की फंदा
हम दोनों पर उस का था जिसने नहीं सहा
एकाकी स्वातंत्र्य-भाव को कभी किसी ने
वह चन्दा भी स्नेहभरा थपथपा रहा था
अपने कर से पीठ हमारी, पवन बहा था
जो ठहरा था मानो कानों कहा, इसी में
जीवन की सार्थकता है।"[1]

यहाँ पर प्रकृति के उद्दीपन रूप की पृष्ठभूमि में कवि ने अपने दाम्पत्य जीवन का कितना स्वस्थ शृंगार प्रस्तुत किया है जिसमें वासना की गन्ध नहीं है। प्रणय का स्निग्ध एवं गम्भीर रूप यथार्थ के परिवेश में चमक उठा है।

विरोग-शृंगार :—

यद्यपि त्रिलोचन के काव्य में वियोग-शृंगार अधिक नहीं मिलता किन्तु फिर भी जहाँ मिलता है, अत्यन्त स्वाभाविक एवं मार्मिक क्योंकि उसमें अनुभूति का स्वर है और दाम्पत्य प्रेम का स्वस्थ रूप विद्यमान है --

"सखि, तुम आज समीप नहीं हो, यह मेरा मन
अस्थिर है, सोचता हूँ — कहाँ होगी, कैसे,
तुम इस समय न जाने कैसा कुछ सूनापन
प्राणों में भर आया है, तुम भी तो वैसे
बेगानों में नहीं गई हो, अपने जैसे
होते हैं माँ बाप और कोई क्या होगा
इसे जानता हूँ, फिर भी मेरा मन ऐसे
धीर नहीं धरता है, जिसने पहले भोगा
होगा यह अनुभव — समझेगा।"[2]

यहाँ पर विप्रलम्भ के अंगों का जीता-जागता चित्रण है। इसमें परम्परा से दस दशायें मानी जाती है, जिनमें से यहा चिन्ता नाम की दशा का बड़ा सजीव चित्र प्रस्तुत किया

1- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 45
2- वही, पृ0 33

गया है।

वियोग के क्षेत्र में कवि ने अधिकांश स्मृति-चित्रण को अधिक महत्व दिया है। प्रकृति का उद्दीपन रूप यहाँ भी दर्शनीय है, जो प्रणय की स्मृति कोकल्पना से नहीं अनुभूति से सजाने में सहायक हुआ है। यथा —

"घिर आए बादल बसंत में याद तुम्हारी
आई आप भूला, खोज भरी आँखों में
तुम्हें पकड़ना चाहा, थी मन की लाचारी
जाने कब से क्षीण प्राय काले पाँखों में
चाँद जिस तरह नीले नभ में किसी किनारे
खोया खोया सा रहता है, ध्यान किसी का
×　　　×　　　×　　　×
प्रिये कहीं भी रहो, कहो पर अपने मन की
मेरे मन से दो लहरें अपने जीवन की।"[1]

इसी प्रकार स्मृति का एक दूसरा चित्र भी देखिये, जिसमें कवि स्नेह की अन्तर्वृत्ति में डूबकर अपने से ही किसी प्रश्न का समाधान खोजने की चेष्टा करता है। साहचर्य के लिए अतृप्त कवि का मन शब्दों की बैसाखी लेकर इस प्रकार उतर आया है —

"याद तुम्हारी आई है, गंभीर उदासी
पकड़ रही है मुझे कदाचित्, लाचारी है
जीवन कीकल्पना सत्य से जो हारी है
नया नहीं है, कौन वृत्ति थी मन में प्यासी
जिसका यह परिणाम है ....
अपना अंतस्तल टोया क्या वहाँ नहीं है,
साहचर्य ही देशकाल में छिपा कहीं है।"[2]

वियोग के क्षेत्र में मानवीय विवशताएँ चाहने पर भी जीवन संगी को साथ नहीं रहने देती। विघ्न-बाधायें आँसुओं की बौछार इन सबके होने पर भी जीवन से जुड़ना ही

1- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 20

2- अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ0 20

पड़ता है। कवि ने इस यथार्थ को कितनी सरलता से व्यक्त किया है —

"हम तुम दोनों आज दूर हैं, चाहें भी तो
पास नहीं आसकते हैं, वैसे कहने को
कुछ भी कह लें, मन समझा लें, पर रहने को
साथ, अजी छोड़ो भी अपने मन की भी तो
सुननी भी पड़ती है, फिर बाधाएँ भी तो
एक- एक से बढ़कर हैं, वैसे बहने को
बाढ़ आँसुओं की क्या कम है, अब सहने को
शेष क्या रहा, आए जो कुछ, आए भी तो।"[1]

त्रिलोचन वियोग की स्थिति में यथार्थ का सम्बल लेते हुए अपनी प्रियतमा से ही प्रेरणा लेकर जीवन को गतिशील बनाने की बात करते हैं। उनके निम्नलिखित वक्तव्य में प्रेम की गम्भीरता दृष्टव्य है —

"यदि मैं तुम्हें बुलाऊँ तो तुम भले न आओ
मेरे पास परन्तु मुझे इतना तो बल दो
समझ सकूँ यह, कहीं अकेले दो ही पल को
मुझको जब तब लखा लेती हो। नीरव गाओ
प्राणों के वे गीत जिन्हें मैं दोहराता हूँ।"[2]

इस प्रकार त्रिलोचन का श्रृंगार भी अपने ढंग का अकेला ही है। वह केवल आँसू बहाने या उपालम्भ देने तक ही सीमित नहीं है अपितु उसमें भी कर्मपथ पर चलते रहने का साहस है। वह यहाँ पर भी विवेक का साथ नहीं छोड़ते हैं और न इतनी अधीरता ही व्यक्त करते हैं जिससे उनकी कर्मठता में कोई बाधा पहुँचे। उसमें कल्पना की ऊँची उड़ानें नहीं हैं, बल्कि अनुभूति के क्षणों की वे तरल स्मृतियाँ है जिनके आधार पर कवि को जीवित रहकर कर्मपथ पर अग्रसर होने का बल मिलता है।

1- अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ0 75
2- दिगन्त, पृ0 11

हास्य रस :-

यद्यपि प्रगतिशील कवि त्रिलोचन जीवन संघर्ष, मानवतावाद और आशावाद के कवि हैं, किन्तु वे हास्यरस से बिल्कुल अछूते रहे हैं ऐसी बात नहीं है। वे जहाँ कहीं व्यंग्य करते हैं, वहाँ हास्य रस की भी कुछ बूँदे बरस जाती है। जिन्हें छाँटकर संगृहीत कर लेना शोधार्थी का पावन कर्तव्य बन जाता है। यहाँ पर उनके हास्य रस के कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं —

"किसी बड़े को बड़ा ऋण किया, ब्याज न आया,
फेरे करते रहे, पाँव उनके छिया गए,
प्राप्ति नहीं दीखी तो ब्राह्मण-भाव आ गए
न्याय देवता करें इसलिए बाल रखाया
पाँच साल पर ऋणी गया, कर दी भर पाई,
दूबे ने भी देव दया से जटा कटाई।"[1]

यहाँ कवि ने पैंसठ वर्ष की अवस्था के रामचन्द्र दूबे नामक उस व्यक्ति का चित्र प्रस्तुत किया है जिसने किसी जबरदस्त व्यक्ति को भारी ऋण दे दिया। बार-बार जाने पर भी जब उसने ब्याज नहीं दिया तब उसने उसके ऊपर बाल रखा लिए। पाँच वर्ष बाद ऋणी ने ऋण वापस किया, तब ईश्वर की कृपा से उन्होंने अपनी जटाएँ मुड़वा लीं। यहाँ पर कवि ने ऋणदाता पर जो व्यंग्य किया है, उसमें बाल रखाने और मुड़ाने के पीछे जो कारण दिया है, उस पर स्वाभाविक रूप से हँसी आ जाती है।

"छोड़ा है सरकार ने गेहूँ का व्यापार
हुआ मंडियों में शुरू व्यापारी त्यौहार
व्यापारी त्यौहार, लगा है तुलने गल्ला
दर्शक डाँडी देख चकित हैं अल्ला-अल्ला
फखरूद्दीन अली अहमद को यह थोड़ा है
बातों के घोड़े को संसद में छोड़ा है।'8'[2]

1- तुम्हें सौंपता हूँ, पृ0 55   2- तुम्हें सौंपता हूँ, पृ0 99

यहाँ पर भी कवि ने शासन पर और व्यापारियों पर व्यंग्य किया है जिसके निष्कर्ष से हास्य की एक विरल धारा फूटती हुई दिखलायी देती है। इसी प्रकार हास्य और व्यंग्य के मिले-जुले प्रयोग अन्यत्र भी मिल जाते हैं किन्तु स्वतंत्र रूप से कवि के हास्य का कोई उदाहरण न मिल सकने का यह कारण है कि कवि स्वभाव से ही गम्भीर एवं उदात्त है।

करुण रस :-

त्रिलोचन का समाजवादी कवि जहाँ मानव-समाज पर अत्याचार, शोषण और दुःख की छाया देखता है, वहाँ उसके हृदय में करुणा की प्रोतस्विनी उमड़ने लगती हैं। उनका हृदय इस व्यथा से विचलित हो जाता है। उनकी इस अभिव्यक्ति को प्रस्तुत करने में उनकी वाणी कुछ इस प्रकार की शब्दावली लेकर प्रस्तुत होती है — उन्नीस सौ तिरपन के महाकुम्भ में जब असंख्य जनता का महासंहार हुआ, उस समय का दृश्य कितना करुण है —

"कान नहीं सुन पाते थे, मिट्टी का ढेला
ही मनुष्य था यदि साँसें बाहर जाती थीं।
तो फिर अंदर फिर कर कभी नहीं आती थी,
'हाय' 'मेरा' 'देखकर 'बचाओ' 'पैर तो गया'
कहीं खड़ा हो पाता तो चक्कर खाती थी
'चमिया-बुधिया उधर' महेसर कहाँ खो गया,
दब पिचकर कितने ही जन दम तोड़ रहे थे,
माया, ममता, मानि मता सब छोड़ रहे थे।"[1]

यहाँ पर कवि ने महानाश की भयंकर स्थिति का करुण चित्र उतारा है जिसमें मनुष्य कितना विवश था। लोगों की करुण पुकार सुनकर कवि का विह्वल हृदय कितनी शक्तिमत्ता के साथ उक्त पंक्तियों में उतर आया है।

त्रिलोचन देखते हैं कि हमारे समाज में न जाने कितनी बहनें असमय में ही माता बनकर मातृत्व के बोझ से दबकर वृद्धा सी लगने लगती हैं। उनका जीवन

1- अरधान, पृ0 56

जड़ बन जाता है। शैशव की वह स्फूर्ति समाप्त हो जाती है और जीवन का स्वाभिमान सिमटनेलगता है। इन्दो' की इसी स्थिति पर कवि के हृदय में करूणा के घन घिर आते हैं और बरसने के पूर्व कुछ इस प्रकार अपना संकेत करते हैं —

"गुड्डे-गुड़ियों का ब्याह रचाना
अभी तुझे छोड़ना नहीं था, बूढ़ी दादी
तू असमय बन बैठी, तुझ को अभी बचाना,
था बचपन की फुर्ती को, क्यों रास लुटा दी
धूल और मिट्टी का कहीं निशान नहीं था
जीवन का जाग्रत कहींअभिमान नहीं था।"[1]

बिजली के खम्भे मेंचिपका हुआ एक मनुष्य भीड़ से बचाने के लिए अपने पुत्र को आश्रय देना चाहता है, किन्तु भीड़ की ठोकर से उसकी मृत्यु हो जाती है। मानवता की यह दुर्दशा कवि से देखी नहीं जाती है और उसकी करूणा इन स्वरों में फूट पड़ती है —

"कोई अपने लड़के को दे रहा सहारा,
खंभे वाला उस को दे दे ले लेता है
वह भी बच्चे को, भीड़ की लहर ने मारा
खंभे को क्या करे, फेंक उस को देता है,
कल जिसकी छाती में पौरूष का पार नहीं था
आज उसी के प्राणों का उद्धार नहीं था।"[2]

त्रिलोचन को दीन-हीन जीवन से बड़ी सहानुभूति है वे दुखियों का दर्द सुनते हैं। उससे उनका हृदय दहल उठता है और उनके अन्तर्मन में जो वेदना उठती है वह कविता का रूप ले लेती है —

"सुकनी एक बुढ़िया थी जो अपने सर्वनाश के पश्चात् दैन्य जीवन जी रही थी। चरवाहे उसे चिढ़ाते थे, वो उन्हें गाली देती और बच्चे ताली बजा-बजाकर

1- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 92
2- अरघान, पृ0 54

उसे नित्य चिढ़ाते। बेचारी छह-छह बच्चे मर चुके थे। भीतर से वह टूट चुकी थी। फिर भी मेहनत मजदूरी से अपने दिन काटती थी। कवि को उस बुढ़िया के इस करूण जीवन से गहरी सहानुभूत थी जिसको उसने निम्न पंक्तियों में पिरोने की चेष्टा की है— " .... ळाना ले

कोई उसके पास न पहुंचा जाकर ताली
बजा-बजा कर लड़के नित्य चिढ़ाया करते
सिला बीनती थी, करती थी कहीं पिसौनी
तब गड्ढा भरता था छह-छह बेटे मरते
गए, छोड़ते गए उसे रह गई पिसौनी।"[1]

वस्तुत, यह वर्णन केवल उस सुकुनी बुढ़िया का नहीं, अपितु हमारे समाज में इस प्रकार की न जाने कितनी पीड़ित वृद्धायें वैभव के दिनों से हटकर करूण जीवन जी रही हैं और समाज का अभिशाप बनकर जनता से अपने लिए मूक स्वर से कुछ कहती हैं। भले ही उन्हें लोग पागल कहें, ताली बजाकर हंसे और व्यंग्य बाणों से चिढ़ायें किन्तु वस्तुतः वे हमारी सहानुभूति को आकर्षित करती हैं और किसी भी सहृदय के आंसुओं को आमंत्रण देती हैं।

कवि को आज के मानव से गहरी सहानुभूति है। व्यक्ति कितना स्वार्थी हो गया है कि वह दूसरे का दुःख दर्द सुनकर भी नहीं सुनता, जानकर भी नहीं जानता यही कवि की अन्तर्व्यथा है। जहाँ देखिए वहीं त्रस्त मानवता दुःख से आहें भरती है। चारों ओर निरूत्साह का वातावरण है और मानवता की रक्षा का कोई मार्ग नहीं दिखलाई पड़ता। कवि का विशाल हृदय इस व्यापक विभीषिका से दुःखित है, उसकी करूणा का छटपटाता हुआ रूप निम्नलिखित पंक्तियों में अवलोकनीय है —

"मनुष्य की बात मनुष्य कानों
कभी सुनेगा कि नहीं सुनेगा

1- उस जनपद का कवि हूं, पृ० 95

उपेक्षिता है अब प्राण पीड़ा,
कराह का सागर ज्वार में है
सभी दिशायें दुःख से भरी हैं
चले कहाँ प्राण डरे-डरे हैं,
न भावना है, न विकल्पना है,
न राह ही है, न उछाह ही है।'[1]

इसी प्रकार त्रिलोचन दुःखितों और पीड़ितों का कष्ट देख नहीं पाते। करूणा बार-बार उनके स्वर से स्वर मिलकर रोने के लिए उनका आह्वान करती है और वे स्वाभाविक-रूप से उस दलित मानवता के आँसू पोंछने के लिए लेखनी उठा लेते हैं। इस लेखनी से जो पंक्तियाँ निकलती हैं वे अपने में अनुपम बन जाती है और सहृदय पाठक के हृदय को भी करूण रस से आप्लावित कर लेती है। इसलिए कहीं-कहीं तो त्रिलोचन के विषय में मेरा मन कह उठता है कि "मैं उन्हें दलित मानवता का करूण कवि कहूँगी।"

रौद्र रस :-

त्रिलोचन भावना की सरिता में आँख मूँदकर नहीं बहते हैं। वे एक सफल-तैराक की भाँति तैरते हैं। यह उनकी विशेषता है। वे तभी क्रुद्ध होते हैं, जब मानवता की दुर्गति देखते हैं, उनका आक्रोश तब उमड़ता है जब अन्याय होता है, प्रपीड़न होता है, अत्याचार होता है। ऐसे स्थलों में उनका रौद्र रूप देखते ही बनता है। यथा — 'जब जनता महाकुम्भ में स्नान करने के लिए पहुँचते हैं और पुलिस उसे डण्डों के बलपर रोकती है, उस समय त्रिलोचन का निर्भीक कवि व्यक्तित्व पुलिस को फटकारता हुआ जनता की अजेयता पर वक्तव्य देता हुआ कठोर स्वर में बोलता है—

"आने दो आने दो जनता को मत रोको
पर्वत की दृढ़ता है, कब रूकने वाली है,

1- अरधान, पृ0 13

पथ दो, प्याऊ बैठा दो, चलते मत टोको,

बल प्रयोग देखकर कब झुकने वाली है,

हार थकन से क्या यह धुन चुकने वाली है।"[1]

फ्रांस की क्रान्ति के सम्बन्ध में विजय की उल्लास पर कवि ने पीड़ित जनता की ओर से रौद्र रस के उमंग में जो कुछ लिखा है वह उसके हृदय की धड़कन है इसका एक रूप अवलोकनीय है —

"वह निकली, वह, पीड़ित जनता,

आजादी का झण्डा ताने,

बन्दी दिल के भाव उबलते,

बम गोलों से चले तराने।

फ्रांस चिरजीवी हो, गूँजा

महकाल कीबाढ़ चली यह,

धूँ से जमी जगाने वाली

जन-तरंगिणी उमड चली यह,

देखो अब देखो, हत्यारे

महकाल यह खड़ा हो गया।"[2]

त्रिलोचन जनता से गलत वायदे करनेवाले उन नेताओं से बहुत असन्तुष्ट हैं जो अपनी भूल भुलैया में रखकर जनता को लूटते हैं। इस सड़ी-गली शासकीय व्यवस्था पर वे इस प्रकार बरस पड़ते हैं —

"सड़ी [illegible] व्यवस्था के विरूद्ध विद्रोह के लिए

मैं ललकार रहा हूँ उस सोई जनता को

जिस को नेता लूट रहे हैं कहकर तमको

मत, हम तो हैं ही अत्यधिक विमोह के लिए

कोल करारों की बौछार किया करते हैं

इनसे उनसे सबसे दिन को और रात को।"[2]

1- अरधान, पृ0 43 2- तुम्हें सौंपता हूँ, पृ0 119-120

3- अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ0 87

इसी प्रकार कवि ने जहाँ- जहाँ अपना आक्रोश व्यक्त किया है, वहाँ-वहाँ रौद्र रस की झलक मिल जाती है। कवि की प्रकृति ही असहिष्णु है। वह अत्याचार बर्दाश्त नहीं कर सकता। अन्याय को सहन नहीं कर सकता और मानवता का अहित करने वाले को क्षमा नहीं कर सकता। ऐसे स्थलों में उसका रौद्र भड़क उठता है किन्तु ऐसे स्थलों में भी वह संयम बनाये रखता है।

वीर रस :-

यदि रस की दृष्टि से ही देखें तो त्रिलोचन शास्त्री की रचनाओं में 'वीर रस' का ही प्राधान्य मिलेगा। उनके ओजस्वी उद्गार वीर रस की ही अभिव्यक्ति करते हैं। उन्होंने जन-जागृति से सम्बन्धित शताधिक कविताएँ लिखी हैं। जिनमें वीर रस की झलक स्वाभाविक ही है। विभिन्न उदाहरणों के द्वारा कवि के वीर रस के कतिपय आदर्श प्रस्तुत किये जा रहे हैं —

"मुक्ति के सैनिक इन्हें पहचानती है आज दुनिया
चण्ड इनके बाहुबल को मानती है आज दुनिया
ये अशिक्षित हों असभ्य गँवार हों जो कुछ समझ लो
देश का प्रतिनिधि इन्हीं को जनती है आज दुनिया।
हो चुका निर्णय इन्हीं को जानती है आज दुनिया
हो चुका निर्णय इन्हीं को देख हिन्दुस्तान यों है
आज ये प्रतिरूप हिन्दुस्तान, तेरे आ रहे हैं
आज वे संगीन कन्धों पर रखे धर आ रहे हैं।"[1]

भारत के बहादुर सैनिकों की प्रशस्ति में कवि ने बड़े ओजस्वी स्वरों में जो कुछ कहा है उससे वीर रस के साकार होने में सहायता मिली है। प्रसंगानुकूल शब्दावली प्रशस्त है और उत्साह भावना को बल मिला है।

1- तुम्हें सौंपता हूँ, पृ0 116

"आज देश की दलित पताका
आसमान में / लहराती है / इसे देखकर
आज हमारी छाती/ गजभर हो आती है
वह भूकम्प उठा,
कि हमारी छाती पर जो चढ़े हुए थे
लुढ़क गये अविचल पहाड़ वे
हम जो अब तक/धूलि धूसरित पड़े हुए थे
खड़े हो गये।"[1]

यहाँ पर वीर रस के स्थायी भाव 'उत्साह' की सफल व्यंजना हुई है। और पद-दलित जनता की विजय के उत्कर्ष से कवि के हृदय का उत्साह वीर रस की व्यंजना करने में पूर्ण सफल हुआ है।

"राक्षस जब तक नहीं जाएंगे धरा धाम से
तब तक चैन न लूँगा' अपने दिव्य नाम से
दक्षिण भुजा उठाकर यह प्रण किया और फिर
लगे कार्यसाधन में केवल इसी काम से
तन मन जोड़ा रहे इसी के हित स्थिर अस्थिर
महाकुम्भ में हत निरीह प्राणों की पीड़ा
कौन समझ कर बढ़ता है लेने को बीड़ा।'[2]

यहाँ पर महाकुम्भ के महाविनाश पर कवि का हृदय क्षुब्ध हो गया है। निरीह मुनियों की हत्याकरके हड्डियों का पहाड़ लगा देने वाले राक्षसों की काली करतूत पर कुपित होकर राम ने प्रतिज्ञा की थी —

"निसिचरहीन करौं महि, भुज उठाय प्रण कीन्ह।
सकल मुनिन के आश्रमन जाई-जाई सुख दीन।" (मानस, अर0काण्ड)

1- तुम्हे सौंपता हूँ, पृ0 135
2- अरथान, पृ0 57

किन्तु क्या आज मानव समाज में इस भीषण नर संहार को देखकर कोई ऐसा व्यक्ति है, जो इन राक्षस रूपी शासकों के विनाश का बीणा उठाये। इस ओजस्वी स्वर के साथ कवि ने वीर-रस का जो आजस्वी स्रोत, बाण गंगा की तरह प्रस्फुटित कर दिया है, वह अपने में बड़ा ही स्वाभाविक और महत्वपूर्ण लगता है। अतीत के स्वर से वर्तमान को जोड़ने की नवीन कला अपना कर कवि ने इमेएक बार राम के हृदय में उत्पन्न हुई उस वीर रस की याद दिला दी है जिसकी आज हमारे देश और समाज को आवश्यकता है।

"जीवन की राह बताऊँक्या चुपचाप चले
आओ, क्यों होते हो अधीर, इस में ऐसा
भय क्या है, जो कंटक हैं पथ के उन्हें दले
बस चलो पहाड़ी रास्ता है, उसमें कैसा
अस्पष्ट नहीं धारा है, नहीं कहीं कल कल
की ध्वनि है, केवल है दरार या इधर-उधर
है शिलाविभगों की उठान या अड़े अचल
उत्काय मर्मरित देवदारु के कंप अधर।"[1]

यहाँ पर कवि ने जीवन पथ में अग्रसर होने के लिए पथ-बाधाओं की परवाह न करते हुए मानव को आगे बढ़ने के लिए नया उत्साह, नयी प्रेरणा और नयी स्फूर्ति प्रदान की है। ओज गुणानुकूल शब्दावली का प्रयोग किया है जिससे वीर रस की आक -र्षक व्यंजना करने में उसे सफलता मिली है।

"मुक्ति चाहते हो तो आओ धक्के मारें,
और ढहा दें उद्यम करते कभी न हारे
ऐसे वैसे आघातों से, स्तब्ध पड़े हो
किस दुविधा में, झिझक छोड़ दो, जरा कड़े हो

1- अनकहनी भीकुछ कहनी है, पृ0 44

ओजो- अलगाने वाले अवरोध निवारें
बाहर सारा विश्व खुला है, "[1]

यहाँ पर कवि ने हमारे समाज को स्वार्थ की जिन दीवारों में घेररखा है उन्हें धक्का मार कर ढहा देने के लिए मानव को प्रेरणा दी है। आशा और उत्साह से भरा हुआ कवि का यह कर्तव्य जीवन को नयी स्फूर्ति देता हुआ वीर रस का निर्झर बहा देताहै।

इसी प्रकार त्रिलोचन ने दुखी, पीड़ित, निराश्रित, असहाय और निराश मानवता को उद्बुद्ध किया है। उनको अन्धकार से प्रकाश में लाने की चेष्टा की है। घन-घोर तमिस्रा के भयावह वातावरण से निकालकर उन्हें उषा का नया प्रकाश दिखलाने की चेष्टा की है। उन्हें प्रेरणा प्रदान की है। अतः ऐसे स्थलों में कवि ने ओजगुण प्रधान ओजस्विनी भाषा का प्रयोग किया है, जिसके द्वारा वीर रस की सफल व्यंजना करने में वह सक्षम सिद्ध हुआ है।

भयानक रस :-

त्रिलोचन का व्यक्तित्व बड़ा ही अक्खड़ है। उनके स्वभाव के शब्दकोश में 'भय' नाम का कोई शब्द ही नहीं है। इसलिए उनके निर्भीक व्यक्तित्व की छाप उनके काव्यों पर भी पड़ी है। अतः भयानक रस के लिए वे कभी स्थान ही नहीं देते। परि-स्थितिवश कुम्भ के महाविनाश में उन्होंने भयानक रस का एक चित्र अवश्य उतारा है -

"नागों का नंगा नाच और वह चिमटा
भाँजते हुए जाना, फिर तान कर डराना
जनसाधारण को समूह जिन का था सिमटा
आस पास कौतूहल से भयभीत कराना
और भगाना प्रेत रूप से उन्हें छराना
× × × ×
लोग भभर कर भागे कितनों ने दम तोड़े
वेश बनाए निशाचरी छल तलक रहा था।"[2]

1- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 97 2- अरघान, पृ0 46

यहाँ पर साधु नागाओं का आतंक, उनका तलवारें भाँजते हुए चलना, निरीह जनता को डरवाना, त्रस्त होकर भोली भाली जनता का भागना, एक यथार्थ घटना है। जिसको चित्रित करके कवि ने भयानक रस का सफल परिपाक किया है।

"चली है आँधी जो गिरि पथ वनों में गरजती
गुंजाती वेगों से गगन अचला को, प्रलय के
सहस्त्रों शंखों की मिलित ध्वनि गूँजी तड़ित की
कड़कें की धारा पसर कर फैली भुवन में
खगों के नीड़ों को अकरुणकरों से पकड़ के
उछाला तारों में, करुण रव से आज उनके
धरा भी काँपी जो परवश पड़ी थी अनय के,
प्रहारों से हारी, भव-भय भरे प्राण-तल में।"[1]

यहाँ पर प्रकृति के भयानक रूप का आलम्बन रूप में चित्रण किया है जिसमें वायु का प्रखर वेग, विद्युत की कड़क, पशु-पक्षियों में समाया हुआ आतंक, पृथ्वी का कम्पन आदि के चित्रण से भयानक रस साकार हो गया है। अन्यथा यदि यह यथार्थ न होता तो कवि ने भयानक रस को काव्य में स्थान न दिया होता। इन दो स्थलों के अति - रिक्त कवि ने भयानक रस के चित्र उतारने की प्रायः कोई चेष्टा नहीं की। जो कुछ किया भी वह यथार्थ की भाव-भूमि है। अनुभूति के आधार पर, न कि कल्पना के बल पर। इस प्रकार अन्य रसों की भाँति भयानक रस के चित्रण में भी त्रिलोचन खरे उतरते हैं।

<u>अद्भुत रस</u> :— प्रयाग के कुम्भ में जनता की अपार भीड़ को देखकर कवि आश्चर्य चकित हो जाता है और यजुर्वेद में वर्णित विराट के उस अद्भुत रूप को यहाँ पर साकार रूप में देखता है।'[2]

1- अरधान, पृ० 14
2- सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं सर्वतः स्पृत्वात्यतिष्ठद्दशांगुलम्।" (यजुर्वेद, पुरुषसूक्त —1)

"जनता का समुद्र वह, देखा शीश झुकाया,
तभी सहस्त्रशीर्षापुरूषः याद आ गया,
उन आँखों को देखा, सहस्त्राक्ष गाया
चरणों को देखा तो सहस्त्रपात् छा गया
प्रतिबिम्बित होकर मानस में मुझे भा गया
वह विराट दर्शन मैंने विश्वास पा लिया।"[1]

यहाँ पर कवि ने कुम्भ में उमड़ती हुई भीड़ का आश्चर्यजनक चित्रण किया है जो अद्भुत रस का द्योतक है। विशेषता तो यह है कि जिस प्रकार वेदों में वर्णित विराट् पुरूष की कल्पना की गयी है, उसी को कवि ने जनता जनार्दन के रूप में यथासिद्ध कर दिया। इस प्रकार प्राचीन सन्दर्भों को नए सन्दर्भों में देखने की पद्धति ने ही यहाँ पर अद्भुत रस को साकार करने में सहायता दी है।

वीभत्स रस :—

यद्यपि त्रिलोचन को वीभत्स रस से कोई लगाव नहीं है किन्तु पिसती हुई मानवता के दुःखदर्द से वह अपने को दूर नहीं रखता है। जब यह कुम्भ के मेले में लाशों का प्रदर्शन देखते हैं, उनकी दुर्दशा का यथार्थ चित्र देखते हैं, तब वह उस देखे हुए वीभत्स को शब्दों में उतार लेने के लिए बाध्य हो जाते हैं—

"मानव ने यह असहनीय आघात सहा था
मुर्दे पड़े हुए थे, मुँह नाक से बहा था
काला और पनीला रूधिर गन्ध का लहरा
हल्का-हल्का उठता था।"[2]

यहाँ पर लाशों की दुर्दशा उनके नाक आदि से बहता हुआ रक्त, का चित्रण वीभत्स रस की सिद्धि के लिए पर्याप्त है।

1- अरधान, पृ० 42
2- वही, पृ० 48

त्रिलोचन विश्व को सुन्दर नहीं मानते उनकी दृष्टि में मानव की निखिल सृष्टि सुन्दर है। हाँ वे अपने को अवश्य ही असुन्दर चित्रित करते हैं। गन्दे, फटे कपड़ों को धारण करना उनकी आदत नहीं है, कुछ विवशता है, जिसे लिखने में उन्हें कोई संकोच नहीं है। भले ही यथार्थ का यह चित्रण वीभत्स का स्पर्श करने लगे, यथा— "वही त्रिलोचन है, वह – जिस के तन पर गंदे
कपड़े हैं, कपड़े भी कैसे – फटे लटे हैं,
यह फैशन है, फैशन से कटे-कटे हैं
कौन कह सकेगा इसका यह जीवन चंदे
पर अवलम्बित है।"[1]

शांत रस :–

त्रिलोचन जीवन संघर्ष के कवि हैं। जब तक समाज में विषमता है, तब तक उन्हें शांति कहाँ है? इसलिए उन्होंने शान्ति के गीत नहीं गाये, फिर भी कुछ क्षण ऐसे भी मिले हैं जहाँ उन्होंने शांति का अनुभव किया है। यथा —

"हो गया है मुझ को विश्वास
श्वास है जीवन का आभास
कहो मत, रहो मौन दिन रात
सहो जीवन के संचित भोग
भोग कर यहाँ बचा है कौन
अटल है कर्मों के संयोग
यही है जीवन का इतिहास।"[2]

यहाँ पर कवि ने कितने शांत भाव से इस जीवन को कर्मक्षेत्र माना है और जयशंकर प्रसाद की भाँति –' भोग का कर्म कर्म का भोग' से सहमति व्यक्त की है। अतः यहाँ शांत रस स्वतंत्र रूप से स्वतः प्रकट हो गया है। इसी प्रकार कवि मानव-मात्र को अपना

1– उस जनपद का कवि हूँ, पृ० 11   2– सबका अपना आकाश, पृ० 19

समझता है और सबको वसुधैव कुटुम्बकम्' की शिक्षा देता हुआ शांत रस का संचार इस प्रकार करता है –

"सबमें अपनेपन की माया/अपनेपन में जीवन आया
चंचल पवन प्राणमय बन्धन/व्योम सभी के ऊपर छाया
एक चाँदनी का मधु लेकर
एक उषा में जगो जगाओ।"[1]

उपर्युक्त पंक्तियों में कवि ने अपनी सीमा में सबको लेने का जो संकल्प व्यक्त किया है उसमें कहीं कोई विरोध नहीं है और विरोधों के अभाव में शान्ति स्वतः चली आती है, अतः इन पंक्तियों को पढ़कर पाठक स्वयं शांत रस का अनुभव करने लगता है –

"बीन बजाओ
तार-तार झंकार कर उठे
घोर व्यथा का भार हर उठे
प्राण-प्राण से एक स्वर उठे/तान उठाओ
प्राणों को भर कर स्वर छलके
आभा नई मुखों पर झलके
भूल जायँ सबको दुख कल के गीत सुनाओ।"[2]

यहाँ पर कवि मानसिक शान्ति में डूब गया है, उसे वीणा की झंकार सुनने की इच्छा है। व्यथाओं से दूर प्राणों से प्राणों का संगम और उसकी एक सुरीली तान सुनने – सुनाने के लिए कवि उत्सुक है। वह किसी अज्ञात से ऐसे गीतों को सुनाने का आग्रह करता है, जो सबके मुखों को प्रसन्नता से भर दे और कोई दुखी न रहे। (सर्वे भवन्तु सुखिनः) का यह पुरातन सिद्धान्त आज के नए परिवेश में हमें विश्व शान्ति की ओर ले जाने में सक्षम है। ऐसा लगता है कि कवि ने अपनी कवित्व शक्ति से शांत रस के

1- तुम्हें सौंपता हूँ, पृ0 40 2- सबका अपना आकाश, पृ0 68

प्रशान्त महासागर को विश्व में व्याप्त कर देने का संकल्प लिया है।—

वात्सल्य रस :—

यद्यपि त्रिलोचन को जीवन संघर्षों से जूझते रहने के कारण वात्सल्य जैसे कोमल भाव के अनुभूतिमयी क्षण कम ही मिल पाए हैं जिससे उनकी रचनाओं में वात्सल्य रस का अभाव सा दिखता है। किन्तु मैंने विशेष प्रयास करके उनके वात्सल्य का एक उद्धरण खोज लिया है, जो इस प्रकार है —

"नन्हे ने सिर पर हवाईजहाज देखा
जो हठ पकड़ा/ पापा-पापा,
हवाई जहाज मुझे भी ला दो /मैं भी उड़ाऊँगा
कैसे समझाए कोई बच्चे को
वह क्या जाने हवाई जहाज
उसका बाप भी / बस देखा करता है और
उसे पाने का /स्वप्न तक नहीं देखा उसने/ किसी दिन।"[1]

यहाँ पर कवि की अनुभूति का आश्रय पाकर वात्सल्य का बड़ा जीता - जागता एवं प्रभावशील चित्र उतर आया है। बालक का हवाई जहाज पाने का दुराग्रह और पिता के आर्थिक अभाव का द्वन्द्व दोनों ने मिलकर कवि के हृदय को मथ डाला है, और उससे करूण वात्सल्य की जो अभिव्यक्ति हुई है वह केवल त्रिलोचन की ही नहीं, अपितु समाज के दैन्य ग्रस्त अनेक माता-पिताओं की मार्मिक पीड़ा है। इस प्रकार त्रिलोचन का करूण वात्सल्य कवि की प्रगतिशील विचारधारा के अनुरूप है।

अन्य स्फुटिक भाव :—

प्रेम भावना :— कवि प्रेम के क्षेत्र में भी अन्तर्दृष्टि रखता है। वह क्रमशः किस प्रकार संकुचित होता जाता है, इसका चिन्तन कवि के शब्दों में ही दृष्टव्य है —

1- चैती, पृ0 16

"कैसे - कैसे प्यार तुम्हारा इतना छोटा
हो आया, पहले पाया आकाश यही है
फिर समझा आकाश नहीं यह तो धरती है
फिर देखा यह अपना घर है जिसमें टोटा
ही टोटा है, काम चलाकर कितना खोटा
लगता है, हिसाब तो लेने वाला जी है
खालीपन का दर्द हो गया मन का मोटा।'[1]

प्रणय के क्षेत्र में अतृप्ति को महत्व दिया जाता है। इसका मनोवैज्ञानिक चित्रण कवि ने इस प्रकार किया है —

"मेरी ओर देखा
जाने कैसे हँसी आ गयी बोले —' क्यों
पाँच घाव खाए हैं तुम्हारे लिए
अभी मन नहीं भरा
फिर तन पाऊँ तो तुम्हारी राह आऊँगा
अभी मेरे रोम-रोम भूखे हैं।"[2]

प्रेम की गति का चित्रण करने में कवि ने जिस मूर्त कल्पना को प्रस्तुत किया है वह भी अवलोकनीय है —

"प्रेम,
दबे पाँव चला करता है
जाड़े का सूरज / जैसे कुहरे में छिपकर
आता है।"[3]

प्रेम के क्षेत्र में कवि ने केवल वाह्य दृष्टि के अतिरिक्त वासना का रूप नहीं आने दिया वह तो केशों की छाया और नेत्रों की ज्योति को ही अपना प्राप्तव्य मानता है, और कुछ नहीं —

1- तुम्हें सौंपता हूँ, पृ0 39, 2- वैती, पृ0 19 3- अरघान पृ0 16

"इन आँखों की ज्योति
और इन केशों की छाँह
पथ पर हो / और
कुछ और नहीं चाहिए"[1]

कवि वैयक्तिक प्रेम में यथार्थ से जुड़ा रहता है और प्रेम उसके कर्तव्य मार्ग में बाधा नहीं डालता। यथा –

"सचमुच इधर तुम्हारी याद तो नहीं आई
झूठ क्या कहूँ, पूरे दिन मशीन पर खटना,
वासे पर आकर पड़ जाना और कमाई
का हिसाब जोड़ना, बराबर चित्त उचटना
उस इस पर मन दौड़ाना, फिर उठ कर रोटी
करना कभी नमक से कभी साग से खाना।"[2]

<u>संवेदना और सहानुभूति :–</u>

कवि मानव जीवन से गहरी सहानुभूति रखता है। वह पीड़ितों और असहायों के लिए विशेष सहृदय हो जाता है और मनुष्यता के रूप को प्रज्ज्वलित करने वाला यह विचार उसके हृदय से इस प्रकार फूट पड़ता है –

"मेरी से बढ़कर है तेरी आवश्यकता
कहा और अपने हाथों से अंतिम प्याला
बढ़ा दिया घायल के मुँह की ओर उजाला
चेहरे पर मानवता का आया, मैं थकता।"[3]

यही तो मानवता का प्रश्न है कि थके, दुर्बल, असहाय एवं पीड़ित को हम सहायता दें, और जो कर्म से विमुख होकर सोये हुए पड़े हैं, उन्हें जगाकर कर्तव्य का मार्ग दिखलायें।

1- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 46

2-

3- अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ0 96

"देखा कहीं जो बोझ से दबते किसी को भी
नजदीक जाके कांध लगाया यहां वहां।
निश्चिंत पड़ के सोए किसी को कहीं देखा
जाते समय को देख जगाया यहां-वहां।"[1]

कवि उन सभी व्यक्तियों से सहानुभूति रखता है, जो जीवन के पथ पर अग्रसर हैं। उन्हें चेतावनी देना उनका कर्तव्य है ताकि वे विचलित न हों।

"खर धार है बच बच के भी बहते हैं बार-बार
आप अपने हैं इसीलिए कहते हैं बार-बार।"[2]

आज के समाज में निर्धन एवं असहाय व्यक्तियों का जीवन बड़ा दुखमय है यदि किसी की मृत्यु हो जाती है तो असहाय के शव को भी उपेक्षित छोड़ दिया जाता है। कवि ने इसी प्रकार की एकबुढ़िया की दुर्दशा का चित्रण करता हुआ कहता है —

"बुढ़िया जब मर गई उसे ले जाकर फेंका
अंधे कुएं में चमारों ने, थोड़ी लकड़ी
नहीं किसी ने दी उसको × × ×
सुना कि बुढ़िया है अब तक जैसी की तैसी
पड़ी कुएं में जाकर आंखोंदेखा, दोनों
की दुर्दशा दिखाई दी, कल्पना न वैसी
मुझको थी कि गीध कौवे भी पास न आए
सड़ी गली भी नहीं, पड़ी थी लाश भी खुली
उसी खाट पर जिस पर दम तोड़ा था।"[3]

<u>वितृष्णा :—</u>

महाकुम्भ के विनाश पर कवि का हृदय वितृष्णा से भर उठता है। उनकी दुर्दशा का चित्रण करता हुआ कवि अन्ततः यह कहने के लिए बाध्य हो जाता है -

1- गुलाब और बुलबुल, स्थापना 6 पृ0 12-13
2- वही, पृ0 86
3- उस जनपद का कवि हूं, पृ0 96

"मृत्यु अकेली भी तो बेध बेध जाती है
सामूहि क से छाती छलनी बन जाती है।"[1]

बेरोजगारी की समस्या हमारे समाज को समस्याग्रस्त बना रही है। कवि इसका समाधान नहीं खोज पाता। इसलिए वितृष्णा से उसका हृदय भर जाता है और वह उन्हीं की भांति किंकर्तव्यविमूढ़ होकर अपने उद्गार व्यक्त करके रह जाता है —

"देखता हूँ बेरोजगारों को
असहाय हाथ बगल में दबाये
पांव-पांव चलते / और चुपचाप
कहीं पड़ जाते।"[2]

वैयक्तिक अभिलाषा :—

कवि चाहता है कि मैं मानव के कष्ट को दूर कर सकूँ। निर्भीक होकर सन्मार्ग पर चलूँ। जब मरना ही है तो विश्व का कल्याण करके मरूँ। कितना अच्छा हो कि मैं दूसरे के दुखों को दूर कर सकूँ। उसकी इच्छा है कि मैं न्याय के पथ पर चलूँ। न्याय को मानूँ और न्याय से ही डरूँ।

"चाहता हूँ मैं मनुज के ताप को कुछ हर सकूँ
शून्यता उसके हृदय की हो सके तो भर सकूँ
व्यर्थ का संकोच आ-आ कर न बांधे हाथ पांव
मैं सुपथ पर काम करने के निडर होकर सकूँ।
× × × ×
चाहता हूँ मैं त्रिलोचन न्याय के पथ पर रहूँ
न्याय को धारण करूँ फिर न्याय से ही डर सकूँ।"[3]

ग्रामीण-जीवन :—

त्रिलोचन ग्रामीण जीवन के प्रति आस्था रखते हैं, इसलिए उनके काव्यों में ग्रामीण जीवन की विभिन्न समस्याओं, और परिस्थितियों का चित्रण पर्याप्त मात्रा

1- अरधान, पृ0 45 2- तुम्हें सौंपता हूँ, पृ0 5।

में प्राप्त होताहै। यह चित्रण 'दिगन्त' 'धरती' 'उस जनपद का कवि हूँ' और 'ताप के ताए हुए दिन' में पृथक्-पृथक् रूपों में प्राप्त है। ग्रामीण जीवन में विशेषतः जिस जनपद में कवि ने जन्म लिया है, वह नीरस है। उसमें कोई सामाजिक चेतना नहीं है। और न उसे यह भी पता है कि संसार में क्या होता है। वह तो पुरातन पन्थी है। जब कोई काम बिगड़ जाता है या कोई मनोरथ पूर्ण नहीं होता तब आँसू बहा - कर बैठे रहना ही जानता है।

"कब सूखा है
उसके जीवन का सोता, इतिहास ही बता
सकता है, उस उदासीन बिल्कुल अपने से
अपने समाज से है दुनिया को सपने से
अलग नहीं मानता, उसे कुछ भी नहीं पता
दुनियाँ कहाँ से कहाँ पहुँची अब समाज में
वे विचार रह गए नहीं है जिन को ढोता
चला जा रहा है वह, अपने आँसू बोता
विफल मनोरथ होने पर अथवा अकाज में।"[1]

ग्रामीण जीवन की इस दुर्दशा का क्या कारण है? इसको भी त्रिलोचन ने स्पष्ट शब्दों में लिखा है। ऊँच-नीच के भेदभेचार दीवारें और जातीय पंचायतों का दण्ड-विधान इन सबकी चर्चा करते हुए कवि ने ग्रामीण समाज का ऐसा चित्र खींचा है, जिसमें विवाह-सम्बन्धी सामाजिक प्रचलन को गाँव-गाँव में देखा जा सकता है —

"जरा ऊँच-नीच का विचार तो यहा भी था
जातियों के आपसी भेद थे
कोई जाति कुछ ऊँची
कोई जाति कुछ नीची
स्त्री-पुरुष भिन्न-भिन्न शाखा के हुए

1- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 17

तो पड़ मुश्किल पड़ जाती थी
लेकिन पंचायत थी / डांड बांध करती थी
जिसे मानना ही था........।"[1]

ग्रामीण जीवन में जब आकाश में बादल छाते हैं जल की बूंदों की बौछार खेतों के सूखे हुए ढेलों पर पड़ती है उस समय धरती की सोंधी-सोंधी सुगन्ध वातावरण को सुवासित करती है। बूंदों की रिमझिम-रिमझिम ध्वनि कानों में संगीत भर देती है झुलसी हुई पेड़ों एवं लताओं में हरीतिमा छा जाती है और कोयल तथा पपीहों के स्वर हृदय में आनन्द भर देते हैं। कवि ग्रामीण जीवन के इस आनन्द का अनुभव करता हुआ कहता है —

" गर्मी के मैदानों पर पुर्वी लहराई,
बादल उठे, आकाश भर गया इन मेलों में
परि बाजी बूंदें छूटीं सूखे ढेलों में
छिपी गमक फैली रिमझिम-रिमझिम धुन केवल
सुन पड़ती थी उन झुलसी झुलसी बेलों में
हुलसी हरियाली, फूलों के झोंप बांध दल
भेज गंध-संदेश खिले कोंची कोंची पर
उर में गूंजे कोयल और पपीहों के स्वर।"[2]

यद्यपि त्रिलोचन ने ग्रामीणों को भोला-भाला सीधा-सादा ही लिखा है किन्तु उन्हें उसमें कुछ जागृति भी दिखाई देती है। नेता लोग वोट मांगने जाते हैं। अशिक्षित ग्रामीण भी उनके व्यक्तित्व के प्रति कुछ सावधान लगते हैं। कुछ प्रश्नचिन्ह उठाते हैं और नेताओं की भूल-भुलैया के झूठे आश्वासन से सावधान हो गये हैं क्योंकि वे नेताओं की वायदा-खिलाफी एवं कोरे आश्वासन के ढोंग से परिचित हो चुके हैं। अब यह जान गये हैं

1- ताप के ताए हुए दिन, पृ0 68

2- उस जनपद का कवि हूं, पृ0 27

कि नेताओं की करनी और कथनी में बड़ा अन्तर होता है —

"कहा जियावन ने 'नेहरू जी वोट माँगने,
निकले हैं, अब बात नहीं वह पहले जैसी,
हथियारों से घिरे घिरे हैं, उन को ऐसी
क्या शंका है ....
× × × ×
पंख लगाकर कौवा फिर फिर मोर न होगा
एक बार हम लोगों ने भोगा सो भोगा।" [1]

ग्रामीण जीवन में दोपहर की झिलझिलाती धूप में पगडण्डियों से आमों की वाटिका का मार्ग कितना उष्ण हो जाता है और अमराई में पहुंच कर वहाँ कितना आनन्द आता है तथा पक कर डाल से गिरे हुए आम चूसने में कितना सुख मिलता है, इन सब बातों को गाता हुआ कवि कहता है —

"अयि-अयि करती दुपहरिया नाच रही थी
जलती हुई भौर सी गर्मी की पगडण्डी
मुझे ले गई आमों की बारी में की थी
नहीं अधिक की आशा पाकर छाया ठण्डी
आँख मूँद कर सोचा मन में स्वर्ग यही है,
तब तक देखा तुम को इस उस पेड़ के तले
आम बीनते × × ×
ढेसर आम खिलाकर पानी मुझे पिलाया
ये वे बातें फिर आना' कब मिला मिलाया।" [2]

ग्रामीण जीवन में तुलसी के रामचरित मानस का बड़ा प्रचार है। उसमें भी 'सुन्दरकाण्ड' विशेष जनप्रिय है। लोग उसे शौक से पढ़ते हैं, भले ही अर्थ का ज्ञान हो न हो। और

1- अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ0 66

2- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 57

थोड़ा बहुत अर्थ समझ में आता भी है, उस स्थल पर ग्रामीण विशेष आनन्द का अनुभव करते हैं —

"मैंने पोथी खोल ली/ पूछा, कहाँ पढ़ूँ
उसने कहा सुन्दर काण्ड
मैंने सांस चैन की ली
सुन्दर काण्ड कई बार पढ़ा था
पढ़ने को अर्थ कौन ढूँढ़ता
ध्वनि अपनी मुझे अच्छी लगती थी
जहाँ-जहाँ अर्थ झलक जाता था
वहाँ आनन्द मुझे मिलता था।"[1]

ग्रामीणों के मानस में द्वितीया के चन्द्र दर्शन का बड़ा महत्व है। ऐसी धारणा है कि 'दूज का चाँद' देखने से पूरा एक मास तक कल्याण रहता है। इस रूढ़िबद्धता को कवि ने इस प्रकार रेखांकित किया है —

"चाँद दूज का आए और अस्त हो जाए
हम दर्शन न करें, ऐसा तो आज तक कभी
नहीं हुआ है, वर्षा हो या बादल छाये
हों पश्चिम में चाँद दिखाई न दे बस तभी
क्रम टूटा है।"[2]

ग्रामीण दाम्पत्य जीवन साहचर्य और श्रम पर आधारित होता है जब कृषक बादलों के अभाव में भयंकर धूप से संतप्त होता है और हरी-हरी फसल मुरझाने लगती है तब पति-पत्नी मिलकर खेतों में पानी देते हैं। इस प्रकार ये स्वावलम्ब के आधार पर जीवन जीते हैं —

"आये न बहुत दिन बादल
होता नित घाम भयंकर

1- ताप के ताए हुए दिन पृ0 89
2- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 59

हरियाली रही न निर्मल
औ' लगी फसल मुरझाने
आखिर अपने बल ले कर
मिलकर वे दोनों प्राणी
दे रहे खेत में पानी।"[1]

त्रिलोचन अपने को वह बादल कहते हैं जिसका जल ग्रामीण क्षेत्रों में लोटने-लिपटने के लिए तरसता है वह ऊसर हो या बंजर, खेत हो या खलिहान, घर हो या आंगन, सबमें रम जाने के लिए उत्सुक है —

"टेढ़ी-मेढ़ी बाटों पर अपनी चालों में
लोट-लिपट कर रहने को मन तरस चुका है
ग्राम-नगरों- गिरि-उपत्यका-कांतारों में।
ऊसर-बंजर में- पलिहर में, खतियानों में
मेड़ों पर घर में, आंगन में, मैदानों में,
खिली कृषक के लास-हासमय उपहारों में,
बिजली के प्रकाश में, मेरी बौछारों में,
विविध गान उमड़े हैं, गूंजे है ध्यानों में।"[2]

कवि को ग्रामीण-जीवन की गहरी अनुभूति है। जाड़े के दिनों में गन्ने का रसपीना, हरे मटर की घुंघनी खाना और वहां बैठकर मनोविनोद करना, ग्रामीण जीवन का एक विशेष सुख है। कवि ने जिसका अनुभूतिमय चित्रण इस प्रकार किया है —

"बैठ धूप में हरी मटर की घुंघनी खाना,
जाड़े का आनन्द यही है रस गन्ने का
ताजा ताजा पीना कोल्हाड़ों में जाना
इन उन बातों से मन बहलाना, बनने का

1- धरती, पृ0 18
2- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 68

भाव न मन में आने देना, अवा-जाही
का तांता, रस का कड़ाह में पकना, झोंका
जाना गुलौर का, आलू ले कर मनचाही
संख्या में पकने के लिए पहुंचना, चोखा
*   *   *
छवि-छवि का जीवन है कुछ नया, अनोखा,
कहीं सरल विश्वास है, कहीं केवल धोखा।"[1]

ग्रामीण लोगों का पत्र व्यवहार भी कितना स्वाभाविक और यथार्थ होता है। इसकी झलक 'परदेसी के नाम पत्र' शीर्षक कविता में कवि ने प्रस्तुत करने की चेष्टा की है–

"वह जो अमोला तुमने धरा था द्वार पर
अब बड़ा हो गया है, खूब घनी
छाया है मोरों की बहार है। सुकाल
ऐसा ही रहा तो फल अच्छे आएंगे।"[2]

ग्रामीण लोगों की भूख भी बहुत अधिक होती है जब वे जमकर खाने बैठते हैं तो डेढ़ पसेरी तक खा जाना उनके लिए कोई असम्भव नहीं होता, कभी-कभी तो यहाँ तक स्थिति आ जाती है कि चावल की रोटी भी खिलानी पड़ती है। इस यथार्थ का चित्रण करना बिना अनुभूति के असम्भव है। किन्तु त्रिलोचन के लिए यह पूर्णतः सम्भव है –

"ससुराल के सुजन एक आ पड़े,
चिंता हुई, बहुत खाते थे, डेढ़ पसेरी
चावल राधा गया, पुराना, साफ करअड़े
रहे दी गई लिट्टी, चल कर उठे न देरी
की, बाबा बोले, बस एतनइ, कुछ अवरउ खा,
रखा देखा चउरेउ कइ रोटी कइसनि आ।"[3]

1- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 74
2- अरधान, पृ0 74
3- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 9।

इस कविता मेंकवि ने ग्रामीण जीवन में आर्थिक वैषम्य की व्यंग्यात्मक स्थिति का चित्र खींचा है। ग्रामीणों के घर में अतिथि बहुत आते हैं और उनमें भी कोई-कोई तो पूरा चौका साफ कर जाते हैं। फिर भी तृप्ति नहीं होती। यहाँ तक कि जब गेहूँ का आटा समाप्त हो जाता है तब चावल के आटे की रोटियाँ बनाने के लिए विवश होना पड़ता है किन्तु अतिथि- सेवा तो की ही जाती है। इस चित्रण में ग्रामीण जीवन की तीन विशेषतायें उभरकर सामने आती है। (1) अतिथियों की भरमार (2) अर्थाभाव (3) अत्यधिक भोजन कर्ताओं की समस्या।

इस प्रकार कवि ने ग्रामीण-जीवन के विविध चित्र खींचे हैं। जाति-प्रथा, ऊँच-नीच का भेद ग्रामीण अत्याचार, आर्थिक दैन्य, कृषक जीवन का आनन्द, ग्रामीण अशिक्षा का वातावरण, रूढ़ि-बद्ध-जीवन तथा अन्य अनेक ग्रामीण-समस्यायें त्रिलोचन के काव्य का विषय बन गयी हैं, इससे इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि त्रिलोचन मूलतः ग्रामीण-जीवन के कवि हैं। ग्रामीणों का दुःखदर्द उनकी नस-नस में समाया हुआ है। वे उनके सुख में सुखी होते हैं और दुख में दुःखी। ग्रामीण जीवन का कोई ऐसा कोना नहीं है जिसका उन्होंने भली भाँति निरीक्षण न किया हो उनका 'अमोला' शीर्षक विशाल काव्य संग्रह ग्रामीण-जीवन की अनुभूतियों से परिपूर्ण है। ऐसा लगता है कि त्रिलोचन अपने ग्रामीण चित्रण में गरीब किसानों के पसीने से भरे सीने से लगकर उन्हें प्यार देते हैं, उनके श्रमशील शरीर को थपथपाकर पुनः कार्य करने के लिए नई चेतना देते हैं। वे उनके आँसुओं को पोंछकर खेतों और खलिहानों में ले जाते हैं और प्रकृति की मनोरम छटा दिखलाकर उनके मन मयूर को आह्लादित करके नृत्य करने की प्रेरणा देते हैं।

नागरिक जीवन :—

त्रिलोचन के काव्य में ग्रामीण जीवन का प्राधान्य है किन्तु नागरिक जीवन उनकी सफल लेखनी से अछूता नहीं रहा। उन्होंने अनेक स्थलों पर नागरिक समाज के यथार्थ चित्र अंकित किये हैं। कहीं पर मशीनों में काम करने वाले मज - दूरों की दुर्व्यवस्था, कहीं पर भीड़ का अकेलापन, कहीं पर पारस्परिक उदासीनता आदि के वैभव्यपूर्ण चित्र मिल जाते हैं। यथा —

"मानव है इतने सारे
क्यों ये असहाय हुए
अलग-अलग हारे।"[1]

यहाँ पर कवि ने नागरिक जीवन में व्याप्त उस विसंगति का चित्रण किया है जहाँ पर मनुष्य तो बहुत रहते हैं किन्तु वे इतने अधिक स्वार्थी है कि वे अपने-अपने ही स्वार्थ में लिप्त होने के कारण किसी दूसरे से लगाव नहीं रखते। उनके हृदय में करूणा, मैत्री, दया आदि मानवीय भावों का स्रोत सूख सा गया है, व्यक्ति-व्यक्ति का यह बिखराव कवि को असहनीय है। इसलिए उसके हृदय में इस बिखराव पर एक सहज प्रश्न उत्पन्न होकर उसके मानस को रह-रह कर कुरेदने लगता है जिसकी अभिव्यक्ति कवि ने ऊपर की पंक्तियों में की है। इसी भावना की अभिव्यक्ति निम्न - लिखित कविता में भी दृष्टव्य है —

"आजकल के ढंग ही विचित्र हैं
हमारे घर/जितने निकट-निकट होते हैं
उतने ही दूर-दूर
हमारे मन / होते हैं / यानी लगे हुए हम
कितने अलग-अलग हैं।"[2]

1- ताप के ताए हुए दिन, पृ0 36
2- वही, पृ0 78

उक्त पंक्तियों में भी कवि ने इसी बात का प्रदर्शन किया है कि नगरों में व्यक्तियों के घर तो पास-पास होते हैं लेकिन उनके मन एक दूसरे से दूर होते हैं। और यह मन की दूरी कवि को खलती है। सम्भवतः इसका कारण लोगों की अहमन्यता है। कोई व्यक्ति अपने को किसी से कम नहीं समझता यह थोथा दम्भ ही व्यक्ति-व्यक्ति की दूरी का कारण बना हुआ है। इसी के कारण पारस्परिक सहयोग का अभाव है। यहाँ तक की महानगरों में तो किसी की मृत्यु हो जाने पर रोने के लिए किराये के व्यक्ति बुलाये जाते हैं। इस प्रकार कवि ने शहरी संस्कृति के घिनौने एवं अमानवीय रूप का यथार्थ चित्र अंकित किया है।

नगरों की जनसंख्या इतनी अधिक है, जहाँ पर लोग एक-एक कमरे में निवाह करते हैं। यदि कोई अतिथि आ जाए तो उसके लिए स्थान कहाँ? इस व्यथा का चित्रण कवि ने इस प्रकार किया है —

"कमरा एक और रहने वाले तीन
पत्नी बच्चा और मैं
चौथे की गुंजाइश यहाँ नहीं
मेरी अनकही चिन्ता
मेरी विथा बना की।"[1]

यह है नागरिक जीवन की भीषण समस्या जो ग्राम्य जीवन में कहीं नहीं मिलती।

नागरिक जीवन में लोग राजनेताओं को जानते हैं किन्तु विद्वानों एवं कवियों को नहीं। क्योंकि नेताओं से उनके काम बनते हैं। वे द्वार-द्वार पर वोट की भीख माँगने पहुँचते हैं, इनकी तुलना में उन्हें कवियों या साहित्यकारों से

1- तुम्हें सौंपता हूँ, पृ0 82

क्या लेना देना है। अतः बड़े से बड़े साहित्यकार को भी उसके सम्पर्क वालों को छोड़कर कोई नहीं जानता। नगरों में तो लोग जानते हैं बड़े-बड़े पूंजीपतियों को प्रसिद्ध गुण्डों को अथवा कूटनीतिज्ञ राजनेताओं को। इसी विसंगति को अभिव्यक्त करता हुआ कवि कहता है —

"आज का भरतपुर
राजबहादुर को जानता है
कवि विजेन्द्र को नहीं
प्रोफेसर विजेन्द्र को
छात्रों के अलावा
कुछ और लोग जानते हैं।"[1]

'चित्रा जाम्बोरकर' इस विस्तृत कविता का सम्पूर्ण विषय नागरिक-जीवन पर ही आधारित है। छोटे-छोटे बच्चे बड़ों से बेझिझक हाथ पकड़ कर 'शेकहैण्ड' किया करते हैं। भले ही अभी उनका अध्ययन इस स्तर तक न पहुँचा हो लेकिन नागरिक वातावरण ही उन्हें सभ्यता का यह संस्कार सिखा देता है। भले ही यह शिष्टाचार बाह्य हो किन्तु देखने में तो अच्छा लगता ही है। इस बात का उल्लेख करके कवि ने नगर की कृत्रिम सभ्यता पर व्यंग्य किया है —

"नन्हें-नन्हें हाथों ने
पकड़ लिया मेरा हाथ
और शेकहैण्ड' किया।"[2]

कवि कल-कारखानों में काम करने वाले मजदूरों के महत्व को भली-भांति समझता है। वह कहता है कि मजदूरों के इन्हीं खुरदरे हाथों से नागरिक सभ्यता पनपती है।

1- तुम्हें सौंपता हूँ, पृ0 103

2- ताप के ताए हुए दिन, पृ0 77

"जब तुम किसी बड़े या छोटे कारखाने में
कभी काम करते हो किसी भी पद पर
तब मैं तुम्हारे इस काम का महत्व खूब जानता हूँ
और ये भी जानता हूँ -- मानव की सभ्यता
तुम्हारे ही खुरदरे हाथों में नया रूप पाती है।"[1]

बड़े नगरों में 'काफी हाउस' या रेस्त्रां में बैठकर अनेक कवि और साहित्यकार तरह-तरह की बातें करते हैं। कभी हास कभी व्यंग्य, विनोद, कभी जनता की बात कभी राजनीति, कभी किसी की बात, कभी आपसी खींचन्तानी और मिलकर भी आपस में मन से बिलगाव, यही तो है इलाहाबाद जैसे महानगर की नागरिक तथा साहित्य कारों की सभ्यतामयी जिन्दगी, जिसको कवि ने इस प्रकार बेनकाब किया है --

"काफी रेस्त्रां में हिलमिलकर बैठे, बातें
की, कुछ व्यंग्य-विनोद और कुछ नए ठहाके,
लहरों में लिए दिए, अपनी-अपनी घातें
रहे ताकते यों भीतर-भीतर मन दो के
एक न हुए, समीप टिके, अपनापा खो के,
जीवन से अनजान रहे, पर गाना गाया
जन का जीवन का लेकिन दुनियां के ही के
दुनिया में न रहे, दुनिया को बुरा बताया।"[2]

जहाँ एक ओर कवि ने नागरिक-समस्याओं और उसकी विविधताओं का चित्रण किया है, वहीं वह नगर के सौन्दर्य चित्रण में भी जागरूक है। 'कोहरे' में भोपाल' शीर्षक सानेट में सर्दी के समय भोपाल के सौन्दर्य का चित्रण करता हुआ कवि कहता है --

"ठंडक जैसी भी हो, बहला जा सकता है
बड़े मजे से, सड़कों पर भी कुहरा छाया

1- ताप के ताए हुए दिन, पृ० 60

2- अरधान, पृ० 65

है, भौपाल रूप क्या ऐसा पा सकता है?
जब चौड़ पुल पास बन गंगा का आया।
कुहरे का घाटी से उठ-उठ कर लहराना,
सर्दी का है अपनी विजय ध्वजा फहराना।"[1]

नगर में मजदूरों का जीवन बड़ा संकटमय होता है। दिनभर मशीनों में काम करने के बाद घर आना कमाई का हिसाब जोड़ना, चित्त में उच्चाटन होना, सूखी रोटी खाकर सो जाना, यही जीवन होता है। नौकरी की चिन्ता, बराबर बनी रहती है आर्थिक तंगी के कारण चित्त परेशान रहता है। नित्य कमाना और खर्च करना लगा रहता है, धन नहीं जुड़ पाता। इस बात का उल्लेख त्रिलोचन ने अपनी अनुभूति के आधार पर ही किया है —

"पूरे दिन मशीन पर खटना,
बासे पर आकर पड़ जाना और कमाई
का हिसाब जोड़ना, बराबर चित्त उचटना
इस - उस पर मन दौड़ाना फिर उठ कर रोटी,
करना, कभी नमक से कभी साग से खाना।"[2]

नगरों में जब कहीं किसी बड़े आदमी के यहां पुत्र जन्म होताहै, तब आनन्द और उत्साह मनाने की अलग परम्परा है। कहीं तो वेश्याओं का नृत्य होता है जिसमें हजारों रुपये न्योछावर कर दिये जाते हैं और कहीं कवि सम्मेलन का आयोजन किया जाता है जिसमें कवियों की विदायी का शुल्क पहले से ही तय हो जाता है। इस यथार्थ पर कवि ने करारा व्यंग्य कियाहै —

"पुत्र शाह के हुआ, महाकवि गए बुलाए,
कहा गया, तकलीफ आप को दी है, अपना

1- ताप के ताए हुए दिन, पृ० 55   2- उस जनपद का कवि हूं, पृ०46

जान मान कर, अवसर ही ऐसा है, सपना
सत्य हुआ है, कहिए कृपया जैसे आए,
कैसे क्या क्या करें, सेठ जी तो वेश्यायें
बुला रहे हैं, बीस हजार का बजट है ...।"[1]

नगर के बालक बड़े ही जागरूक होते हैं और उनके बौद्धिक प्रश्न में बड़े से बड़े साहित्यकार को भी असमंजस में डाल देते हैं। त्रिलोचन ने इस बात को 'अरधान' संग्रह की 'अनुकथन' शीर्षक कविता में व्यक्त किया है —'दिल्ली में कवि शमशेर रहते हैं। जिसमें भाषा और अनुराग नामक एक बालिका और एक बालक अपने घर में साहित्यकारों का जमघट देखते हैं और सबके चले जाने पर भाषा नामक बालिका प्रश्न करती है —

"वह जो उधर बैठे थे
उनका पेट / कोट से बाहर क्यों
निकल आया करता था।"[2]

जब त्रिलोचन इसका उत्तर देते हैं कि जो सुखी होते हैं उनका पेट बाहर को होता है तब पुनः बालिका पूछती है —

"आपका पेट तो वैसा नहीं है'

उत्तर में कवि ने कहा —" मैं सुखी नहीं हूँ'

इस प्रकार का अनुकथन यह सिद्ध करता है कि नगरों के बालक बालिकायें बड़े तार्किक होती हैं। उत्तर-प्रत्युत्तर में वे बड़े कुशल होते हैं और उनके प्रश्नों का उत्तर सहज में ही नहीं दिया जा सकता है।

इस प्रकार त्रिलोचन ने अपनी रचनाओं में नागरिक जीवन के विभिन्न रूपों को चित्रित किया है उनकी अच्छाइयों और बुराइयों का चित्रण करने में उन्होंने यथार्थवादी दृष्टि अपनाई है।

1- अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ0 4। 2- अरधान, पृ0 69

अन्य मानवीय भावनाएँ :—

त्रिलोचन ने यथार्थ के साथ ही साथ विभिन्न मानवीय भावनाओं को अपने काव्य के माध्यम से प्रस्तुत किया है। यहाँ पर कतिपय मानवीय भाव - नाओं का उल्लेख किया जा रहा है जो कवि की भावुकता को प्रमाणित करती है—

आर्थिक दैन्य :—

समाज में व्यक्ति आर्थिक दैन्य से त्रस्त है। वह व्यक्ति जिसके पास पैसा नहीं है घर के बाल-बच्चों के अभिलाषाओं की पूर्ति कैसे कर सकता है। वह बाजार में सजी हुई वस्तुओं को देखकर भी खरीद नहीं सकता। यह उसकी लाचारी है। कवि ने इसी सामाजिक दैन्य को अपने ही ऊपर घटित करते हुए लिखा है —

"विदा किया तब कहा कि यह लाना वह लाना,
लौटे आया और हाथ दोनों हैं खाली,
सजी खूब थी हाट, मगर मुश्किल था पाना
पैसों बिना जानती हो, मुझको खुशहाली
जैसे यहाँ वहाँ भी न थी — क्या वही कह दूँ
कितनी ठेस लगेगी उस को अपने मन में
क्या-क्या सोचे बैठें होगी, कैसे वह दूँ
बाँध बात से ऐसे भी मनुष्य है जन्मे
दुनिया में जिनको दुर्लभ है कानी कौड़ी।"[1]

जीवन दर्शन :—

त्रिलोचन जीवन के विषय में विचार करते हुए कहते हैं कि यहाँ पर शाप और वरदान दोनों हैं किन्तु दुःख का प्राधान्य है और वो उसे घर के मेहमान की भाँति निकालना नहीं चाहते। अतः दुख के स्वागत में डूबकर इस प्रकार अपनी बात कहते हैं —

1- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 42

"अजब जिन्दगी है अजब जान भी है
अगर शाप है यह तो वरदान भी है
तुम्हें मर्म की बात आओ बताएँ
कहाँ सुख अगर दुःख का ध्यान भी है
निकालूँ तो मैं दुख को कैसे निकालूँ
भले घर में आया है मेहमान भी है।"[1]

कवि जब देखता है कि संसार में पीड़ा की कमी नहीं है और वह अनिवार्य रूप से आति है, उसका सामना करना ही पड़ता है, वह उसे गंगा के समान मानकर शिरोधार्य करता है —

"हाँ अभिमान मुझे है, किसका है, पीड़ा का
पीड़ा की गंगा जब मेरे ऊपर आई,
असावधान नहीं था, उद्यत था, दिखलाई
दी तो झेल लिया सिर पर, मैंने क्रीड़ा का ....।"[2]

आज जिसे देखिए वही हर्ष, शांति और आनन्द की खोज में भटक रहा है। किन्तु उन्हीं के पीछे संघर्ष होता है। इसी विषय में कवि चिन्तित होकर भावुकता के स्वर में कहता है —"हर्ष शान्ति आनन्द कौन है जिसे न प्रिय हो
इसे ढूँढ़ते हुए लोग टकरा जाते हैं
एक दूसरे से, संघर्षों में सक्रिय हो
मारू राग संघटित होहोकर गाते हैं
क्या विनाश से भी सम्भव होती है रचना
आखिर क्यों विनाश-साधक उद्योग बढ़े हैं।"[3]

1- गुलाब और बुलबुल, पृ0 112
2- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 85
3- तुम्हें सौंपता हूँ, पृ0 91

वर्तमान समस्यायें :—

कवि वर्तमान समस्याओं के प्रति भी जागरूक है आज वनों की अंधाधुंध कटाई हो रही है। उनके संरक्षण पर ढीला-ढाली है। ईंधन की बड़ी समस्या उत्पन्न हो गयी है और जो वृक्ष बचे हुए हैं उन पर सरकारी नियंत्रण है। इस कारण सामान्य जन-जीवन छटपटा रहा है। इस स्थिति के विषय में कवि का भावुक मन निम्नलिखित पंक्तियाँ लिखने के लिए बाध्य हो जाताहै—

"वैसे हम बनराज कहे जाते हैं, बन का
नाम बचा है रखरखाव को ढकुलाही है,
वनसपती माई है जो आवाजाही है
साँसों की अब काज बूत अपना ईंधन का
नहीं रहा, टहनी-टहनी पर अब जन-जन का
नाम लिखा है आठ पहर की आगाही है,
क्या मजाल जो कोई छू दे ......।"[1]

निद्रा का महत्व :—

नींद के विषय में भी कवि की बड़ी सुन्दर धारणा है। वह समझता है कि यह निद्रा दुखित हृदय को शान्ति देतीहै। एकाकी का साथ देती है घायलों को त्राण देती है और निराश मन में आशा का संचार करती है। वस्तुतः यदि हम नींद को जीवन की अक्षय परिभाषा कहें तो अतिशयोक्ति न होगी —

"नींद विकल संतप्त जनों की शीतल छाया,
चिर एकाकी की सहचरी और घायल की
मरहम-पट्टी, व्याकुल की हताश की आशा,
लूले-लँगड़े की निर्बाध बलवती काया,
स्वप्न-विनिर्मित परम रम्य रेखा पल-पल की,
नींद कहा है, जीवन की अक्षत परिभाषा।"[2]

1- उस जनपद का कवि हूँ, पृ० 98   2- उस जनपद का कवि हूँ, पृ०99

सूक्ति-सुधा :—

त्रिलोचन अपने जीवन की अनुभूतियों को बड़े यत्न के साथ सीधे-सादे शब्दों में व्यक्त करते हैं जिनमें उनके विचार भावुकता को साथ लेकर व्यक्त हुए हैं। उनके 'अमोला' शीर्षक काव्य संग्रह में तो इस प्रकार की भाव- भावित उक्तियाँ भरी पड़ी हैं। कतिपय उदाहरणों से मैं अपने इस कथन को सिद्ध करूँगी -

"जेकर तपता बरा कबहुँ धधोर
अब केउ चितवत नाहीं तेकरी ओर"[1]

अर्थात् जिसके द्वार पर कभी लोगोंके तापने के लिए धधर जलता था अब(धधर जल चुकने के बाद) उस व्यक्ति की ओर देखता तक नहीं। यहाँ पर कवि ने परि-स्थिति परिवर्तन की ओर संकेत किया है। इसी बात को किसी एक अन्य कवि ने भी — '(दिनन के फेर ते सुमेर होत माटी के) इस रूप में कहा है। गिरधर कवि ने भी यही बात दोहरायी है —

"साईं या संसार में मतलब का व्यवहार
जब लग पैसा गाँठ में तबलग ताको यार
तब लग ताको यार यार संग ही संग डोले
पैसा रहा न पास यार मुख से न बोले।"[2]

मनुष्य को सबसे हिलमिल कर जीवन- जीना चाहिए। यदि वह ऐसा नहीं करता तो दूसरे की खुशामद करते ही दिन बीतते हैं।

"जेकर तेकर होइके जिअइ न आइ।
आनइ कइ फुसरी फोरत दिन जाइ।"[3]

1- अमोला, पृ0 4।
2- गिरधर की कुण्डलियाँ, संग्रह से उद्धृत
3- अमोला, पृ0 42

इधर उधर अपने दुख रोने से वह और अधिक बढ़ता है और उसके अधिक बढ़ जाने से मन अधिक अशान्त हो जाता है। वह प्रयत्न करने पर भी शान्त नहीं होता।

"दुखड़ा रोए रहर ओहर उधिराइ
उधिराने मन थाम्हे नाई थम्हाइ।"[1]

इसी, प्रकार कवि ने अपने अनुभव को बतलाते हुए लिखा है कि मनुष्य को किसी न किसी काम में सदैव अपने को व्यस्त रखना चाहिए क्योंकि अकेले निष्क्रिय रहने से मन विश्रामले लेता है –

"अकेले से मन पाइ जाइ विसराम
हाथे राखिइ हरदम कओनउ काम।"[2]

देश-प्रेम —

त्रिलोचन जी ने देशप्रेम और राष्ट्रीयता के स्वर में अपनी ओजस्वी वाणी से इस प्रकार हमारे नवयुवकों को ललकारा है –

"समय नहीं यह फिर आएगा
तुम्हें प्रशान्त पुकार रहा है
वे पहाड़ ललकार रहे हैं
उठो, तुम्हारे, घाव तुम्हारे
गरज गरज धिक्काररहे हैं
उठो गरज कर देशवासियों,
आज देश का मान बचाओ।"[3]

इसी प्रकार अन्य अनेक भाव कवि की लेखनी से उतरे हैं जोहमें जीवन की दिशा दे सकते हैं। मानव के लिए पथ-प्रदर्शक बन सकते हैं। यहाँ उन सबका उल्लेख

1- अमोला पृष्ठ 42
2- वही, पृ0 42
3- तुम्हें सौंपता हूँ, पृ0 127

करना सम्भव नहीं है। अतः निदर्शन मात्र के लिए त्रिलोचन की कुछ मानवीय भावनाओं को दिखलाने का प्रयास किया गया है। जिस कवि ने जीवन में आस्था रखकर जीवन जिया हो, संघर्षों से झेला हो और गिर-गिर कर उठने का प्रयास किया हो, ऐसे शक्तिशाली कवि त्रिलोचन के भावों का सर्वेक्षण करना सरल कार्य नहीं है। निश्चित रूप से वे महान हैं और उसी प्रकार उनके विचार और भाव भीमहान हैं।

विभिन्न दृश्य और वस्तुचित्रण :—

त्रिलोचन की काव्य कृतियों में विभिन्न दृश्यों एवं वस्तु चित्रणों की कमी नहीं है। वे जिसका दृश्य चित्रित करते हैं उसमें भी कोई विशेषता होती है, जिसका मानव जीवन से घनिष्ट सम्बन्ध होता है। इसी प्रकार उनका वस्तु चित्रण किसी उद्देश्य विशेष को ही लेकर चलता है। यथा —

"भीषण कमी अन्न की, बलात्कार की अनुदिन
बढ़ने वाली गाथाएँ, हत्यायें डाके,
चोरी रिश्वतखोरी, कोई बुरा न ताके
राम राज्य है, राम राज्य ही बढ़ती के दिन।"[1]

यहाँ पर कवि ने भारत के प्रजातंत्र का व्यंग्यात्मक चित्रण प्रस्तुत किया है। गाँधी जी स्वराज्य को रामराज्य बनाने का स्वप्न देखा करते थे, किन्तु आज हमारे देश में, हमारे समाज में कितनी विषमता है कवि ने इसका नग्न रूप प्रस्तुत किया है। जो यथार्थ की दृष्टि से अत्यन्त सराहनीय है।

वस्तु चित्रण के क्षेत्र में कवि केवल स्थूल वस्तु पर ही अपना ध्यान केन्द्रित नहीं करता वह सूक्ष्मता पर भी उतर आता है और अमूर्त को मूर्त रूप

1- अनकहनी भीकुछ कहनी है, पृ० 37

देता हुआ उसकी विशेषताओं को रेखांकित करता है। उदाहरणार्थ — दुःख के विषय में कवि का निम्नलिखित कथन सूक्ष्म वस्तु चित्रण का उत्तम उदाहरण है—

"दुःख यों कोई चीज नहीं है, मन की छाया
है, लेकिन पैरों पर लेटे रहना इस की
प्रकृति नहीं है सिर पर चढ़ जाता है जिसकी
शामत आई, वही करा लेता है, आया।[1]

जब कभी कवि प्रकृति का दृश्य उतारता है तब हमें उसकी चित्रकारिता पर आश्चर्य लगता है। जैसा कि निम्नलिखित उद्धरण से सिद्ध होता है —

"चाँदनी रात है, सन्नाटा है, बैठा हूँ
गंगा के तट पर, धारा बहती जारी है
अविराम, भाव के अतल सिंधु में पैठा हूँ
नीरव, निश्चल, यह हवा कहाँ से आती है
जो अपनी लहरों से तन को छू जाती है
खेलती हुई किस ओर, कौन कह सकता है?'[2]

यहाँ पर कवि ने चित्रात्मक-शैली में गंगा के तट पर दृश्यमान वातावरण का कितना सुन्दर चित्र उतारा है।

कवि ने राजघाट में बंधे हुए गंगा के पुल को देखा है। उसकी विशेषताओं को अपनी लेखनी से उतारता हुआ उसे मनुष्य का विजय चिन्ह समझता है। वस्तु चित्रण की शैली में मानव की इस चमत्कार पूर्ण कृति का चित्रण इस प्रकार किया गया है —

"सप्त बालचंद्री आयस पुल राजघाट का
सात फलांगों में गंगा को पार कर गया

1- अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ0 37

2- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 47

नग्न बालचट्टो में स्तंभन शक्ति भर गया
सरल स्तंभ-क्रम जिस पर संगत कर्ण-ठाट का
दुहरा टेक लगा है कटि पर और पाट का
प्रखर वेग देखता रहा है तेज झर गया,
अद्रिभेदिनी धारा का आह्वान स्वर गया,
यह मनुष्य का विजय-चिन्ह है।"[1]

इसी प्रकार 'नगई महरा' शीर्षक कविता में कवि ने नगई कहार का जो चित्र खींचा है, वह दलित वर्ग के पूरे समाज का चित्र है। यथा —

"चौकीदार ने पुकारा /नगई और लखमनी
दोनों हाथ जोड़े सिर झुकाए हाजिर हुए
फिर उसका दोस बतला कर पूछा गया
अपने दोस मानते हो/मानते हैं — दोनों ने साथ कहा
पूछा गया, डाँड-बाँध तुमको मंजूर है
सिर माथे हमको मंजूर है/ दोनों बोले।'[2]

वस्तुचित्रण में त्रिलोचन की दृष्टि बड़ी पैनी है। एक गगनचुम्बी प्रासाद का चित्रण प्रस्तुत है जिसके अन्दर जीवन बोल रहा है —

"अभ्रंकष प्रासाद, निरुद्ध कक्ष, दीवारें
उठी हुई पृथ्वी की आत्मा सी, धौमण्डल
से झरते तम के कण अविरल, किसे पुकारें
आँखें, काँप रहा दीपक का ज्योतिर्मंडल
मंडल के भीतर विशाल परछाईं चंचल
तरकारी काटती कुलवधु शील की धनी
बच्चा जगा, दूध माँगा, रो-रो कर हलचल
कर दी, प्यार दुलार नींद से बात फिर बनी।"[3]

1- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 71   2- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 70
2- ताप के ताये हुए दिन, पृ0 76

त्रिलोचन जी चुनाव के समय नेताओं की गतिविधियों का बड़ा ही सजीव और व्यंग्यात्मक वस्तुचित्रण प्रस्तुत करते हैं जो यथार्थ की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण लगता है। यथा —

"इलायची से बसा हुआ रूमाललगाया
आँखों पर कि बह चले आँसू और साथ ही
नाम किसान मजूर का लिया और हाथ ही
नया दिखाया नेता ने स्वर नया जगाया
उसी पुराने गले से, चकित थे सब श्रोता
कैसे शेर बन गया बिल्ली, कौन बात थी।"[1]

जब कभी त्रिलोचन अपने वाह्य व्यक्तित्व का चित्रण करते हैं तब यथार्थ अपने नग्न रूप में प्रस्तुत होता है। यथा —

"चीर भरा पाजामा, लट्-लट कर गलने से
छेदों वाला कुर्ता, रूखे बाल, उपेक्षित
दाढ़ी-मूँछ, सफाई कुछ भी नहीं, अपेक्षित
यह था वह था, कौन रुके ठहरे, ढलने से
पथ पर फुर्ति कहाँ, सभा हो या सूनापन
अथवा भरी सड़क हो जन जीवन प्रवाह से,
झिझक कहीं भी नहीं, कहीभी समुत्साह से
जाता है, दीनता देह से लिपटी है, मन
तो अदीन है ......।"[2]

यहाँ पर कवि ने अपने वाह्य व्यक्तित्व एवं अन्तर्व्यक्तित्व को कितनी कुशलता के साथ चित्रित किया है। वाह्य व्यक्तित्व जितना अनाकर्षक है अन्तर्व्यक्तित्व उतना ही आकर्षक है। कवि का स्वाभिमान उसकी निर्भीकता और मनस्विता शब्दों से फूट-फूट

1- ताप के तापे हुए दिन, पृ0 76

2- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 12

पड़ती है। इसे हम रेखाचित्र का भी उत्कृष्ट उदाहरण कह सकते हैं और बिम्ब-विधान तो है ही।

कवि ने गम्भीर विषयों को भी व्यङ्ग्यात्मक शैली में प्रस्तुत करने के लिए वस्तुविधान की प्रक्रिया अपनाई है। प्रेम क्या है? इसके विषय में नये ढंग से विचार प्रस्तुत करता हुआ कवि कहता है —

"प्रेम कुछ नहीं है, पैसा है, पैसे वाला
प्रेमी है, उदार है, सुंदर है, दानी है,
प्रेम हृदय का धन है, कोई पीने वाला
हो ऐसा कह सकता है, यह नादानी है।
× × ×
प्रेम पुराना पागलपन है।[1]

यहाँ पर कवि ने प्रेम जैसी सूक्ष्म वस्तु का व्यङ्ग्यात्मक-चित्रण प्रस्तुत किया है जो अ अपने में अत्याधुनिक लगता है। इस चित्रण में भी कवि की व्यङ्ग्य दृष्टि अपना अस्तित्व सिद्ध करती है।

त्रिलोचन का काशी से निकटतम सम्बन्ध रहा है। इसलिए 'अनकहनी भी कुछ कहनीहै' कविता संग्रह के पृष्ठ 68, 71, 72, 73 में उसकी अच्छाइयों और बुराइयों को वस्तु परक शैली में चित्रित किया गया है। कवि ने यहाँ भी अपने व्यङ्ग्य के तीर को सजग रखा है जिससे यह वस्तु चित्रण यथार्थ की भावभूमि पर सजीव हो उठा है। यथा —

"कहाँ कमी है, इधर विश्वविद्यालय सुंदर
हरा भरा है, उधर दालमण्डी की शोभा
रात चौगुनी होती है, रसिकों का लोभा
हुआ हृदय ही जान सका है निशि के अंदर
भले बुरे-गुण्डे सज्जन, सब यहाँ पड़े हैं,

1- अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ0 53

शव हिंदु के जले मुसलमान के गड़े हैं।"[1]

इसके अतिरिक्त कभी उन्हें काशी गाँव कीतरह लगती है क्योंकि यहाँ नागरिक दुष्प्रभाव कम से कम है। चोरी-डाके भी कम होते हैं। जन जीवन मस्ती का है। जिसकी तुलना में तीर्थराज 'प्रयाग' भी कुछ नहीं है।[2] कबीर और तुलसी भी काशी को अपनी साधना-भूमि बना कर अमर हो गये।' वे काशी के अंधभक्त नहीं वे ये भी कहते हैं कि काशी में अब केवल कुजड़े ही बचे हैं।[3] कभी कहते हैं कि काशीपुरी पवित्र है। इसलिए यहाँ दुनियाँ भर की गंदगी एकत्र मिल जाती है और छोर-छोर के पापी यहाँ आकर बस जाते हैं। नगर निगम निष्कर्म है। उसके सदस्य अपनी जेबें भरते हैं। यह है काशी की स्थिति।'[4]

वस्तु-चित्रण के क्षेत्र में त्रिलोचन कभी व्यास-शैली अपनाते हैं तो कभी समास-शैली। उदाहरणार्थ – शरद कालीन तालाब का चित्रण करतेहुए लिखते हैं—

"शरत् का प्रसन्न ताल
जिस में लहरें भी नहीं भीतर मछलियाँ कुछ करती हैं
जब तब पानी के ऊपर आ जाती हैं।"[5]

आँधी के आतंक का चित्रण करने में भी उनकी कला खरी उतरती है। इसको दृश्य विधान कहें या वस्तुवर्णन दोनों ही दृष्टियों से यह वर्णन महत्वपूर्ण लगता है।

"उखाड़ा पेड़ों को पटक कर आगे बढ़ चली
कुटीरों को थामें उखाड़ कर से दूर पटका
खिले फूलों को भी मह कर चली और खिर के
पड़े बेचारे से आदिन अपना देख कर यों।'[6]

इसी प्रकार 'चैती' शीर्षक संग्रह में 'आषाढ़' 'रजनीगंधा' 'कार्तिक का पयान' 'मधुमालती' 'बसन्त' 'पयोद और धरणी' और 'सारनाथ' जैसी कविताओं में वस्तु

1- अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ० 68
2- वही, पृ० 71
3- वही, पृ० 72
4- अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ०73
5- अरधान, पृ० 11
6- वही, पृ० 14

चित्रण की सजीवता चित्र को बरबस अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। यथा —

"फूले हैं पलाश वैजयंती, कचनार, आम, चिलबिल अब
झंखड़ हैं पीपल- शिरीष, नीम का भी यही हाल है
बाँसों की पत्तियाँ हरियाली तज रही हैं। जल्दी
ही उन्हें अलग होना है।" [1]

कवि की दृष्टि में मनुष्य हो चाहे पशु पक्षी, चर हो या अचर, मूर्त हो या अमूर्त सभी के चित्र स्पष्ट है। उन्हें वह मन चाहे शब्दों में जिस शैली में चाहे उस शैली में उतार देता है। एक गौरैया चिड़िया की मस्ती भरी जीवनी उसकी कर्मठता को और उसकी स्फूर्ति को चित्रांकित करता हुआ कवि कहता है —

"नन्ही सी गौरैया अपना चारा चुनती
फिरती है भोर से साँझ तक, आया जाया
करती है नीड़ की राह में, चूँ-चूँ गाया
करती है, तिनके रेशे चुन-चुन कर बुनती
है खोता, फिर चुप रह कर मानों वह सुनती
है सलाह जीवन की क्या क्या अभी न आया
जिस के बिना अधूरा है सब।" [2]

बाढ़ की विभीषिका भी बहुत भयंकर होती है। पृथ्वी गल जाती है पेड़ों की जड़े ढीली हो जाती है। पशु पक्षियों की दुर्दशा हो जाती है। घरों की दीवारें गिरने लगती हैं। सब जगह पानी ही पानी हो जाता है। लोग ऊँचे स्थानों में शरण लेते हैं। कवि ने इस दुर्दिन का रोमांचक चित्रण वस्तु परक शैली में वर्णन किया है —

"सुनते हैं, उत्तर की ओर, रामपुर में
पानी पैठ गया है

1- चैती, पृ0 48

2- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 102

लोग ऊँची जगहों में जा-जाकर ठहरे हैं
कुछ पेड़ों पर चढ़े
इधर-उधर देखते हैं
वर्षा का तार अभी नहीं थमा
यह कैसा दुर्दिन है।"[1]

'अरघान' शीर्षक काव्य संग्रह में त्रिलोचन ने वस्तु- चित्रण के सुन्दर से सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किये हैं।[2] कभी वह अरण्यानी के सौन्दर्य को देखा है, जो आकाश से अपनी तुलना करती है। तो कभी महुए के वृक्ष की लाल-लाल छोटे-छोटे और रोमल-रोमल किसलयों का चित्रण करता है।'[3] तो सूर्य की उन किरणों का चित्रण करता है जो कभी पीपल के पत्तों पर कभी बेल के फूलों पर कभी ताल की तरंगों पर और कभी शिशु की दन्तावलियों पर विहसती दिखलाई देती है।'[4] कभी वह देखता है कि कत्थई रंग का महुआ पत्तों के झड़ जाने से लू की लहरें झेल रहा है। उसकी डालियों में निकली हुई कूचे प्रकृति से खेलने के लिए उत्सुक है।'[5]

वे मानव से ही मैत्री नहीं करते। अपने साथी पुराने सेमल वृक्ष का भी स्नेहात्मक चित्रण करते हैं। यथा —

"अपने इस साथी का परस पाके
मेरी भी शिराओं में
नयी रवानी आती है
रुधिर की तरंग बढ़ जाति है
साथी है न।"[6]

इस 'अरघान' संग्रह में उन्नीस सौ तिरपन के महाकुम्भ के सम्बन्ध में कवि ने अपने दृश्य विधान एवं वस्तु चित्रण को विभिन्न शैलियों से संवारने की चेष्टा की।' जाड़े

1- तुम्हें सौंपता हूँ, पृ0 5।   2- अरघान, पृ0 17   3- अरघान, पृ0 18
4- अरघान, पृ0 20   5- वही, पृ0 23   6- वही, पृ0 34

की घनमाला' में[1] कवि जहाँ आकाश का रंग बिरंगा चित्रण प्रस्तुत करता है वहीं कुम्भ नगर की विचित्रताओं का भी चित्रण करता है। कुम्भ में स्नान करने के लिए आने वाली जनता का राग रंग, उनकी विचित्रता और उनका मनोरंजन चित्रित करने में कवि का कैमरा बहुत ही सफल प्रतीत होता है — यथा —

"गीत नारियां गंगा मइया के गाती थीं
और नरों के योग यज्ञ के फल पाए थे
कथा कहानी कहते सुनते थे, आती थीं
पछुआ की लहरें, पूरब को बढ़ जाती थीं।"[2]

'कुम्भ नगर' शीर्षक कविता में कवि लिखता है कि वहाँ अच्छा बुरा सब कुछ देखने को मिला है। कहीं यज्ञ, पाठ, दान और कथा होती थी, तो कहीं कुचाल और अनीति के दृश्य दिखते थे। कहीं पण्डे लोग भोली-भाली जनता को ठग रहे थे। कहीं पूंजीपतियों का बोलबाला था तो कहीं अभागे भिखमंगे एक-एक पैसे के लिए परेशान थे। कहीं पर विमानों की घरघराहट आकाश को व्याप्त किये थी तो कहीं रंग-बिरंगे फहराते हुए झण्डे शोभायमान थे —

"कहीं लाभ के लिए लूट सी मची हुई थी
कहीं ठगी छलबल से नयी प्रथा होती थी
कहीं किसी की सेज काँट की रची हुई थी
कहीं सरलता भोलेपन में बची हुई थी।"[3]

'कवि को महाकुम्भ में जनता की अपार भीड़ को देखकर विराट पुरुष का साक्षात्-कार होने लगा। उसे भारत का मानचित्र दिखने लगा।'[4]

1- अरघान, पृ0 39
2- वही, पृ0 40
3- वही, पृ0 41
4- अरघान, पृ0 42

कवि ने इस बात का भी वर्णन किया है कि इस पुनीत पर्व में स्नान के लिए आने वाली जनता को पुलिस रोक रही थी। लेकिन भीड़ कब रुकती थी। रेलें- बसें, भरी हुई चल रही थी—

"बल प्रयोग देखकर कब झुकने वाली है
हार थकन से क्या यह धुन चुकने वाली है
रेलें कसी हैं, बसें भरी हैं, बैलगाड़ियाँ
लदी-फंदी हैं, सिद्धि कहाँ रुकने वाली है।"[1]

मेले की भीड़ अनियंत्रित है। पुलिस समझा रही है कि आगे राह बंद है पर जनता कब मानती है।'[2]

इस प्रकार 'महाकाल' था' शीर्षक कविता में कवि ने जनता के भयंकर नरसंहार का रोमांचक चित्र प्रस्तुत किया है और 'जुलूस का जलसा' शीर्षक कविता में नागा साधुओं के आतंक उनकी वेशभूषा और उनके भयावह निशाचरी कर्तव्यों का जीता-जागता चित्र प्रस्तुत किया है। इस प्रकार मेले में ढोंगी, साधुओं की छलविद्या और मजदूरों की दुर्दशा का दर्दनाक चित्रण किया गया है।'[3]

इसी प्रकार कहीं लाशों की प्रदर्शनी, कहीं तीर्थयात्रियों, लूट - खसोट कहीं घायलों का हाहाकार, कहीं परिजनों का विलाप, पर्याप्त मात्रा में चित्रित किया गया है। त्रिलोचन जी भीड़ के धक्कों से उत्पन्न होने वाले आघातों और भयावह परिस्थितियों का चित्रण करने में कुशल हैं। यथा —

"भीड़ नहीं है, दल राक्षस के ठेल रहे हैं
चरणों के आघात अभागे झेल रहे हैं
आह फेफड़े फड़क रहे हैं, हवा कहाँ है,

1- अरधान, पृ0 43

2- वही, पृ0 43

3- वही, पृ0 47

छूटी भूमि, भयानक धक्के रेल रहे हैं
अब कंधों पर भी, व्याकुलता यहाँ वहाँ है।[1]

त्रिलोचन इस मरण सिंधु में मग्न होने वाली मानवता का चित्रण करते थकते नहीं हैं। 'कहीं छोटे-छोटे बच्चों को मसल जाना, कहीं परिजनों का छूट जाना, कहीं छटपटाती भीड़ में लोगों का प्राणान्त हो जाना, इन सबका जीता-जागता चित्रण किया गयाहै।'[2]

भीड़ के लिए कवि लिखता है कि वहाँ आदमी मधुमक्खी के छत्ते के समान ठसाठस भरे हुए थे। चारों ओर से दबाव पड़ रहा था। आदमियों के सिर ही सिर दिखाई पड़ते थे। न कोई किसी से कुछ कह पाता था, न सुन पाता था-

"आदमियों के सिर ही सिर ऐसा था मेला,
सरसों छोटों भूमि तक न जाए वह ठेला-
ठेली थी, आँखें कुछ देख नहीं पाती थीं
कान सुन नहीं पाते थे, मिट्टी का ढेला
ही मनुष्य था, यदि साँसें बाहर जाती थीं
तो फिर अन्दर फिर कर कभी नहीं आती थीं।'[3]

त्रिलोचन इस भयंकर नर संहार में अधिकारियों की दावतों और नेताओं की हड़-बड़ाहट का भी चित्रण करते हैं।'[4]

ये लिखते हैं कि बेचारी पुलिस अधिकारियों की चापलूसी में लगी हुई थी तो फिर भीड़ को कौन सम्हालता —

"प्रभुओं की भौंहें ताके या भीड़ सम्हाले
दुर्घटना रोके पुलिस क्या-क्या कर डाले।'[5]

1- अरघान, पृ0 53
2- वही, पृ0 54-55
3- वही, पृ0 56
4- वही, पृ0 58-59
5- अरघान, पृ0 60

इसी प्र कार त्रिलोचन ने जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में पहुंचकर उनका दृश्य खींचा है। कोई वस्तु ऐसी नहीं है जिसमें मानवीय सन्दर्भ जुड़ता हो और उसका यथार्थपरक चित्रण न किया गया हो। वे अपने दृश्य-विधान और वस्तु चित्रणों के लिए विख्यात हैं; क्योंकि वे मानवता के कवि है, दर्द के कवि हैं, आशा और उत्साह के कवि हैं, असहायों और निरीहों के कवि हैं। अतः वे ऐसे स्थानों, स्थितियों एवं वातावरणों के चित्रण में विशेष रुचि लेते हैं। उनमें यथार्थ की अच्छी पकड़ है और चित्रण की विचित्र क्षमता, जिसके बल पर वे वस्तुचित्रण या दृश्य-विधान में कुशलतम सिद्ध होते हैं।'

प्रकृति चित्रण :—

त्रिलोचन की रचनाओं में प्रकृति चित्रण के विभिन्न रूप प्राप्त होते हैं। ऐसा लगता है कि उनका जितना अनुराग जीवन के प्रति है उससे कम प्रकृति के प्रति नहीं है। ग्रामीण अंचल में पले होने के कारण प्रकृति के प्रति उनका सहज अनुराग हो गया है, जो यत्र-तत्र उनकी रचनाओं में विविध रूप लेकर प्रकट हुआ है। प्रकृति के विभिन्न रूपों में से इसके आलम्बन रूप के प्रति कवि का विशेष लगाव प्रतीत होता है। अतः यहाँ पर प्रकृति के आलम्बन रूप के कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं —

प्रकृति का आलम्बन रूप :—

"राका आई
शारदा उतर आई स्मिति की ज्योत्स्ना छाई
चंद्रमा व्योम में मुसकाया
सागर में इधर ज्वार आया
तारे हैं उधर, इधर पर्वत

आँखों ने जैसे वर पाया
चंचल समीर ने चल चल कर
कुछ नई भावना बरसाई।"[1]

यहाँ पर कवि ने आकाश में चन्द्र की छटा और तारों के दृश्य के साथ समुद्र के ज्वार और चंचल समीर का जो स्वाभाविक रूप प्रस्तुत किया है, उसे प्रकृति के भव्य रूप की झाँकी कह सकते हैं।

वर्षा-वर्णन में कवि की मानसिक प्रवृत्ति अधिक रम सकी है। नाद सौन्दर्य और शब्द सौन्दर्य के साथ ही साथ संगीतात्मकता का समन्वय प्रकृति को साकार कर देता है। यथा —

"बादल घिर आए
ताप गया पुरवा लहराई
दल के दल घन लेकर आई
जगीं वनस्पतियाँ मुरझाई
जलधर तिर आए
बरखा, मेघ-मृदंग थाप पर
लहरों से देती है जी भर
रिमझिम रिमझिम नृत्य-ताल पर
पवन अथिर आए।"[2]

त्रिलोचन ने ऋतुराज बसन्त के विषय में भी पर्याप्त लिखा है। 'गुलाब और बुलबुल' में बसन्त का व्यापक चित्रण किया गया है। जिसमें लोकजीवन को साथ में लेकर बसन्त आता है और कवि का कण्ठ उमंग से झूमकर कहने लगता है —

1- सबका अपना आकाश, पृ0 13
2- वही, पृ0 9

"कोकिल ने गान गा के कहा आ गया बसन्त
आमों ने बौर ला के कहा आ गया बसन्त
क्यों मुझको छेड़ती है हवा बोल बार-बार
उसने जबा बल ला के कहा आ गया बसन्त
हर टहनी में जीवन के नए पत्र आ गए,
पीपल ने दल दिखा के कहा आ गया बसन्त
वे पत्र गए, जायँ फूल तो नए पाए,
खिर नाम ने उठा के कहा आ गया बसन्त।"[1]

त्रिलोचन शीत-ऋतु के चित्रण में भी उतने ही सफल हैं। वे चित्रात्मक शैली में शीत के वातावरण का वर्णन करते हुए कहते है —

"सांझ गुलाबी कांप रही है ठण्ड से,
उधैर गुलाबों के पौधे लाचार हैं,
झूल-झूल कर फूल हवा से कह रहे
है यह इतनी, छेड़छाड़ अच्छी नहीं
कांप रहे है पेड़ तृणों की बात क्या
यहाँ चलाई जाय, सुदूर दिगंत में
मेघ खण्ड सहसा उद्भासित हो गए,
सूर्य क्षितिज को सूना करे देर का।"[2]

यहाँ पर शीत के भयावह वातावरण का आतंकित रूप चित्रित करने में कवि ने बड़ी कुशलता से काम लिया है। उन्होंने इसी तन्मयता और कुशलता के साथ ग्रीष्म का भी रोमांचक चित्रण प्रस्तुत किया है।

"घोर घाम है हवा रुकी है
सिर पर आकर सूर्य खड़ा है
सिमट पैर पर छाँह झुकी है।

1- गुलाब और बुलबुल, पृ० 56
2- अरधान, पृ० 3।

भला दैव से कौन लड़ा है,
लेकिन चरण रहेंगे बढ़ते
भला दैव से कौन लड़ा है। "[1]

शारदी सुषमा कवि के हृदय को नयी लहर, नये प्राण और नये-नये भव का दर्शन कराती है। असलिए वह अनेक स्थलों पर शरद के मनमोहक रूप का चित्रण करने लगता है। यथा —

"पुनः शरद ऋतु आई है शोभा छाई है
चारों ओर सम रंग कण-कण का बदल गया है
वर्षा में चल थकी हवा कुछ अलसाई है
नहीं नृत्य की द्रुत तरंग है, सकल नया है
साज सिंगार प्रकृति के तन पर अब उनया है
मेघों का दल श्याम नहीं अंजन आए हैं
दूर देश से, नीड़ बनाने लगी बया है
पुरइन के पत्तों पर सरसिज मुसकाए हैं।" [2]

शरद् के इस रूप में कवि के हृदय का आह्लाद झलकता है। उसने शरद् के गीत गाने में कितनी तन्मयता प्रदर्शित की है इसी प्रकार का एक अन्य गीत का अंश प्रस्तुत है जिसमें शरद के साथ कवि ने मानव जीवन का तादात्म्य उपस्थित किया है—

"शरद का यह नीला आकाश
हुआ सबका अपना आकाश
ढली दुपहर, हो गया अनूप
धूप का सोने का सा रूप
पेड़ की डालों पर कुछ देर
हवा करती है दोल विलास।"[3]

1- सबका अपना आकाश, पृ0 49
2- अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ0 59   3- सबका अपना आकाश, पृ0 15

प्रकृति का उद्दीपन रूप :—

प्रकृति के उद्दीपन रूप के चित्रण की परम्परा रीतिकाल में प्रश्रय पाती रही है। छायावादी युग से प्रकृति के चेतन रूप को विशेष महत्व दिया गया है और उसके आलम्बन रूप का प्राधान्य हो गया है, किन्तु उसके उद्दीपन रूप की एकदम उपेक्षा कर दी गयी हो ऐसा नहीं है। त्रिलोचन ने प्रकृति के उद्दीपन रूप के भी चित्र उतारे हैं। यथा —

"अनदिख टहनिया / रजनीगंधा की
हवा में / फैली हैं / सांसों में मेरी
लहराती हैं/ चेतना को छेड़ कर
सिराओं में/ जीवन का वेग
बन जाती हैं।"[1]

यहाँ पर कवि ने रजनीगंधा से नयी चेतना की उद्दीप्ति समझी है। जो अपने में नवीन और कलात्मक लगती है। इसी प्रकार निर्जन में खिले हुए पुष्प को देखकर प्रिया की स्मृति के निम्नलिखित चित्रण में भी प्रकृति के उद्दीपन रूप का दृश्य मिल जाता है —

"फूल देखा विजन में खिला था
आ गई याद मुझ को तुम्हारी
रूप ने कब किसी को बुलाया
आँख में जोत बन कर समाया
देख पाया वही देख आया
चाँद देखा गगन में खिला था।"[2]

1- चैती पृ० 22

2- सबका अपना आकाश, पृ० 46

प्रकृति का चेतन रूप :—

त्रिलोचन ने प्रकृति को जीवन के साथ ही साथ देखने का भरसक प्रयास किया है। इसलिए उनकी कविताओं में प्रकृति के चेतन रूप को विशेष प्रश्रय मिला है। यह चेतन रूप भी विभिन्न प्रकार का है। कहीं वह मानवीकृत रूप में आया है, और कहीं पशु-पक्षी आदि के रूप में तो कहीं अन्य जीव-जन्तु के रूप में। यहाँ पर प्रकृति के चेतन रूप के अनेक उदाहरण प्रस्तुत हैं —

(क) " . . . . रूप बनते
इस बबूल को देर कब लगी, भौंरो का दल
गुंजन करने लगा और चिड़ियाँ भी आई
पत्तों, फूलों ने फैला-फैला कर चंचल
आस्तरण अपने काँटों को ढका, छाई
नई छटाएँ आज इसी की निंदित छाया
सावधान पथिकों का आवाहन करती है।"[1]

यहाँ पर कवि ने बबूल के चेतन रूप का चित्रण किया है। जो कवि की प्रगतिशील प्रवृत्ति के अनुरूप है।

(ख) "उड़ा-उड़ा जाती थी बालों को पुरवैया
बड़ी मुँहलगी सखी सरीखी, मैं चुटकी से
सँवारता था फिर फिर लेकिन वह सुनवैया
जैसे ढूँढ रही थी, बालों को फुर्ती से
उड़ा उड़ा देती थी . . . . . . ।"[2]

यहाँ पर प्रकृति के चेतन रूप के अन्तर्गत कवि ने इसके नारी रूप का सरस उल्लेख किया है।

1- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 65

2- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 64

"डालियों के बढ़े हुए कूचों में,
अधखिली कलियाँ सँभाले
जान पड़ा है
संध्या की / रात की/
शीतल पवन की
और तारों से चुहल आकाश की
आकुल प्रतीक्षा कर रहा है।"[1]

यहाँ पर कवि ने अपनी यथार्थवादी प्रगतिशील प्रवृत्ति के अनुसार विरूप महुये के वृक्ष का चेतन एवं मानवीकृत रूप प्रस्तुत किया है जो ऐसा प्रतीत होता है मानों कोई दीन हीन किसान दूसरों को अपना उपहार देने के लिए लालायित हो रहा हो —

"खिल रहे हैं फूल, हँसते उपवन
जीवन ही जीवन भरा भुवन
इस समय भुवन की मधुर कान्ति
कर रही गंधावह का चुंबन
क्या हुआ कि सत्ता चुपके से
आई, सुषमा अनुपद आई।"[2]

यहाँ पर प्रकृति चेतन की भाँति हँसती मुस्काती और प्रसन्न होती चित्रित की गयी है। कवि को प्रकृति के चेतन-रूप का चित्रण करने में विशेष रुचि है। अतः वह अवसर पाते ही स्वयं प्रकृति से बातें करता है कभी उसे दुलारता है और कभी उसकी स्निग्ध छवि पर मुग्ध होता है। यथा —

"घिर-घिर घन आए, व्योम में गान गाया,
फिर-फिर नववर्षा नृत्य अपना दिखा के
जल बन कर छाई, भूमि ने रंग पाए
खिल-खिल कर पौधे भेंट जैसे लहेके।"

1- अरघान पृ0 23
2- सबका अपना आकाश, पृ0 13

"शश उछल रहे हैं घास के बीच जैसे
धन धवल कहीं हो व्योम की नीलिमा में
तृण हरित समेटे ताल ध्यानस्थ से हैं
ध्वनि उमड़ रही है वायु में सारसों की।"

प्रकृति का संवेदनात्मक रूप :—

त्रिलोचन जीवन के कवि हैं। विशेषतः निम्न उपेक्षित और श्रमजीवी व्यक्तियों से इन्हें विशेष सहानुभूति है। प्रकृति के परिवेश में पलने वाले ऐसे व्यक्तियों के साथ घुल-मिल कर उनके सुख-दुख में सम्मिलित होकर रहने के लिए कवि उत्कंठित है — "मुझे बुलाता है पहाड़ में तो जाऊँगा
निर्मल जल के वे झरने कल
बैठ जहाँ अविपालों के दल
देते काट दुपहरी के पल
वहीं उन्हीं के सुख-दुख में घुलमिल जाऊँगा।[1]"

प्रकृति का आलंकारिक रूप :—

त्रिलोचन ने प्रकृति को अलंकार के रूप में भी प्रस्तुत किया है। यथा —

"बूँद जितना-तिमिर सागर बन गया है
बस उसी की लहर में जग फँस गया है।"[2]

यहाँ पर उपमा अलंकार के रूप में प्रकृति का प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार —

"ओढ़ तारा चूनरी को रात आई
मिल रही है साँझ से कह कर अवाई।"[3]

यहाँ पर प्रकृति को रूपक अलंकार का माध्यम बनाया है।

1- सबका अपना आकाश, पृ0 42
2- तुम्हें सौंपता हूँ, पृ0 30
3- तुम्हें सौंपता हूँ, पृ0 31

प्रकृति का प्रतीकात्मक रूप :—

"आ गई है रात, उठो दीप जला दो
व्योम में तारे निकल आए
भूमि पर तम-घन अचल छाए
खो गए सब हैं/ मौन ही अब हैं
तोड़ कर यह बंध, प्रभा एक कला दो।"[1]

यहाँ पर 'रात' निराशा का प्रतीक है और दीप आशा का प्रतीक है। इस प्रकार समस्त उदधरण प्रकृति के प्रतीकात्मक रूप को व्यक्त करता है।

प्रकृति का सुखात्मक रूप :—

शरद ऋतु मेंयुगल कपोत कितने स्नेह के साथ एक दूसरे से सहयोग करते हुए सुख में जीवन व्यतीत करते हैं। इसका अत्यन्त आकर्षक और सजीवचित्र प्रस्तुत करता हुआ कवि कहता है कि —

"चोंच से चोंच ग्रीव से ग्रीव
मिला कर, होकर सुखी अतीव
छोड़कर छाया युगल कपोत
उड़ चले लिए हुए विश्वास।"[2]

प्रकृति का दार्शनिक रूप :—

कवि ने प्रकृति के दार्शनिक रूप को भी चित्रित करने की चेष्टा की है किन्तु जीवन से दूर नहीं। जीवन को निर्झर के रूप में समझता हुआ कवि चिन्तन करता है — "अविरल झर रहा निर्झर
पर पसीजी ना शिला

1- सबका अपना आकाश, पृ० 34

2- वही, पृ० 15

यह ऊर्मिला जीवन शेष
निज पल गिन रहा हँस-रो
'नहीं' या 'हाँ' सदैव अशेष
तरु दल बोलता मर्-मर्।"[1]

प्रकृति का प्रेरक रूप :—

त्रिलोचन ने प्रकृति के प्रेरक रूप का भी उल्लेख किया है। प्रकृति उन्हें जीवन की दिशा देती है। वे यहाँ पर प्रकृति को जीवन से मिला देखते हैं। पुष्प के प्रति उनका यह कथन कितना प्रेरक है —

"खिला, खिलो, खुल खिलो, तुम्हारे खिलने से ही
मेरा मन खिलता है, किसी डाल पर हो तुम
सौरभ बन कर उड़ो पवन की लहरों पर तुम,
पास तुम्हारे आता हूँ इन लहरों से ही
हास-विकास तुम्हारा नूतन संदरता से
भर देता है जग को, इस की नीरव गाथा
प्राणों को पुलकित करती है।"[2]

इसी प्रकार 'अरधान' शीर्षक संग्रहमें 'अरण्यानी, साथी, है सेमल पुराना' जैसी कविताएँ प्रकृति के प्रेरम रूप में प्रस्तुत हुई हैं।

प्रकृति का अद्भुत रूप :—

त्रिलोचन कभी कभी प्रकृति के अद्भुत रूप का भी चित्रण करते हैं उदाहरणार्थ 'अरधान' की सहस्त्रशीर्ष पुरू ष' शीर्षक कविता में विराट प्रदर्शन उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त 'जाड़े की धनमाला' शीर्षक कविता में भी प्रकृति के अद्भुत रूप का चित्रण है —

1- तुम्हें सौंपता हूँ, पृ0 17
2- उस जनपद काकवि हूँ, पृ0 35

"क्षितिज नील, तदुपरि बैंगनी, और फिर नीला,

महाकाश को घेरे जाड़े की घनमाला,

गंगा बीचोबीच, पार झूसी का टीला,

सम्मुख कुम्भनगर, दिन का सांवला उजाला

आड़ी, सीधी, टेढ़ी राजमार्ग की माला,

पहले हुए बस्तियाँ क्रम से चली गई हैं।"[1]

प्रकृति का भयावह रूप :–

जितनी सफलता के साथ त्रिलोचन ने प्रकृति के अन्य रूपों को संवारा है, उतनी ही सफलता के साथ वे उसके भयावह रूप का चित्रण करते हैं। 'आंधी' के भीषण रूप का चित्रण करता हुआ कवि कहता है –

"डरे चौपाए भी चकित नयनों से निरखते –

हुआ क्या, ऐसी क्या अघट घटना आज घट के

रहेगी, थानों सेलग कर कँपे औरउछले

छुटे जो थे वे भी, अगम ध्वनि से और भभरे।

उखाड़ा पेड़ों को पटक कर आगे बढ़ चली

कुटीरों को थामे अलग कर से दूर पटका

खिले फूलों को भी गह चली और बिखर के

पड़े बेचारे से अदिन अपना देख यों।"[2]

प्रकृति का परिगणनात्मक रूप :–

प्रकृति चित्रण के क्षेत्र में इस रूप की भी गणना की जाती है, किन्तु इसमें कोई चमत्कार नहीं होता। केवल प्रकृति के उपादानों के नाम मात्र गिना दिये जाते हैं। किन्तु त्रिलोचन ने ऐसे स्थलों पर भी सजीवता प्रस्तुत की है। यथा –

1- अरधान, पृ0 39

2- अरधान, पृ0 14

> "फूले हैं पलाश, वैजयंती, कचनार, आम, चिलबिल
> अब उजाड़ हैं, पीपल, शिरीष, नीम का भी यही हाल है
> बाँसों की पत्तियाँ हरियाली तज रही हैं। जल्दी
> ही उन्हें अलग होना है।'[1]

इस प्रकार त्रिलोचन के काव्य तत्वों में प्रायः प्रकृति के सभी रूप प्राप्त हैं। छायावादी कवियों की भाँति इनकी प्रकृतिसजीव है। मानव-जीवन के साथ इसका घनिष्ठ-सम्बन्ध है। इसलिए सुख दुख, आनन्द, उत्साह, आमोद-प्रमोद, हानि-लाभ, जीवन मरण आदि विभिन्न क्षेत्रों में मानव की सहचरी बन कर बोलती है। कभी वह उल्लास का निर्झर बनकर जीवन को मधुर संगीत सुनातीहै और कभी उसके सोये हुए मन को जगाकर उसमें ओज भरती है और निराशा के तम से जगाकर उसे आशा के दीप दिखलाती है। कभी वह कृषक-जीवन से मिलकर उसके पसीने भरे हुए सीने को सान्त्वना देने के लिए मलय पवन बनकर आती है और उसके श्रम को अपने कोमल करों के स्पर्श से क्षण भर में दूर कर देती है। अनेक बार तो उसने कवि को स्नेहिल वातावरण देकर उसके चित्त को उद्दीप्त किया है। उसकी स्मृतियों में आकर उसे प्रेम-प्रवण बना दिया है। कर्म का राग सिखाने के लिए प्रकृति सदैव आगे आती रही है। उसने जहाँ कोमल और मधुर स्वरों से उसके हृदय को सहलाया है, वहीं अपने भीषण गर्जन-तर्जन से उसमें ओजस्विता के स्वर का संचार किया है। त्रिलोचन की प्रकृति साधारण होती हुई भी असाधारण है। वह अपने अमूल्य उपहार बाँटकर मानव को उपकृत करती है और जीवन का ऐसा कोई छोर नहीं है, जहाँ वह उसे सम्बल न प्रदान करती हो। वह भूतल तक ही सीमित नहीं है। अपितु अध्यात्मदर्शन के क्षेत्र में भी जीवन को ले जाती है, और चिन्तन के उच्च धरातल पर पहुँचाकर

1- चैती, पृ0 48

उसे आनन्द सागर में स्नान करा देती है। अस्तु त्रिलोचन की प्रकृति धरती से लेकर आकाश तक, स्थूल से लेकर सूक्ष्म तक, गतिशील है, उसकी यह प्रकृति-शीलता केवल पाठकों को ही नहीं अपितु सहृदय समालोचकों को भी आनन्दविभोर बना देती है।

इस प्रकार त्रिलोचन के काव्य में भावतत्व का विश्लेषण करने से यह निष्कर्ष निकलता है कि त्रिलोचन की भावुकता सहज एवं स्वाभाविक है। उसमें प्रतिभा का सफल नियंत्रण है। वे न तो इतने रूखे हैं कि ठेठ प्रगतिशीलता ही उन्हें अपने वश में करके रूक्षता का परिधान पहना दे और न इतनी लचर भावुकता ही है जो उन्हें श्रम और कर्तव्य के मार्ग से विमुख कर दे। वे भावुकता के क्षणों में भी कर्मठता का राग नहीं भूल पाते और अकर्मण्यता के वशीभूत नहीं होते। वे अवसाद के क्षणों में रोते हैं अवश्य, किन्तु दहाड़ मारकर नहीं। उनके अश्रु न निकलते हों ऐसी बात नहीं किन्तु वे 'उन्हें गठरिया में बांध कर रखते हैं "[1] वे संघर्षों में पले हैं, उनसे लोहा लेते हैं और घुटने टेककर पुनः खड़े हो जाते हैं किन्तु जीवन से हार नहीं मानते हैं। उनका क्रान्तिकारी स्वर जनता-जनार्दन को जगाता है और सड़ी-गली-व्यवस्था के प्रति क्रान्ति करने के लिए हुंकार करता है। ऐसे स्थलों में भी उसकी भावुकता उच्छृंखलता का रूप नहीं ले लेती, अपितु श्रमिक संगठन के सफल नेता की भांति नियंत्रित होकर ही क़दम बढ़ाती है।

1- "आंसू बांधे मैंने गठरियों में
अपने भी है और पराये भी है ये
उपराये हैं तो तराये भी हैं ये
आप आ गए हैबराये भी हैं ये
साधे हैं मैंने कनकन डगरिया में।" (सबका अपना आकाश, पृ069)

अस्तु, त्रिलोचन का भाव तत्व प्रगाढ़ और गम्भीर है जिसमें जीवन को जीने की राह मिलतीहै और श्रमित मानवता को क्षणिक विश्राम भी मिलता है, जिससे उसका कर्मपथ प्रशस्त हो जाता है,- और नयी आशा, नयी-किरण और नयी-चेतना उसे लक्ष्य प्राप्त करने के लिए सुलभ एवं प्रेरक बन जाती है।

तृतीय अध्याय

त्रिलोचन के काव्य में अलंकार सौन्दर्य

तृतीय अध्याय

'त्रिलोचन के काव्य में अलंकार सौन्दर्य'

काव्य में अलंकारों की क्या स्थिति है? इस बात पर अनेक मत-मतान्तर हैं। समय-समय पर आचार्यों ने इस विषय पर अपने भिन्न-भिन्न विचार दिये हैं। अलंकारवादी आचार्यों ने तो यहाँ तक कह डाला है कि अलंकार ही काव्य की आत्मा है। '[1] काव्य शोभाकरान् धर्मान् अलंकारान् प्रचक्षते' यह उक्ति बतलाती है कि अलंकारों को काव्य शोभा-विधायक-धर्म मान लिया गया है। इस प्रकार इसका सम्बन्ध काव्यात्मा से जुड़ गया और इसके विरोध में अन्य आचार्यों ने कहा कि अलंकारों का अस्तित्व केवल हार इत्यादि आभूषणों की भाँति है। वे काव्य के बाह्य तत्व हैं। जिस प्रकार आभूषण पहने या न पहने, अन्तर केवल इतना ही पड़ता है कि अलंकारों से शरीर की शोभा बढ़ जाती है। इसी प्रकार अलंकारों से काव्य की शोभा बढ़ती है। किन्तु वास्तविकता यह है कि दोनों मत अतिवाद से ग्रस्त हैं। काव्य में अलंकारों का इतना महत्व नहीं है कि उन्हें काव्यात्मा का अभिन्न-अंग बना दिया जाए और न वे इतने अस्तित्वहीन हैं कि उनका कोई मूल्य न हो। वास्तव में अलंकार काव्य के आभूषण होते हैं।[1] यदि अतिशय से बचा जाए और उनका स्वाभाविक प्रयोग किया जाए तो निस्संदेह, उनकी उपयोगिता है और वे काव्यश्री में अभिवृद्धि करते हैं।

हिन्दी-साहित्य के इतिहास पर दृष्टि डालने से यह पता चलता है कि रीतिकाल में अलंकारों का बोलबाला था। आचार्य केशव का तो यहाँ तक कहना था कि 'भूषण बिनु न विराजिइ कविता बनिता मित्त' अर्थात् अलंकार के बिना कविता, स्त्री और मित्र, इन तीन में से किसी की शोभा नहीं होती, किन्तु आधुनिक युग में

1- भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र— डा0 कृष्णदत्त अवस्थी एवं यतीन्द्रनाथ तिवारी

विशेषतः छायावाद में मानवीकरण, 'विशेषण-विपर्यय' और 'ध्वन्यर्थ-व्यंजना' जैसे नवीन अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग बढ़ा और उपमा आदि प्राचीन अलंकारों को भी नया रूप दिया गया। सन् 1935 ई0 के आसपास प्रगतिवादी काव्यधारा ने अलंकारों के अस्तित्व पर ही प्रश्नचिन्ह लगा दिया, किन्तु स्वाभाविक रूप में अलं - कारों का प्रयोग होता ही रहा और प्रयोगवाद के क्षेत्र में अज्ञेय जैसे समर्थ कवियों ने भी इन अलंकारों से मुख नहीं मोड़ा। कहीं न कहीं नये बिम्बों के गढ़ने में अलं - कारों का आश्रयलेना ही पड़ा जैसे —

"कोयले की खान की मजदूरिन सी रात
बोझ ढोती तिमिर का विश्रान्त सी अवदात्।"[1]

यहाँ पर रात्रि के लिए कोयले की खान की मजदूरिन सी कर दी गयी है जो एक नया प्रयोग है और सामयिक होने के कारण उपयुक्त भी लगता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि समय-समय पर अलंकार उपेक्षित ही भले रहे हों, लेकिन उनका सर्वथा वाहिष्कार न हुआ है न हो सकता है। इधर प्रगतिशील कवियों ने चाहे जितनी ही प्रगतिशीलता दिखलायी हो लेकिन वे भी स्वाभाविक रूप से आने वाले अलंकारों का बहिष्कार नहीं कर पाते। चाहे वे 'केदार' हों या 'नागार्जुन' चाहे 'अंचल' हो चाहे 'सुमन' सभी ने किसी न किसी प्रकार से अलंकारों का प्रयोग कियाहै। हमारे आलोच्य कवि त्रिलोचन भी अलंकारों से अछूते नहीं हैं। उनकी सभीकृतियों में अलंकारों का स्वाभा - विक प्रयोग हुआ है। कहीं ऐसा नहीं प्रतीत होता कि इन्हें अलंकारों से परहेज है, अथवा उन्हें अलंकारों से नफरत है। विभिन्न ग्रन्थों के उद्धरणों से यहाँ यह सिद्ध किया जायेगा कि त्रिलोचन ने अपनी भावपूर्ण अभिव्यक्ति के लिए स्वाभाविक रूप से

1- अज्ञेय

अलंकारों का प्रयोग किया है। उनके प्रयोग प्रयत्न साध्य नहीं है। उनकी काव्यकला ही मनोवांछित अलंकरण लेकर उतरती है और पाठक के हृदय को मुक्त कर लेती है। चाहे शब्दालंकार हो या अर्थालंकार, सभी उन्हें अपनी अभिव्यक्ति में बल देते हैं इस कारण वे विशेष महत्वपूर्ण बन गये हैं।

त्रिलोचन के काव्य में वाक्य-शिल्प का अपना एक विशिष्ट स्थान है, और वाक्य शब्दों का समूह होता है। 'शब्द समूहः वाक्य' यह उक्ति तर्कशास्त्र की है। अतः इनकी रचनाओं में शब्द-सौन्दर्य भी पर्याप्त है और वर्ण-समुदाय से पद या शब्द बनता है, अतः वर्ण-सौन्दर्य भी उपलब्ध है। इस प्रकार यह भी समझ में आता है कि इनके काव्य में शब्दालंकारों का सौन्दर्य कम नहीं है। वस्तुत, इनकी रचनाओं में अनुप्रास, यमक, और वीप्सा अलंकारों का बड़ा ही सुन्दर एवं स्वाभाविक प्रयोग मिलता है और अर्थालंकारों में तो उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक के नए-नए उपयोग देखते ही बनते हैं। अनेक व्यंग्यों के कारण वक्रोक्ति के स्वाभाविक चमत्कार कम महत्वपूर्ण नहीं हैं, और प्रकृतिचित्रण के क्षेत्र में तो मानवीकरण अलंकार के शतशः प्रयोग छायावादी-काव्य का स्मरण दिला देते हैं। यहाँ पर क्रमशः उपस्थित शब्दालंकारों में से 'अनुप्रास' के उदाहरण प्रस्तुत हैं।

अनुप्रास :— कवि ने छेकानुप्रास और वृत्त्यनुप्रास का विशिष्ट प्रयोग किया है।

(क) प्रलय पलावन की चढ़ाई।[1]

(ख) प्रबल प्रवाह दिखाने आते।[2]

(ग) धरा धाम से गए, तीर्थ का यही फल मिला[3]

(घ) जो जी का स्रोत है कभी सूखेगा वह जरूर[4]

(ङ) ऊपर ही ऊपर है जैसे जगह नहीं।[5]

1- सबका अपना आकाश, पृ047 2- तुम्हें सौंपता हूँ, पृ024
3- अरधान, पृ055 4—गुलाब और बुलबुल, पृ055 5— चैती, पृ0 23

(च)कहाँ कौन है जो न मृत्यु के हाथ बिका है।'[1]

(छ)चतुर चाँदनी का सब पर है, दुनिया भर का वर्णन कौन करे।'[2]

इन उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि कवि को छेकानुप्रास के लिए कोई यत्न नहीं करना पड़ा। वह स्वतः वाक्य के प्रवाह में अपने आप आ जाताहै।

वृत्तानुप्रास :— छेकानुप्रास की तुलना में इसका महत्व कुछ अधिक है। इसके सुनने मेंपाठक को या श्रोता को कुछ अधिक आनन्द आता है। कवि के विभिन्न ग्रन्थों में इसके भी कतिपय उदाहरणों की झलक देखिए —

(क)लोग समझते हैं कि गीत गायक गाता है।[3]

(ख)तुम महिमा मण्डित मनुष्य थे।[4]

(ग)समाचार पत्रों ने गली गली गाया है[5]

(घ)ज्योति जीवन की सदा से सहचरी है।[6]

(ङ)छवि छवि छू लो सुख से झूलो।'[7]

(च)छाया छाया छाया छाया – जब भी देखा।'[8]

(छ)सामिती सिरी सर्व उपमा जोग बाबू रामदास को।'[9]

इन उदाहरणों में भी कवि को कोई यत्न करना नहीं पड़ा। वृत्त अनुप्रास सहज में ही उपस्थित हो गया जो अर्थ को भी गति देता है।

यमक :— यह एक ऐसा अलंकार है जो सुनने में कर्ण सुखद होता है और पाठक स्वतः सुनकर मुग्ध हो जाता है। इसके भी कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं

1- उस जनपद काकवि हूँ, पृ0 80

2- अनकहनी भी कुछ कहनीहै, पृ0 10

3- अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ0 43

4- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0

5- अरधान, पृ0 50

6- तुम्हें सौंपता हूँ, पृ0 30

7- सबका अपना आकाश, पृ0 16

8- शब्द पृ0 21

9- अरधान, पृ0 74

(क) ऐसी क्या अघट घटना आज घट के रहेगी।[1]

(ख) द्वन्द्व अन्तर में निरन्तर चुप चला है।[2]

(ग) आज मैं कृतज्ञ हूँ जाने अनजाने हर किसी का।[3]

(घ) हृदयोदधि अवगाहन-वाहन[4]

(ङ) सुनायेगी गाथा, मुखर मुख होंगे सुरस से।[5]

(च) अन्वेषी अभिमान मान अपना पाएँ सुधि तृप्त हो[6]

(छ) अनय देख तो विनय बन गया।[7]

वीप्सा :— यद्यपि संस्कृत के आचार्यों ने वीप्सा को कोई अलंकार नहीं माना। चाहे आचार्य मम्मट हों या विश्वनाथ अथवा अप्पयदीक्षित अथवा पंडितराज जगन्नाथ किन्तु इतना अवश्य है कि शब्दार्थ की दृष्टि से वीप्सा का अर्थ द्विरावृत्ति माना गया है। हिन्दी के आचार्यों में डा० राम शंकर शुक्ल 'रसाल' ने वीप्सा को एक अलंकार के रूप में मान्यता दी है। अतः हिन्दी में अलंकारों की श्रेणी में वीप्सा को भी सम्मिलित कर लिया गया है। देखने में यह आश्चर्य लगता है कि त्रिलोचन जैसे कवि ने अपने काव्य ग्रन्थों में वीप्सा का डटकर प्रयोग किया है, आखिर बात क्या है? मेरे विचार से वीप्सा से भाव या विचार पुष्टतर होता है। कथ्य पर बल पड़ता है। इसलिए कवि त्रिलोचन ने अत्यधिक मात्रा में वीप्सा अलंकार का प्रयोग किया है। मैं अपने इस मन्तव्य को निम्नलिखित उद्धरणों के माध्यम से तर्क देती हुई पुष्ट करूँगी —

(क) टहनी-टहनी डाली-डाली धाम के धुआँ और ऊपर चढ़ता है।[8]

(ख) यहाँ पर कवि धूम्र से व्याकुल वृक्षों में वातावरण की विषमतता का चित्रण करता हुआ कहता है कि न तो कोई बड़ी शाखा इस धूम्र के विकार से वंचित है और न तो कोई डाली अर्थात् धूम्र का विषैला वातावरण वृक्ष के अंग प्रत्यंग को

1- अरधान, पृ० 14
2- सबका अपना आकाश, पृ० 26
3- वैती पृ० 54
4- तुम्हें सौंपता हूँ, पृ० 14
5- वैती प० 36
6- वैती, पृ० 29
7- सबका अपना आकाश, पृ० 72
8- अरधान, पृ० 31

दूषित कर रहा है। कितनी बड़ी अर्थ व्यंजना के लिए कवि ने यहाँ पर लगातार दो बार वीप्सा का प्रयोग किया है।

(ख) गाँव-गाँव नगर-नगर, गली-गली डगर
मैं पुकार रहा हूँ : सपने लो सपने लो
नये-नये सपने लो अच्छे अच्छे सपने लो / सपने लो।'[1]

यहाँ पर कवि वीप्सा को लेकर कितनी गहराई पर उतर आया है। वह फेरी वाले के माध्यम से सपने बेचने वाले की तत्परता और उसकी लगन-शीलता के साथ उसकी प्रचार भावना का सुन्दर चित्र प्रस्तुत करता है।

"संकट से चल मेघों के दल
चरते होंगे चंचल चंचल।'[2]

यहाँ पर वीप्सा के द्वारा कवि ने चंचल से प्रतीत होने वाले किन्तु अचंचल संकट रूपी मेघों के दलों का चित्रण कियाहै क्योंकि संकट आसानी से चलते कहाँ है, वे तो मन्द गति से चलते हैं।

'नये नये पैर अनेक भाव से
बढ़े इसी से पदवी बनी रही।'[3]

यहाँ पर मार्ग के चित्रण में कवि ने वीप्सा के द्वारा इस अर्थ की अभिव्यक्ति की है कि अनेक विचारधाराओं के विभिन्न व्यक्ति इस एक ही मार्ग से चलते आए हैं। इसलिए मार्ग का अस्तित्व बना रहा।

'बार-बार उसकी कराह सुन-सुन मैं धाया
खड़ा-खड़ा तकता रहा कुछ समझ न पाया।
बस कराह ही देखा रोम-रोम से रह-रह
निकल रही थी।'[4]

1- तुम्हें सौंपता हूँ, पृ0 47
2- सबका अपना आकाश, पृ0 42
3- पैती, पृ0 46
4- उस जनपद का कवि हूँ, पृ080

यहाँ पर कवि ने किसी अपरिचित पीड़ा को सुनकर अपनी असह्य वेदना को व्यक्त करने के लिए वीप्सा का कितना सुन्दर प्रयोग किया है। इसमें कवि की असमर्थता एवं कर्तव्य विमूढ़ता और पीड़ा की गम्भीरता तथा उसकी निरन्तरता का मार्मिक चित्रण हुआ है। वीप्सा के प्रयोग का यही मूल उद्देश्य है।

"पारिजात जीवन का, तुम तो ध्वजा धर्म की
लिए-लिए फिरते हो तुमको ग्लानि नहीं है।"[1]

यहाँ पर वीप्सा के द्वारा कवि ने धर्म के उन ठेकेदारों को फटकारा है जो धर्म की वैशाखी लेकर ही घूमते हैं। स्वतंत्र उनका कोई अस्तित्व नहीं वे एक पल को भी उसे छोड़ दें तो उनका अस्तित्व ही संकट में पड़ जाए। क्योंकि ये ठेकेदार जनता के प्रति मात्र सहानुभूति लिए रहते हैं।

"नरसों जो हिम प्रस्थ उठाकर उसने फेंके।
मेरे सहस्त्र सहस्त्र, निदारुण शोक दे गया।"[2]

यहाँ पर कवि ने मृत्यु की निरन्तर विनाशलीला के सन्दर्भ में उसके सहस्त्रों प्रहारों की असंख्य रूपता का संकेत देने के लिए ही वीप्सा का प्रयोग किया है।

वीप्सा अलंकार के उपर्युक्त सात उदाहरणों के विश्लेषण से मेरी लेखनी इसी निष्कर्ष पर पहुँचती है कि कवि त्रिलोचन ने अपने काव्य ग्रन्थों में व्यापक अर्थ की अभिव्यंजना करने के लिए ही वीप्सा अलंकार का प्रयोग किया है न कि शाब्दिक चमत्कार उत्पन्न करने के लिए क्योंकि त्रिलोचन तो स्वाभाविकता के पक्षधर हैं वे कोरे चमत्कार प्रदर्शन से बहुत दूर रहते हैं।

1- अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ० 19

2- शब्द, पृ० 56

वक्रोक्ति :-

वक्र - उक्ति — वक्रोक्ति = टेढ़ा कथन। साहित्य में कुन्तक ने वक्रोक्ति को काव्य की आत्मा तक कहा है। वक्रोक्ति काव्य जीवितं' वास्तव में वक्रोक्ति को काव्यात्मा तो नहीं कहते किन्तु निश्चित रूप से उसमें ध्वनि और व्यंजना के प्रभाव - कारी चमत्कार अवश्य ही विद्यमान रहते हैं।। यद्यपि श्लेष वक्रोक्ति और काकु - वक्रोक्ति यही दो मुख्य भेद हैं किन्तु व्यंग्य को भी वक्रोक्ति के अन्तर्गत स्वीकारा गया है। प्रगतिशील काव्यधारा में शासन पर समाज पर और व्यक्ति पर जितने सफल व्यंग्य लिखे गये हैं, वे आज के कवित्त में बहुमूल्य समझे जाते हैं, इसलिए मैं त्रिलो - चन के काव्य ग्रन्थों में वक्रोक्ति के प्रभावपूर्ण अंशों को प्रमाणित करने की चेष्टा करूँगी जिनसे काव्य में विशेष प्रभावशीलता उत्पन्न हो गयी है —

महाकुम्भ के अवसर पर ढोंगी महात्माओं के पास बड़े-बड़े पूँजीपति आते हैं और उनका चरणस्पर्श करके अपने को धन्य मानते हैं। कवि इस पर व्यंग्य करता हुआ कहता है कि वही स्वर्ग से आए हुए हैं अन्य नहीं -

'कितने ही लखपती पास उनके आते हैं
चरणधूलि लेते हैं, वही स्वर्ग से आए।'[1]

इसी प्रकार महाकुम्भ के कुप्रबन्ध के विषय में त्रिलोचन का बिन्दु बड़ा ही पैना है -

"लाशों का सुखवन पुलीस ने फैलाया है
इसी के लिए तो उसने पैसा खाया है
सुप्रबन्ध का कहना ही क्या है, कमाल था,
समाचार पत्रों ने गली-गली गाया है।'[2]

1- अरधान, पृ0 47

2- वही, पृ0 58

यहाँ पर लाशों का सुखवन से यह व्यंग्य निकलता है कि जैसे कोई वस्तु सुखायी जातीहै। उसी प्रकार पुलिस ने लाशों कोफैलाया है। इसके अतिरिक्त वे उनसे पैसे की कमाई भी कर रहे थे। इसी प्रकार सुप्रबन्ध के स्थान पर कुप्र - बन्ध का सुन्दर व्यंग्यात्मक प्रयोग किया है। इस स्थिति में राष्ट्रपति कर ही क्या सकते थे। दूसरों की आहों को सुनकर दुर्बल हृदय वाले लोग डरा करते हैं उच्च अधिकारी नहीं। राष्ट्रपति को तो ऐसा होना चाहिए कि भरपेट भोजन करके डकार ले और बाद में दुर्घटना पर गहरा दुख प्रगट कर दे। कवि के अनुसार —

'भला राष्ट्रपति सुना करे किस किस की आहें
इन आहों से दुर्बल हृदय डरा करते हैं
ऐसा हो राष्ट्रपति कि जीमे, फिर डकार ले,
दुर्घटना से मुझे दुख है, यह सकार ले।'[1]

सारनाथ का प्राचीन रूप कुछ था और वर्तमान रूप उससे सर्वथा भिन्न। इस परि-स्थिति से गौतम बुद्ध की आत्मा इतनी दुखी न होगी इस बात को कवि के व्यंग्य में देखिए — "अब तो यह सारनाथ नागरिकों नागरिकाओं का बिहार-स्थल है
सुन्दर बिहार हे तथागत, अब तो तुम प्रसन्न हो?
देखो जरा इतने इतने लोग आते हैं तुम्हारे लिए।'[2]

आज के युग में निरीह जनता गधे के तुल्य है। वह बेचारी जनता विरोध क्या जाने क्या यह उसकी शिष्टता है जो शोषक मन चाहे काम करवाते हैं।

'और गधा यह मारे पीटे और सताये
जितना जी चाहे मनचाही घात घतायें
क्या जाने विरोध कहते है इसे शिष्टता
जैसा जी चाहे जीवन के सूत कतायें।'[3]

1- अरघान, पृ0 58
2- चैती, पृ0 49
3- तुम्हें सौंपता हूँ, पृ0 62

शासन की दुर्व्यवस्था पर कवि को बड़ा असन्तोष है।कवि कहता है कि यदि मैं भी जानवरों के साथ पानी पी लूं तो शासन मुझे जेल भेज देगा क्योंकि आज देश की व्यवस्था कितनी ऊँची है, सुखमय है, दुख कहीं है ही नहीं। यहाँ विपरीत अर्थ की अभिव्यक्ति है जिसे वक्रोक्ति व्यक्त करतीहै -

"जानवरों की भीड़, उसी के साथ भी कहीं
मैं भी पी लूं तो निश्चित है मुझे व्यवस्था
तुरन्त जेल भेज देगी, स्वदेश कीआज अवस्था
इतनी उन्नत है, सुखमय है, दुःख कहीं नहीं है।"[1]

इसी प्रकार उस धर्म से क्या लाभ जो दुर्बलों से सहानुभूति न रखे। और उस धर्म से क्या लाभ जहाँ गन्दगी बनी हो। कवि के शब्दों में—

"बैठ धूर पर किया भागवत का पारायण
काम क्या किया - शिव शिव नारायण नारायण।"[2]

यहाँ वक्रोक्ति के द्वारा कवि यह कहना चाहता है कि स्वच्छता के बिना धर्म कर्म व्यर्थ है। उसी प्रकार अन्य ग्रन्थोंमें भी वक्रोक्ति के अनेक उदाहरण प्राप्त है।जिन्हें विस्तार भय से नहीं गुठलाया जा सकता। प्रायः इनकी वक्रोक्तियाँ शासन के प्रति अथवा समाज के प्रति होती है। जो चुटीली होने के कारण अत्यन्त मार्मिकतायी हैं और अपने प्रभाव से पाठक को चमत्कृत करती है।

<u>श्लेष अलंकार</u> :- यद्यपि श्लेष एक चमत्कार पूर्ण अलंकार होता है जिससे त्रिलोचन का कोई सरोकार नहीं है किन्तु स्वाभाविक रूप से कथित स्थल पर इसके उदाहरण मिल जाते हैं। उदाहरणार्थ — 1953 के महाविनाशकारी बाढ़कुंभ में दुखायन (दुष्ट

1- उस जनपद का कवि हूं, पृ0 83

2- वही, पृ0 87

शासन की दुर्व्यवस्था पर कवि को बड़ा असन्तोष है। कवि कहता है कि यदि मैं भी जानवरों के साथ पानी पी लूँ तो शासन मुझे जेल भेज देगा क्योंकि आज देश की व्यवस्था कितनी ऊँची है, सुखमय है, दुख कहीं है ही नहीं। यहाँ विपरीत अर्थ की अभिव्यक्ति है जिसे वक्रोक्ति व्यक्त करतीहै –

"जानवरों की भीड़, उसी के साथ भी कहीं
मैं भी पी लूँ तो निश्चित है मुझे व्यवस्था
तुरन्त जेल भेज देगी, स्वदेश कीआज अवस्था
इतनी उन्नत है, सुखमय है, दुःख कहीं नहीं है।'[1]

इसी प्रकार उस धर्म से क्या लाभ जो दुर्बलों से सहानुभूति न रखे। और उस धर्म से क्या लाभ जहाँ गन्दगी बनी हो। कवि के शब्दों में—

"बैठ घूर पर किया भागवत का पारायण
काम क्या किया – शिव शिव नारायण नारायण।'[2]

यहाँ वक्रोक्ति के द्वारा कवि यह कहना चाहता है कि स्वच्छता के बिना धर्म कर्म व्यर्थ है। उसी प्रकार अन्य ग्रन्थोंमें भी वक्रोक्ति के अनेक उदाहरण प्राप्त है। जिन्हें विस्तार भय से नहीं उठलाया जा सकता। प्रायः इनकी वक्रोक्तियाँ शासन के प्रति अथवा समाज के प्रति होती है। जो चुटीली होने के कारण अत्यन्त मार्मिकलगती हैं और अपने प्रभाव से पाठक को चमत्कृत करती है।

श्लेष अलंकार :– यद्यपि श्लेष एक चमत्कार पूर्ण अलंकार होता है जिससे त्रिलोचन का कोई सरोकार नहीं है किन्तु स्वाभाविक रूप से एकाध स्थल पर इसके उदाहरण मिल जाते हैं। उदाहरणार्थ — 1953 के महाविनाशकारी महाकुंभ में दुशासन (दुष्ट

1- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 83

2- वही, पृ0 87

शासन, दुर्योधन का छोटा भाई) को इस काण्ड का उत्तरदायित्व देता हुआ कवि कहता है — "महामरण का चण्ड गदाभिघात झेला था

मूक देश ने दुःशासन का याद आज भी

हूक जगा देती है, पवि तले ढेला था।"[1]

कवि किन लोगों के लिए लिखता है इस बात को बतलाता हुआ कहता है कि मैं घूमने वाले व्याकुल प्यासे लोगों के लिए लिख रहा हूँ, मेरा यह मानस(मानसरोवर, हृदय) उन्हीं के लिए है —

"कहीं नहीं इन्हें नहीं। मैं उन्हें बुलाता

हूँ जो घूम रहे हैं व्याकुल प्यासे प्यासे

यह मानस है उन्हीं के लिए, मंद हवा से

लहराना बस नहीं, कुछ नहीं इस से आता।"[2]

त्रिलोचन जी के काव्य में श्लेष बहुत कम हैं किन्तु जहाँ पर हैं वहाँ बड़े सरल और स्वाभाविक है। यथा —

"हम जो जीवन का घर बनाएँगे

उसको मानव का वर बनाएँगे

जिस से गूँजा करें घर पुर वन पथ

ऐसे कुछ शब्द स्वर बनाएँगे।"[3]

यहाँ पर वर के दो अर्थ हैं — वर का अर्थ वरदान, दूसरा अर्थ श्रेष्ठ। अतः श्लेष अलंकार स्वाभाविक रूप में आ गया। इसी प्रकार एक अन्य उदाहरण देखिये —

'फूल देखा विजन में खिला था'[4]

1- अरधान, पृ0 63

2- अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ0 94

3- गुलाब और बुलबुल, पृ0 139

4- सबका अपना आकाश, पृ0 46

यहाँ पर विजन शब्द में श्लेष अलंकार है विजन — एकान्त, वन। यहाँ पर या तो वन के खिले हुए फूल का अर्थ मान ले अथवा निर्जन में एकान्त में खिले हुए फूल का अर्थ मान लें दोनों की संगति बैठती है।

इस प्रकार त्रिलोचन श्लेष में अधिक नहीं रम सके और न ही इन्होंने प्रयास ही किया है। फिर भी जो श्लेष बिना बुलाये आ गए उनका उन्होंने स्वागत किया है।

उपमा अलंकार — यह एक ऐसा अलंकार है जिसे काव्य की अर्थ गरिमा स्वतः बढ़ जाती है। अतः त्रिलोचन की कवि प्रतिभा नयी-नयी उपमाओं की झड़ी लगा देती है। उनके उपमान और उपमेय का नया प्रयोग उन्हें आधुनिकतम कवियों का मार्गदर्शक बना देता है। उन्होंने अपनी उपमाओं का क्षेत्र बहुत विस्तृत कर लिया है। एक ओर वे धरती से आकाश तक की दौड़ लगा लेते हैं दूसरी ओर अन्तः करण की सूक्ष्मतम पर्तों का भी चित्रांकन कर लेते हैं। इस प्रकार जहाँ न जाए रवि वहाँ जाए कवि इस उक्ति को चरितार्थ करने में सिद्धहस्त दिखलायी पड़ते हैं। उपमाओं के व्यापक प्रयोग के कारण हमें अपने उक्त कथतव्य के लिए कुछ अधिक उदाहरणों की आवश्यकता होगी इस लिए समीचीन यह होगा कि सर्वप्रथम त्रिलोचन की उपमाओं का वर्गीकरण किया जाए और प्रत्येक वर्ग की समीक्षा करके नये निष्कर्ष तक पहुचने की चेष्टा की जाए। अतः उनकी उपमाओं को तीन वर्गों में विभाजित कर सकते हैं —

(1) प्राकृतिक उपमा

(2) भौतिक उपमा

(3) सूक्ष्म उपमा

प्राकृतिक उपमा :— जिन उपमाओं को कवि ने प्रकृति के अंचल से गृहीत किया है उन्हें इस वर्ग के अन्तर्गत रखना चाहिए।

(क) "नव बसन्त खिला जब भाग्य सा
भुवन में तब जीवन आ गया।"[1]

यहाँ पर कवि ने बसन्त की उपमा भाग्य से दी है जिस प्रकार भाग्य सुख सौरभ बिखेरता है उसी प्रकार बसन्त भी। अतः ये नवीन उपमा है।

(ख) इसी प्रकार प्रकाश के रंगों के लिए कवि आकाश गंगा की उपमा देता है – "सधे आवर्तों में घिर कर कई प्राण बहके
इन्हीं में रंगों की लहर उमड़ी व्योम सरिसे।"[2]

(ग) "खिलो-मिलो फिर एक डाल के
खिले फूल से मत अलगाओ।[3]

यहाँ पर कवि ने डाल के पुष्पों की भाँति समाज में एक साथ मिलकर विकास करने की बात कही है। यद्यपि यह उपमा नयी नहीं है किन्तु फिर भी उसमें प्रभाव - कारिता है।

(घ) तट के तरु सा दुनिया में ऐसे बेचारे
भी होते हैं अपने ऊपर रोता गाता।"[4]

यहाँ पर कवि ने बेचारे एकाकी रोते-चिल्लाते व्यक्ति के लिए सरिता के किनारे उगे हुए वृक्ष की उपमा दी है।

(ङ) शरद ऋतु में नील नभ का सौन्दर्य धरा वधू को आकृष्ट करता है जब मध्यान्ह का समय होता है तब सुनहरी धूप कितनी सुन्दर लगती है। इसका चित्रण करता हुआ कवि कहता है –" ढली दुपहर, होगया अनूप
धूप का सोने का सा रूप
पेड़ की डालों पर कुछ देर
हवाकरती है दोल विलास।"[5]

1- वैतीपृ0 84
2- वही, पृ0 43
3- तुम्हें सौंपता हूँ,पृ0 40
4- अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ0 52
5- सबका अपना आकाश, पृ0 15

इस उपमा के द्वारा कवि ने शरद की धूप में कान्ति, सौन्दर्य और बहुमूल्यता की व्यंजना की है जिससे उपमा की अर्थवत्ता स्पष्ट हो गयी है।

वर्षा के दिनों में जब घन घिर घिर आते हैं उस समय भूमि रंग बिरंगीहो जाती है। उस समय पेड़ पौधे कवि को उपहार के रूप में प्रतीत होते हैं।

(ब) " घिर-घिर घन आए, व्योम में गान गाया,
फिर-फिर नव वर्षा नृत्य अपना दिखा के
जल बनकर छाई, भूमि ने रंग पाए
खिल-खिल कर पौधे भेंट जैसे खड़े हैं।"[1]

यहाँ पर कवि ने पौधों के लिए उपहार की कल्पना करे कितनी सुन्दर कोमल, मधुर और नवीन उपमा का प्रारूप प्रस्तुत किया है।

सूक्ष्म से स्थूल के लिए उपमा देना और स्थूल की सूक्ष्म से उपमा देना यह छायावादी काव्य की एक मुख्य विशेषता रही है। त्रिलोचन में भी यह प्रभाव देखा जा सकता है। अपनी प्रेयसी के सम्बन्ध में कवि का कहना है कि जब स्वप्निल साधना में तुम्हारी मंजुल मूर्ति आँखों में उतरने लगती है, तब मेरा मन इस तरह उड़ान भरने लगता है जैसे नये-नये कोमल पंखों को लेकर खग शावक उड़ता है।

"नयी-नयी पाँखों से
जैसे खग शावक उड़ता है मन यह न्यारी
गति लेकर उड़ान भरने लगाता
वैसे ही सोते जगते।"[2]

विश्लेषणकरने पर यह कितनी कोमल-मधुर एवं नवीन उपमा लगती है। मन जैसे सूक्ष्म तत्व के लिएखग शावक की कल्पना बिल्कुल नवीन है और मन की विचित्र गति

1- अरधान, पृ0 10

2- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 23

के लिए खग-शावक के नवीन पंखों की कल्पना तो सर्वथा नवीन ही लगती है। प्रेम के परिप्रेक्ष्य में जैसे कोमल और मनोहर उपमाओं की अपेक्षा की जाति है उसे कवि ने कितनी सफलता के साथ चुना है। ऐसी उत्कृष्ट उपमायें चुनना त्रिलोचन जैसे मूर्धन्य कवियों का ही काम है।

<u>भौतिक उपमा</u> :— त्रिलोचन मूलतः धरातल के कवि है इसलिए उन्होंने अनेक सुंदर सुन्दर उपमायें भौतिक धरातल के अंचल से दी हैं। इनके कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं-

(क) "प्राणी भटक रहा है, शायद यहीं कहीं है
नाभि-देश में मृग के कस्तूरी कल्याणी
रहती है, क्या वैसे ही यह जीवन धारा
मेरे भीतर लहराती है।"[1]

यहाँ पर कवि ने जीवन धारा को हर व्यक्ति में गुप्त रूप से लहराती हुई माना है और उसे उपमित करने के लिए मृग के नाभि देश में बसी हुई कस्तूरी का उपमान चुना है। यह चयन भ। कितना उपयुक्त है। जीवन धारा कितनी सूक्ष्म है कितनी बहुमूल्य है। कस्तूरी की उपमा सर्वथा उसके उपयुक्त है।इसमें कवि ने चिन्तन से काम लिया है और कबीर की वाणी —

"कस्तूरी कुण्डल बसै मृग ढूंढै बन माहि।
ऐसे घट-घट राम हैं दुनिया जानत नाहि।'[2]

से मृग कस्तूरी का दृष्टान्त लेकर कस्तूरी के स्थान पर जीवन धारा को स्थापित कर दिया है। इस प्रकार इसमें उनकी अर्थ मौलिकता ही सही किन्तु चिन्तन की सूक्ष्मता तो स्पष्ट है ही।

1- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 22

2- कबीर ग्रन्थावली, से उद्धृत

ख) जीवन पथ पर बढ़ने वाला धीर पथिक अपने दृढ़ निश्चय से जब आगे बढ़ता जाता है तब बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ स्वतः अपने हाथ फैलाकर उसे अपने सिर पर चढ़ लेती हैं। इसकेलिए कवि की उपमा देखिए —

(ख) दीर्घ कर जैसे बढ़ा कर
शीश पर अपने चढ़ाकर
मत्त गज सा अद्रि
समुदित सूर्य की पूजा सवारे।'[1]

यहाँ पर पर्वत(महान संकट) के लिए मत्त गज से उपमा देकर कवि ने सराहनीय कार्य किया है। वस्तुतः दृढ़ निश्चय के साथ आगे बढ़ने वाला व्यक्ति ही तो उदीयमान सूर्य है, जिसके सामने पर्वत समान दृढ़ परिस्थितियाँ भी झुक जाती हैं। स्वतः उस व्यक्ति को अपने हाथ बढ़ाकर उसे अपने सिर पर बिठा लेती हैं। यहाँ पर अद्रि के लिए मत्त गज की कल्पना नवीन तो नहीं है क्योंकि मेघदूत में कालिदास ने बादल के लिए मत्त गज की कल्पन की है।'[2] किन्तु उस प्रेरणा को सँवारने का काम कवि बुद्धि का प्रयास है। वस्तुतः एक उर्दू के शायर ने भी कुछ ऐसा ही लिखा है —

"कदम चूम लेती है मंजिल खुद आके
मुसाफिर अगर अपनी हिम्मत न हारे।'

इस प्रकार त्रिलोचन अन्य स्थलों से भी प्रेरणा लेकर अपनी जिन उपमाओं को निर्मित करते हैं उनमें अपने चिन्तन की छाप अवश्य लगा देते हैं।

कभी-कभी त्रिलोचन भौतिक जीवन के ठोस धरातल पर आकर खड़े हो जाते हैं, वे जनता की भीड़-भाड़ में रम कर वहाँ से भी उपमायें संगृहीत करते

1- सबका अपना आकाश, पृ० 30

2- आषाढस्य प्रथम दिवसे मेघमाश्लिष्ट सानुम।
वप्रक्रीडापरिणत् गज प्रेक्षणीयम् ददर्श।। (मेघदूत, पूर्वमेघ, श्लोक 1)

हैं। 1953 के कुम्भ में जनता की इतनी भीड़ थी एक के ऊपर एक ठसे हुए लोग भारी दबाव में खड़े हुए थे और किसी भी प्रकार हिल पाना कठिन था। कवि इस परिस्थिति में अचल खड़ी भीड़ के लिए उपमा देता है —

"भीड़ कस उठी थी पच्चर से लोग बन गए
वह दबाव था जो भर किसी तरह हिल पाना।
अब असाध्य था खड़े लोग निरुपाय तन।"[1]

यहाँ पर व्यक्ति के ऊपर सटकर खड़े होने वालों के लिए 'पच्चर(की उपमा दी गयी है। जब कोई पहिया कुछ ढीला हो जाता है तब उसे कसने के लिए लकड़ी की ही एक मजबूत कील उसमें ठोंक दी जाती है जिससे वह लकड़ी का पहिया कस जाता है, टस का मस नहीं होता उसी को पच्चर कहते हैं। कवि ने यह उपमा ग्रामीण अंचल से अपनी अनुभूति के आधार पर चुनी है समें भी उनकी प्रगतिशीलता खुलकर बोलती है यह है ग्रामीण जीवन की अनुभूति जिसे नागरिक सभ्यता वाले व्यक्ति कम सहज सकते हैं।

कुम्भ की भीड़ इतनी थी कि जनता आगे नहीं बढ़ पा रही थी। ये उसकी असमर्थता थी वह उसी स्थान पर खड़ी हुई आगे बढ़ जाने के लिए झूमते हुए बंधे हाथी के समान लगती थी —

(घ) "उसको देखो, भीड़ ठाव पर झूम रही है,
बंधे हुए हाथी सी ऊंचे बांध से बढ़ा।"[2]

इस उपमा में भी कवि ने अपनी बुद्धि कौशल का परिचय दिया है। भीड़ की असमर्थता उसकी बलिष्टता और उसकी मस्ती या कसमसाहट को कवि ने बड़ी सुन्दरता के साथ चित्रित किया है। भीड़ के लिए बंधे हुए हाथी की ि कल्पना बिल्कुल नवीन प्रयास है।

1- अरधान, पृ0 55 2— अरधान, पृ0 54

कवि ने अपने जीवन पर नियंत्रण रखने का व्रत लिया है, वह कहता है कि जिस प्रकार कोई घुड़सवार अपने घोड़े को नियंत्रित करता है, स्वेच्छा से चलाता है जहाँ चाहे मोड़ देता है इसी प्रकार कवि अपने जीवन को भी नियंत्रित करने का संकल्प लेता है —"जीवन का इस तरह करूँगा जैसे कोई

पक्का घुड़सवार अपने घोड़े का करता।"[1]

यहाँ पर जीवन के लिए घोड़े की कल्पना और अपने लिए घुड़सवार की कल्पना कितनी अच्छी है। इसकी प्रेरणा भी महाभारत के उस श्लोक से मिली प्रतीत होती है जहाँ पर 'रथः शरीरं पुरूषस्य राजन्' कहकर व्यास जी ने इन्द्रियों को अश्व अश्व कहा है। उन्होंने इन्द्रियों को अश्व न कहकर जीवन को अश्व कहा है। इस इतना ही तो अन्तर है।

कवि भौतिक क्षेत्र की उपमाओं में बढ़ता हुआ भौगोलिक क्षेत्र का भी वर्णन कर लेता है। यथा — "अचरज है मुझको कि त्रिलोचन कैसे इतना

अच्छा लिखने लगा— धरातल उसके स्वर का

तिब्बत के पठार सा ऊँचा अब है।"[2]

यहाँ पर कवि ने अपने से स्पर्धा करने वाले व्यक्तियों की ओर से स्वयं अपने काव्य स्तर के लिए तिब्बत के पठार से भी अधिक ऊँचा कहलवाया है। कहाँ लेखन स्तर की सूक्ष्मता (अशरीरीपन) और कहाँ उसके लिए तिब्बत के पठार से भी अधिक ऊँचाई की मूर्तरूप परिकल्पना। दोनों अपूर्व हैं। तिब्बत का पठार भारत के पठारों में सबसे ऊँचा है, अतः इससे यह स्पष्ट व्यंजना होती है कि त्रिलोचन के कटुआलोचक उन्हें प्रगतिशील लेखन धारा में सर्वोच्च समझकर उनसे ईर्ष्या करते हैं।"

1- अनकहनी भीकुछ कहनी है, पृ0 47

2- तुम्हें सौंपता हूँ, पृ0 58

(छ) "सड़कें धुली-धुली हैंजैसे तेल लगी त्वचा हाथी की।" [1]

यहाँ पर बरखा के दिनों में धुली हुई स्वच्छ तथा चमकती हुई सड़कों केलिए तेल लगी हाथी की त्वचा से उपमा देकर कवि ने नवीनता की खोज की है जो अपने में एक सुन्दर तथा नयी कल्पना है। जड़ के लिए चेतन की यह कल्पना प्रगतिशील कवियों ने भी अपनायी है। क्योंकि इसमें एक नयापन है और अर्थ की अभिव्यंजना भी विद्यमान है।

सूक्ष्म उपमा ,—

त्रिलोचन ने अपनी उपमाओं का विस्तार भौतिकता के स्थूल दायरे तक ही सीमित नहीं रखा अपितु उसमें सूक्ष्म से सूक्ष्म उपमाओं का भी वर्णन किया है जो अपने में नवीन होते हुए भी प्रभावशील और सार्थक है। कतिपय उदाहरणों से इस बात की पुष्टि की जायेगी।

(क) "इन दिनों तुम बहुत याद आए
जैसे धुन राग के बाद आए।" [2]

यहाँ पर कवि ने संगीत की सूक्ष्मता में उतर कर कमाल किया है, संगीत में राग प्रथम होता है और ध्वनि उसके बाद। और एक ही राग को बार-बार विभिन्न गुणों में गाया जाता है। कवि ने इस सूक्ष्मता को बड़ी बारीकी से समझने की चेष्टा की है। यहाँ पर स्नेह के लिए रात्रि की परिकल्पना और तीव्र स्मृतियों के लिए धुन की परिकल्पना सूक्ष्मतम है। जिस प्रकार राग प्रथम होता है, उसीप्रकार दो व्यक्तियों के बीच स्नेह प्रथम होता है, और जिस प्रकार स्नेह के बाद ही वियोग में स्मृतियाँ धनीभूत हो जाती है। बार-बार आती हैं, विभिन्न रूपों में आती हैं

1- चैती, पृ० 20

2- तुम्हें सौंपता हूँ, पृ० 74

और हृदय को स्पंदित कर देती है। यही विशेषता तो संगीत की ध्वनियों में होती है। कितनी सूक्ष्मता और गम्भीरता में पैठकर त्रिलोचन ने इतनी अनुपम सूक्ष्म उपमा देकर एक अच्छे संगीतज्ञ एवं उच्च साहित्यकार होने का प्रमाण दिया है। यह उपमा की नवीनता एवं सूक्ष्मता का मानदण्ड।

(ख) "द्वेष आपसी नहीं घटा, दाजिरिसी बढ़ी पाप सी
है दिन पर दिन पूरब पश्चिम दक्खिन उत्तर।"[1]

यहाँ पर कवि ने अपने सामाजिक जीवन से असन्तोष व्यक्त किया है और सामन्तों तथा पूँजीपतियों की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई जोर जबरदस्ती के लिए पाप से उपमा दी है। क्योंकि पाप भी उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता है। यह उपमा सूक्ष्म है क्योंकि पाप का कोई आकार नहीं होता। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से पाप प्रवृत्ति उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है। जैसे —

'जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई' की बात तुलसी ने लिखी है, उसी-प्रकार यदि कहना चाहें तो कह सकते हैं 'जिमि प्रतिपाप पाप अधिकाई। प्रत्यक्षरूप में भी हम समाज में देखते हैं कि कोई भी पापी एक बार पाप करने में संकुचित होता है, फिर तो वह उसकी प्रवृत्ति बन जाती है और फिर उसे बार-बार करने में भी किसी प्रकार का संकोच नहीं होता। अस्तु कवि ने वर्तमान जीवन की तह में बैठ कर यह एक नयी एवं सुन्दर उपमा दी है। वह उसकी मौलिकता का प्रमाण है।

त्रिलोचन ने हर क्षेत्र से नवीन उपमायें चुनी हैं। उनके जीवन की अनुभूतियों ने उन्हें इनके चयन में बड़ी सहायता दी है। जिस प्रकार बिना बेहोश किये हुए कोई हृदय का आपरेशन करें, ठीक उसी प्रकार त्रिलोचन को समाज के द्वारा

1- अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ0 77

प्राप्त दुख दर्द पीड़ित करते रहते हैं। इस उपमा को कवि ने अपने शब्दों में इस प्रकार बाँधा है —

(ग) "माँस पेशियों का मंथन, उस का क्या कहना,
चेतनता का रक्त बूँद बन-बन कर धीरे
धीरे बहना, तड़पों का पीछे आ रहना
ओठों के जैसे कोई अंतस्तल चीरे
बेसुध किये बिना वैसे ही मुझ को पीड़ा
बार-बार व्याकुल करती थी और विवश था।"[1]

यहाँ पर वेदना को साकार करने के लिए कवि ने बिना बेसुध किये हृदय के आपरेशन की कल्पना की है, और अपने सामाजिक दर्द को इस भौतिक दर्द के साथ स्थापित किया है। कवि की यह सूक्ष्मता उसके कवि व्यक्तित्व का अद्भुत प्रमाण है।

(घ) "ये भी एक तुम्हारी लीला
नयन-नयन के छवि संग्रह में
जगत प्राण सी विहरणशीला"[2]

कवि उस जगत् नियंता से (अज्ञात से) कहता है कि जिस प्रकार प्राण वायु पूरे जगत में गतिशील है, ठीक इसी प्रकार से एक तुम्हारा ही सौन्दर्य प्रतिनेत्र के सौंदर्य में विहार करता हुआ प्रतीत होता है। यहाँ पर व्यष्टि द्वारा समष्टि का प्रभावित होना मुख्य तथ्य है। कवि उस अज्ञात के लिए प्राणवायु की उपमा देता है। उसे भी सर्वव्यापक बनाया है। इस प्रकार सूक्ष्म से सूक्ष्म की उपमा देकर कवि ने अपने सूक्ष्मतम अन्तर दर्शन का परिचय दिया है। इस प्रकार त्रिलोचन की ये सूक्ष्म उपमायें अपने में बेजोड़ हैं। उपमाओं के इतने विवेचन की पश्चात् मैं इसी निष्कर्ष पर पहुँचती हूँ

1- अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ0 92

2- सबका अपना आकाश, पृ0 23

कि यह कवि प्रकृति और जीवन में समान आस्था रखता है। यह कह पाना कठिन है कि वह प्रकृति का अधिक पक्षपाती है या जीवन का। मेरे विचार से उसकी अनन्य सहचरी प्रकृति में ही उसे जीवन के कठोरतम मार्ग का अभ्यासी बनाया है। कवि ने प्रकृति से सहायता लेकर धरती की कठोरता को सह सकने का पाठ पढ़ा है। उपमाओं की उसकी यह विशिष्ट यात्रा प्रकृति से होकर ही जीवन की धरती में उतरी है। और यदा कदा धरती की उस कठोरता से ऊब कर वह सूक्ष्म उपमाओं के क्षेत्र में पहुंचकर क्षणिक विश्राम करती हुई सी प्रतीत होती है। इनके काव्य में उपमाओं के प्रति कवि का जो स्वाभाविक अनुराग प्रतीत होता है, उससे यही लगता है कि सम्भवतः यह उपमा अलंकार उनकी अन्तः प्रकृति का या उनके कवित्व का दर्पण बन गया है। अन्यथा उन्होंने इतनी अधिक मात्रा में उपमाओं का प्रयोग न किया होता। इस पर भी यह कहना न होगा कि उनकी उपमाओं में नवीनता मौलिकता एवं प्रांजलता है, जो उनके कवित्व को सुशोभित करती है और आधुनिक लेखकों को नयी दिशा देकर उन्हें कवित्व के सूक्ष्म उत्तरदायित्व से परिचित कराती है।

<u>उत्प्रेक्षा अलंकार</u> :— इस अलंकार में उपमेय में उपमान की सम्भावना की जाती है। यह सम्भावना कल्पना ही है और यह कल्पना जितनी ही ऊँची होती है काव्य में उतना ही चमत्कार आ जाता है। त्रिलोचन चमत्कारवादी कवि तो नहीं है किन्तु उनमें कवित्व प्रतिभा की एक विचित्र शक्ति विद्यमान है, जिसके कारण बिना किसी आयास के काव्य गुण उनकी कविता में उपस्थित हो जाते हैं। यह बात उनकी उत्प्रेक्षाओं के सम्बन्ध में भी है। इनकी उत्प्रेक्षायें सरल और स्पष्ट हैं, किन्तु इनमें कवि का दृष्टि-कोण किसी न किसी गम्भीरता की ओर इंगित करता है, यही इनकी उत्प्रेक्षाओं की विशेषता है। इनकी उत्प्रेक्षाओं का वर्गीकरण कर देना अधिक उचित है। इस दृष्टि से इनकी उत्प्रेक्षायें भी दो वर्ग में विभाजित की जा सकती हैं।

(1) प्रकृति विषयक उत्प्रेक्षायें

(2) समाज विषयक उत्प्रेक्षायें

यहाँ पर इन दोनों का क्रमिक विवेचन प्रस्तुत करते हुए यह निष्कर्ष निकालने की चेष्टा की जायेगी कि किस क्षेत्र की उत्प्रेक्षाओं में कवि की प्रवृत्ति अधिक रमी है और क्यों?

(1) प्रकृति विषयक उत्प्रेक्षायें :—

(क) "पेड़ की डालों पर कुछ देर
हवा करती है दोल विलास।"[1]

शरद ऋतु के सन्दर्भ में कवि मध्यान्ह काल में चलती हुई मन्द वायु के झकोरों से वृक्षों की डालियाँ झूला झूलती हुई सी प्रतीत हो रही है। यहाँ पर कवि ने प्रकृति के स्वाभाविक उल्लास की अभिव्यंजना की है और मानवीकरण के द्वारा शरद ऋतु में प्रकारान्तर से मानव जीवन की औउदात्त गति का संकेत किया है।

(ख) "और तम के सिंधु कज्जल
उषा रँग जाती रही है
सर्वदा सक्रिय दिवा है
वह किसी शिव की शिवा है।"[2]

यहाँ पर गीतों के रूप में कवि ने अपने भावों को ही विश्व मानव के समक्ष प्रस्तुत करते हुए यह कहा है कि जब निराशा के घनघोर अन्धकार का साम्राज्य आता था तब उसे उषा के रंगीन रूप में परिणित करने का कार्य मेरे गीत ही करते थे। उन गीतों से आशा का दिव्य प्रकाश फैल जाता है जो लोक कल्याण के देवता शिव की शक्ति पार्वती सी प्रतीत होती है। यहाँ पर दिवा के लिए शिवा की परिकल्पना एक सुन्दर उत्प्रेक्षा है। यहाँ पर प्रकृति मानव जीवन को इतनी मात्रा में दूर-दूर तक प्रभावित

1- सबका अपना आकाश, पृ0 15   2- सबका अपना आकाश, पृ0 25

करती है, इस बात की सफल व्यंजना हुई है।

(ग) हवा गा रही है तरू दल पर नीरवता में
धुली हुई चाँदनी किसी को खोज रही है।'[1]

यहाँ पर कवि ने वायु के संगीतात्मक परिवेश का चित्रण करके स्तब्ध वातावरण में निर्मल चन्द्रिका द्वारा किसी अव्यक्त के खोजने की कल्पना की है।

(घ) मौर फूल का बाँध कर रहा मुझे इशारा
पास पहुँचने का बबूल एकाकी प्यारा।"[2]

इस उत्प्रेक्षा में कवि ने अपने मन भाये फूल बबूल के सम्बन्ध में कल्पना की है, मानो बबूल का पेड़ अपने सिर के ऊपर पीले पुष्पों की मौर बाँधकर मुझे अपने पास आने का संकेत करता है। इस उत्प्रेक्षा में कवि का उद्देश्य यह है कि यद्यपि बबूल उपेक्षित वृक्ष है लेकिन मुझे उपेक्षितों से प्यार है। जैसे विवाह में दलित वर्ग के लोग विवाहोत्सव में वर के सिर पर पीले रंग की मौर बाँधते हैं और अपने प्रियजनों को आमंत्रित करते हैं, इसी प्रकार वह बबूल अपने प्रिय त्रिलोचन को आमंत्रित करता है। यहाँ पर कवि की प्रगतिशीलता की ही अभिव्यंजना प्रतीत होती है।

कवि शिरीष के फूल को देखकर कल्पना करता है कि जैसे स्वयं कोमलता ही इसमें साकार हो गयी हो —

(ङ) यह शिरीष का फूल — स्वयं कोमलता जैसे
यहाँ हुई साकार पेड़ कितना विशाल है।'[3]

चमर के समान सुशोभित होने वाले इसके पुष्पों को देखकर कवि कल्पना करता है कि मानो शिरीष का वृक्ष फूलों से सुगंधित अपने अनेक चमरों को लेकर ऋतुराज बसन्त का अभिनन्दन कर रहा हो।

1- अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ0 62
2- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 65
3- वही, पृ0 53

"चमर तुल्य इस सरस सुमन से, शोभित ऐसे
मानों बहु चामरधारी तरू शिरीष का
करता हो ऋतुराज को चँवर, मन्द गंधमय फूलों से
जो हरित कपिश आरूढ़ छन्दमय गेय गीत से है।'[1]

यहाँ पर कवि की कल्पना कितनी सूक्ष्म हो गयी है। इसे कवि हृदय ही समझ सकता है।

((ब) "तृण हरित समेटे ताल ध्यानस्थ से है
ध्वनि उमड़ रही है वायु में सारसों की।'[2]

यहाँ पर कवि ने हरी-हरी घास से सुशोभित होने वाले तथा निश्चल जल वाले तालाब के लिए यह कल्पना की है कि जैसे ये ध्यान लगाये हुए बैठे हो। यह कल्पना उन योगियों के लिए की जा सकती है जो अपनी इन्द्रियों को केन्द्रित कर ध्यान योग में मग्न हो जाते हैं। इस प्रकार ये कल्पना भी सूक्ष्म एवं नवीन है।

(छ) 'डालियों के बढे हुए कूचों में
अधखिली कलियाँ सँभाले /जान पड़ता है /
संध्या की / रात की,/ शीतल पवन की /
और तारों से चुहल आकाश की
आकुल प्रतीक्षा कर रहा है।'[3]

यहाँ पर कवि ने महुये के वृक्ष का मानवीकरण करते हुए ये कल्पना की है कि मानों ये वृक्ष अपने पुष्पादि उपहारों को लेकर आने वाली रात्रि, शीतल पवन तथा तारे भरे आकाश की प्रतीक्षा कर रहा है। प्रगतिशील दृष्टिकोण से यह उत्प्रेक्षा भी कोमल, स्पृहणीय एवं भावमय है।

1- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 53

2- वही, पृ0 53

3- अरघान, पृ0 23

समाज विषयक उत्प्रेक्षायें :—

कवि की समाज विषयक उत्प्रेक्षायें मात्रा में कम तो हैं लेकिन जितनी हैं वे अपने में महत्वपूर्ण हैं। कुम्भ की भीड़ में अनेक व्यक्ति फंसे हुए थे भीड़ रूपी सर्प का मुख खुला हुआ था उसके दांत ऐसे दिखते थे मानों मुर्दा हंस रहा हो। कैसी भयंकर उत्प्रेक्षा है, जिसमें परिस्थिति की मार्मिक व्यंजना है।

(क) एक व्यक्ति भीड़ के नाग का वदन खुला था
दांत दीखते थे मानो शव हंसा हुआ था।'[1]

भयंकर अकाल पड़ने पर किसान का मन अशान्त हो गया है। आकाश के तारे भी उसे भयानक लगते हैं मानो अकाल अपने दांत निकालकर अट्टहास कर रहा हो। उत्प्रेक्षा का यह भीषण रूप कितना तीव्र है।

(ख) हंसता है अकाल तारों के दांत निकाले
मन किसान का मेरा, चैन नहीं पाता है।'[2]

जीवन की सूक्ष्मता पर उतरने पर कहीं कहीं कवि दार्शनिक बन कर कल्पना करने लगता है। मानों जीवन से बहुत दूर कहीं छिपकर मौत अपने बाण चला रही हो, जिससे संसार दुखी और उदास है, उसका कुछ अनुमान भी नहीं कर पाता।

मरण जीवन से कितनी दूर
कर रहा छिप कर शर संधान
चल रहा है जग दुखी उदास
न कुछ भी भान न कुछ अनुमान
इसी में है घट का उल्लास।'[3]

1- अरधान, पृ0 5।
2- अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ0 75
3- सबका अपना आकाश, पृ0 19

जीवन के विकट बन में भी भटकता हुआ कवि जब चिन्तन के क्षेत्र में मन की गाँठ खोलने लगता है, तब उसके मन की मौन लहर पथ में भटकी हुई सी कुछ- कुछ डरती हुई सी धीरे-धीरे आगे बढ़ती है। कवि के शब्दों में —

'उठती है मन की मौन लहर
धीरे धीरे कुछ ठहर-ठहर
भटकी सी पथ पर सिहर-सिहर।[1]

जीवन में आँसुओं की भरमार है। कवि के पास अपने ही नहीं पराये आँसू भी है। और जिन पर आँसू बहाये गये हैं, वे अकरूण हृदय हैं। जिन्हें हम पत्थर की भाँति जड़ कह सकते हैं। कवि ने उत्प्रेक्षा के माध्यम से इस अन्तर वेदना का बड़ा ही मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है।

देखा ये पत्थर के ऊपर चुए हैं
चुपके से चू-चू कर चुप हुए हैं
सूने में अटके अभी अनछुए हैं
काँधे हैं मैं ने बढ़ के नगरिया में।'[2]

कवि ने यह जीवन निष्कर्ष निकाला है कि मानव जीवन के लिए गीत और फूल ये दो वरदान है। इस पर उत्प्रेक्षा करता हुआ कवि कहता है कि यही दोनों साँसों की गति के सरगम हैं। इन्हीं में अखिल सृष्टि-सौन्दर्य समाया हुआ सा है।

'गीत फूल ये दो जीवन के दान हैं
साँसों की गति के सरगम हैं मान हैं
मन में समा की गई सुषमा के ध्यान हैं
मधुर तान हैं व्योम बिहारी पक्षी के दिन रात।[3]

1- सबका अपना आकाश, पृ0 56
2- वही, पृ0 69
3- वही, पृ0 54

कवि ने अपनेविषय में भी कविताएँ लिखी हैं। जब उनके आलोचक यह कहते हैं कि त्रिलोचन जैसा लिखता है वह तो बिल्कुल सरल काम है, इस पर भी वह इतना प्रसन्न हैमानों उसने पाली जीत ली हो, इस स्थल पर उत्प्रेक्षा मानी जायेगी। कवि ने यहाँ पर ग्रामीण जीवन के मुहावरे 'पाला मारना' का प्रयोग करके आलोचना की तीक्ष्णता का परिचय दिया है। यह उत्प्रेक्षा ग्रामीण जीवन से सम्बद्ध है।

'फ़ालतू-सी चीज लिखता है, ऐसा लिखना
कौन कठिन है, रह न जाय दोषों का लिखना,
तो सबसे आसान काम है, इस पर फूला
है वह इतना मानो पाला मार लिया है।'[1]

उपर्युक्त उद्धरणों के अवलोकन से इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि त्रिलोचन ने अधिकांश उत्प्रेक्षायें प्रकृति के अंचल से ही गृहीत की हैं। उन्हीं में इनकी प्रवृत्ति अधिक रम सकी है। उनकी सामाजिक उत्प्रेक्षायें मात्रा में भी कम हैं और सौन्दर्य में भी। अस्तु ऐसा लगता है कि प्रकृति के साथ त्रिलोचन का रागात्मक सम्बन्ध है, और प्रगतिशीलता का आवरण उन्हें प्रकृति की सुरम्य गोद में विश्राम करने से उन्हें रोक नहीं सकता। यही उनके व्यक्तित्व की विशेषता है। वे बन्धन-विनिर्मुक्त होकर काव्य-रचना करते हैं। ऐसा कोई पैमाना नहीहै कि जिसके द्वारा उनकी कविता के विस्तृत-आयामों को नापा नहीं जा सकता। सम्भवतः यही कारण है कि प्रगतिशील कवियों की नयी लिस्ट में दस बन्धकवियोंमें समीक्षकों ने त्रिलोचन का नाम भी नहीं रखा+, जिसका उन्होंने एक कविता में उल्लेख किया है। कुछ भी हो, निस्सन्देह त्रिलोचन प्रगतिशील कवि हैं और उनकी प्रगतिशीलता में उनका प्रकृति-प्रेम कभी आड़े नहीं आता है। यदि कहीं ऐसा होता तो प्रगतिशील कवि 'केदार' की कविताओं में भी तो ग्रामीण-

---

1 उस जनपद का कवि हूँ, पृ० 109

प्रकृति के अनेक-रूप संजोये गये हैं। फिर भी वे प्रगतिशील कवियों की श्रेणी में गिने जाते हैं। अस्तु, प्रगतिशील कवि होने के लिए प्रकृति-चित्रण का व्यंग्य कोई अक्षम्य-अपराध नहीं है। और यदि हो भी तो त्रिलोचन कोई अक्खड़ व्यक्तित्व की परवाह ही कब करता है। वे जब लिखते हैं, तब मौज में आकर लिखते हैं, उस समय वे प्रगतिशीलता के दायरे की परवाह नहीं करते। उनका प्रगतिशील कवि स्वेच्छा से चौकड़ा भरने वाला वह स्वच्छन्द मृग है, जिसे किसी प्रकार का भी अवरोध पसन्द नहीं है। उनकी सशक्त टाँगें इन अवरोधों को एक ही छलांग में पार कर लेती हैं। इस प्रकार प्रगतिशील धारा में रहकर भी त्रिलोचन स्वच्छन्द हैं।

रूपक : —

जब उपमेय में उपमान का भेद हित आरोप होता है तब उसे रूपक अलंकार कहते हैं। त्रिलोचन ने अपने काव्य में सुन्दर से सुन्दर रूपकों का प्रयोग किया है। उन्होंने अधिकांश निरंग रूपक लिखे हैं। किन्तु यत्र-तत्र सांगरूपक भी मिल सकते हैं। ये रूपक भी प्रकृति एवं समाज से लिए गये हैं। कतिपय उद्धरणों द्वारा उनके रूपक सौन्दर्य पर प्रकाश डाला जा रहा है।

(क) मैं केवल दर्शक था / दृष्टि का प्रकाश-जल /
उर्मिल भी बंधा हुआ ? शांत / इस प्रकाश-जल को /
मर्यादा की परिधि ने / संस्कारों के बल से /
बांध कर रखा था / लेकिन / इस जल को /
लहरा देने वाला मन / बंधन से परे था।[1]

यहाँ पर प्रकाश रूपी जल का सांगरूपक प्रस्तुत किया गया है। इसमें कवि ने मर्यादा

1- धैती, पृ0 25

की परिधि और संस्कारों की परिधि की सामग्री बनाकर इस रूपक का निर्माण किया है इसलिए सांगरूपक है।

कवि की यह आकांक्षा है कि इस संसार रूपी कर्मक्षेत्र में हम आत्मा रूपी नया बीज बोयेंगे और इसके अंकुरों को अपने पर्याप्त रक्त से सींचेंगे। किसी का आक्रमण न होने देंगे। इस प्रकार मानवता रूपी खेती लहलहाती हुई हरी-भरी रहेगी और प्रेम से यह उत्तरोत्तर विकसित होता रहेगा। इस सांगरूप को कवि के शब्दों में देखिए —

'बोयेंगे हम कर्म-क्षेत्र अपना आत्मा नया बीज है
सींचेंगे लग ये प्ररोह इस के थोड़ा नहीं रक्त है
कोई हो अब और आक्रमण का दुर्योग देंगे नहीं,
खेती मानव की हरी लहलही फैले बढ़े प्यार से।'[1]

(2) हृदय सिन्धु की गहराई को तुमने थाहा।
क्या कोई सम्बन्ध पूर्व से ही था ऐसा।'[2]

यहाँ पर कवि ने हृदय रूपी सिन्धु का रूपक प्रस्तुत किया है जो परम्परित ही है।

(3) यह पुर यह पट्टन, यह न फिर पाऊँगा
साँसों के द्रुतगामी रथ पर नहीं रुका हूँ
चिर यात्री मैं, ठोकर खा कर नहीं झुका हूँ
क्षण भर को भी।'[3]

यहाँ पर कवि ने अपने को चिरयात्री और श्वासों के शीघ्र गामी रथ पर आरूढ़ माना है। दार्शनिक दृष्टि से यह कहा भी जाता है कि मनुष्य श्वासों के रथ पर बैठकर जीवन यात्रा के लिए निकलता है। इस प्रकार यहाँ यह रूपक दर्शन के क्षेत्र से चुना गया है।

1- चैती, पृ0 29

2- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 24

3- वही, पृ0 29

"चल अँधेरे में न जीवन दीप ठुकराओ
सांस के संचित फूलों को यूँ न बिखराओ
पत्थरों से बन्धु अपना सिर न टकराओ
मेघ मेला विश्व है लो राग मुझसे लो।"[1]

यहाँ पर कवि जीवन रूपी दीपक जलाने के लिए स्वयं स्नेह रूपी तेल देने के लिए तैयार है। क्योंकि जीवन रूपी दीप के ठुकराने से श्वास रूपी फूल बिखर जायेंगे। उसने इस संसार को मेघ मेला का रूपक माना है। क्योंकि मेघों केसमुदाय भी क्षणिक होता है। यह संसार भी क्षणिक है। इस प्रकार यह रूपक भी दर्शन के क्षेत्र से लिया गया है।

"अस्फुट अगणित कंठों की ध्वनि की धारा
महाकाश में मंडराती है, घूम रही है
मरण सिंधु में मग्नप्राय मानवता।"[2]

यहाँ पर महाकुंभ के सन्दर्भ में कवि ने यह देखा कि असंख्य कण्ठों से ध्वनि रूपी धारा महाकाश में मण्डराती हुई शब्द करती हुई मृत्यु-रूपी-सागर में समा जाती है। इस प्रकार रूपक का यह आवरण भी सामयिक और सार्थक लगता है।

"इन्द्रधनुष कितने / इच्छाओं के
बनकर मिटते हैं।"[3]

यहाँ पर इच्छाओं के इन्द्रधनुष का रूपक भी अच्छा लगता है जिस प्रकार इन्द्रधनुष में अनेक रंग होते हैं और क्षण भर में नष्ट हो जाते हैं, ठीक उसी प्रकार मानव की भी अनेक और बहुरंगी इच्छायें होती है और वह भी बनती बिगड़ती हैं।

इस प्रकार त्रिलोचन के रूपक उनके अनुभव के द्योतक हैं। इन रूपकों में कवि का दार्शनिक रूप प्रमुख बन गया है। इसका कारण उनका बौद्धिक चिन्तन

1- सबका अपना आकाश, पृ0 55
2- अरघान पृ0 54
3- ताप के ताए हुए दिन, पृ0 42

ही प्रतीत होता है।

विरोधाभास अलंकार :—

जो विरुद्ध की तरह भाषित हो किन्तु वास्तव में वह विरुद्ध न हो वहाँ विरोधाभास होता है। त्रिलोचन ने इसके लिए भी कोई प्रयास न किया किंतु कुछ स्थलों में इसकी भी स्वाभाविक झलक मिल जाती है। जैसा कि निम्नलिखित उद्धरणों से स्पष्ट है —

"बैरागी रागी हैं और माल खाते हैं
मूढ़ विधाता का है यह छोटा सा खेला।"[1]

यहाँ पर वैरागी रागी में विरोधाभास है क्योंकि जो बैरागी है वह राग कैसे? जो रागी है वह बैरागी कैसे? विरोध का परिहार इस प्रकार है कि ऊपर से बैरागी है और अन्दर से अनुरागी।

"जन का जीवन का लेकिन दुनिया के हो के
दुनियाँ में न रहे, दुनिया को बुरा बताया।"[2]

यहाँ पर दुनिया के होकर दुनियाँ में न रहना में विरोधाभास है। परिहार इस प्रकार है कि दुनिया के स्तर से उठकर ही उसकी आलोचना की।

"प्रेम में अकेले भी हम
हम अकेले नहीं हैं
मेला क्या हमारा ही मेला है
और मेले नहीं हैं।

यहाँ पर अकेला होना भी और न होना भी यही विरोधाभास है। इसका परिहार इस प्रकार है कि हम प्रेम में अकेले अवश्य होते हैं किन्तु हृदय में प्रेमपात्र के होने से अकेले कहाँ हुए।

1- अरघान, पृ0 47

2- वही, पृ0 65   3- अरघान, पृ0 37

'अज्ञ कहाँ सर्वज्ञ कहाँ है ये जन नेता
कुंभकाण्ड कहता है, लेखा लेता देता।'[1]

यहाँ पर जो अज्ञ है वह सर्वज्ञ कैसे किन्तु इसका परिहार इस प्रकार है कि यह जननेता जानते सब कुछ हैं किन्तु ऊपर से अज्ञ (अनजान) बने रहते हैं।

"जितना चलता हूँ अन्तर है बढ़ता जाता
क्या रहस्य है, इसे तुम्हीं चाहो तो ज्यों-त्यों।
सुलझा सकते हो।'[2]

यहाँ पर चलने से अन्तर कम हो जाना चाहिए किन्तु अन्तर बढ़ता जाता है यह तो हुआ विरोध। इसका परिहार इस प्रकार है कि किसी मार्ग पर चलने पर ही उसका वास्तविक रहस्य ज्ञात होता है, ऊपर से नहीं।

"कुछ विचित्र विधि का विधान है — जो थे परिचित
हुए परिचित और अपरिचित हो हैं परिचित।"[3]

यहाँ पर परिचित का अपरिचित हो जाना विरोध है इसका परिहार इस प्रकार है कि परिस्थिति वश परिचित व्यक्ति भी अपरिचित सा बन जाता है और परिस्थितियों के ही कारण जो अपरिचित हैं वह परिचित बन जाता है।

इनउद्धरणों से यह स्पष्ट है कि विरोधाभासों में कवि की विशेष प्रवृत्ति नहीं है और न ही उसमें कोई विशेषता उत्पन्न करते हैं।

मानवीकरण : —

हिन्दी मेंयह अलंकार छायावाद की देन है। जब प्रकृति में मानवीय चेतना का आरोप कर दिया जाता है तब उसका मानव जीवन के साथ निकटतम संबंध स्थापित हो जाताहै। इसलिए इस समय भी प्रगतिशील काव्य में मानवीयकरण का महत्व

1- अरधान, पृ0 59 2- अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ0 54

3- उस जनपद का कवि हूँ। पृ0 33

माना जाता है। क्योंकि प्रगतिशील कवि जीवन से पृथक किसी अन्य वस्तु का महत्व नहीं मानते। यही कारण है कि प्रगतिशील काव्य में मानव जीवन से संपृक्त होने के कारण प्रकृति को भी महत्व दिया गया है। उसमें मानवीय चेतना का व्यवहार या आरोप कवियों की भी मानसिक चेतना का पोषण करता है। इसलिए भी आधुनिक काव्य में मानवीयकरण का आदर किया जाता है।

त्रिलोचन प्रकृति के अंचल में रमने वाले कवि हैं वे भी उसे मानव जीवन से संपृक्त मानते हैं। अतः उनके प्रत्येक काव्य में प्रकृति के विभिन्न रूपों का प्रभावकारी चित्रण मिल जाता है। प्रकृति के इस मानवीय रूप के उदाहरण इस प्रकार द्रष्टव्य हैं – "कातिक पयान करने को है, उठाया है
दाहिना चरण, देहरी को लांघ आया है,
लेकिन अँगूठा अभी भूमि से लगा नहीं
ऊपर ही ऊपर है, जैसे जगा नहीं।"[1]

यहाँ पर कार्तिक समाप्ति पर कवि ने उसके मानवीकरण में मनोहर कल्पना से काम लिया है। जब हम देहली को लांघते हैं तो पहले अँगूठा भूमि पर पड़ता है और जब तक वह भूमि का स्पर्श नहीं करता तब तक चरण स्थिर नहीं होते। यहाँ पर कवि बड़ी सूक्ष्मता से यह बताना चाहता है कि कार्तिक अभी पूरी तरह से समाप्त नहीं हुआ है और अगहन के महीने की प्रारम्भिक भूमिका मात्र बन पायी है। इस प्रकार यहाँ मानवीकरण में हा। कवि की सूक्ष्म बुद्धि ने सूक्ष्मता का परिचय दिया है।

"गेहूँ जौ के ऊपर सरसों की रंगीनी
छाई है, पछुआ आ-आकर इसे बुलाती
है, तेल से बसी लहरें कुछ भीनी-भीनी
नाक में समा जाती है, सप्रेम बुलाती
है मानो यह झुक-झुक कर, समीप ही लेटी
मटर खिलखिलाती है, फूल भरा आँचल है, "[2]

1- चैती, पृ0 23 2– उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 62

यहाँ पर पछुआ का झुलाना, सुगन्ध का सप्रेम बुलाना और मटर का खिलखिलाना मानवीकरण के मन भाए चित्र हैं। कृषि सौन्दर्य का मानवीकृत रूप कितना मनमोहक और आकर्षक बन पड़ा है। जो सामान्य प्रगतिशील कवि के लिए सम्भव नहीं है। इसी प्रकार का कृषि प्रधान चित्रण से सम्बद्ध मानवीकरण का एक अन्य रूप इस प्रकार है —

"उड़ा-उड़ा जाती थी बालों को पुरवैया
बड़ी मुँहलगी सखी सरीखी, मैं चुटकी से
सँवारता था फिर-फिर लेकिन वह सुनवैया
जैसे ढूँढ़ रही थी बालों की फुर्ती से
उड़ा-उड़ा देती थी।"[1]

यहाँ पर कवि ने पुरवैया का मानवीकरण किया है। उसे मुँहलगी सखी का रूप देकर उसके क्रिया कलापों का सजीव चित्र प्रस्तुत किया है।

"आकाश से बोली अरण्यानी
देखो, जितने तुम्हारे पास तारे हैं
मेरे पास फूल हैं/मेरे इन फूलों की भाषा सुवास है
उनका कोलाहल सुगंधित है /
वन्यमृग मेरे पास आते हैं
दीर्घ साँस लेते हैं / और / खड़े रहते हैं।"[2]

यहाँ पर कवि ने अरण्यानी का मानवीकरण किया है। वह आकाश से बात करती है उससे अपनी तुलना करती है इस तुलना में स्त्रियों की उस प्रवृत्ति का सूक्ष्म चित्रण किया गया है जहाँ वे एक दूसरे से स्पर्धा करती हुई अपने को श्रेष्ठ सिद्ध करती और अपनी अहमवृत्ति को सन्तुष्ट करती हैं। इस प्रकार का तर्क संगत मानवीकरण अपने में अनोखा लगता है।

1- उस जनपद का कवि हूँ, पृ० 64

2- अरधान, पृ० 17

"साँझ गुलाबी काँप रही है ठंड से

उधर गुलाबों के पौधे लाचार है

झूल-झूल कर फूल हवा से कह रहे

हैं यह इतनी छेड़छाड़ अच्छी नहीं।'[1]

यहाँ पर कवि ने संध्या, गुलाब, पुष्प और वायु का मानवीकरण करके वातावरण को सजीवता प्रदान करने की चेष्टा की है।

"नद नदी ने पाँव धोए /पुष्प पादप ने चढ़ाए /

मेघ में सित छत्र ताना /वायु ने चामर हिलाए /

इन्द्रधनु नत सूर्य ने दी / चंद्र ने दीपावली की /

तुम न हारे देख तुम को दूसरे जन भी न हारे।'[2]

यहाँ पर नद, नदी, पुष्प, पादप, मेघ, वायु, सूर्य और चन्द्र इन सबका मानवीकृत रूप उल्लेखनीय है।

"रंग रंग उठता है छोर कोई दिशा का

उठ-उठ कर पौधे धान के ताकते हैं

सुरभि लहर लेती व्योम को बासती है

हस बस कर मेरी बात भी खेलती है।'[3]

इसमें धान के पौधों का और सुरभि का मानवीकरण करके कवि ने ग्रामीण परिवेश को आत्मसात् किया है।

'बरखा, मेघ-मृदंग थाप कर

लहरों से देती है जी भर

रिमझिम रिमझिम नृत्य-ताल पर

पवन अथिर आए

दादुर, मोर, पपीहा, बोले

धरती ने सोंधे स्वर खोले

मौन समीर तरंगित डोले

यह दिन फिर आए।"[4]

1- अरघान, पृ0 3।   2- सबका अपना आकाश, पृ0 30-3।

3- अरघान, पृ0 10   4- सबका अपना आकाश, पृ0 9

यहाँ पर वर्षा, पवन और धरती का मानवीकरण करने में संगीतात्मकता का जैसा तालमेल स्थापित किया गया है उससे प्रकृति के कोमल, मनोहर एवं चेतन रूप का दृश्य उपस्थित हो गया है। इस प्रकार त्रिलोचन कीसमस्त कृतियों में मानवीकरण के सुन्दर एवं मनमोहक चित्र भरे पड़े हैं जो पाठक के हृदय को आनन्दातिरेक से प्लुत कर देते हैं। विभिन्न मानवीय व्यापारों को, विविध भावों को और विभिन्न गति - विधियों को त्रिलोचन ने जिस सफलता के साथ चित्रित किया है उसकी जितनी भी प्रशंसा कीजाए कम है।

त्रिलोचन की कृतियों में उपर्युक्त अलंकारों के अतिरिक्त भी कुछ अलं - कार आकस्मिक आए हुए अतिथि की भाँति उपस्थित हो गये हैं जिनका उन्होंने सम्मान किया है इसलिए यहाँ भी उन्हें सम्मानित किया जा रहा है। यथा —

रूपकातिशयोक्ति :—

"जीवन की सीधी राह नहीं
दुर्गम पर्वत हैं सागर है।"[1]

यहाँ पर पर्वत और सागर में रूपकातिशयोक्ति है क्योंकि कवि परम्परा से गृहकार्यों और उनके जंजालों को पर्वत कहा गया है।[2] इस उपमान को यहाँ लुप्त कर दिया गया है। इसी प्रकार सागर के साथ आने वाला उपमेय भी लुप्त है इसलिए रूपकातिशयोक्ति है। यहाँ पर सागर-विपत्ति एवं कठिनाई का उपमान माना जा सकता है।

विशेषण विपर्यय :— "ये अनल के लघु-लघु तारे
दुर्बल अपनी ज्योति पसारे
अंधकार से क्यों न हारे
प्रतिमन वही लगन सरसाओ।"[3]

यहाँ पर ज्योति अचेतन है इसलिए उसका विशेषण अचेतनकारी होना चाहिए किन्तु इसका विशेषण 'दुर्बल' है जो चेतन के लिए आता है किन्तु यहाँ पर विशेषण का

1- सबका अपना आकाश, पृ0 57
2- गृह कारज नाना जंजाला। तेई अति दुर्गम शैल विशाला। (मानस, बालकाण्ड)
3- सबका अपना आकाश, पृ016

विपर्यय कर दिया गया है अतः विशेषण विपर्यय अलंकार हुआ। यह अलंकार भी छायावाद के अंचल से प्राप्त हुआ।

इसी प्रकार पुनरुक्ति प्रकाश, अनन्वय, अर्थान्तरन्यास, आदि अनेक स्फुट अलंकार हैं जो इन्हीं अतिथियों के रूप में भूले भटके आकर टिक गये हैं। साराश यह है कि त्रिलोचन को सपाट बयानों का कवि कहना असंगत लगता है, क्योंकि इनमें वे स्वाभाविक अलंकरण स्वतः उपस्थित हो गये हैं जो किसी अधिकृत कवि की लेखनी से उतर सकते हैं। इसलिए अन्य प्रगतिशील कवियों की भाँति त्रिलोचन को समझने में सावधानी से काम लेना चाहिए। इतना अवश्य है कि उनके अलंकार जन-जीवन से सम्पृक्त हैं वे मानव की धरती का स्पर्श किये रहते हैं। क्षितिज की छवि में उलझा कर पाठक को निराधार नहीं छोड़ते अपितु अलंकारों के माध्यम से ये जीवन के रस का प्याला पिलाकर पाठक के श्रम का परिहार करते चलते हैं जिससे उसका मन कभी विश्रान्ति का अनुभव नहीं करता।

कल्पना सौन्दर्य के अन्य-स्थल :-

त्रिलोचन यथार्थवादी कवि हैं किन्तु उनकी कल्पनायें भी बड़ी मनोरम हैं। कतिपय उदाहरणों से हम अपने कथन की पुष्टि करेंगे। आँधी की भीषणता को कवि ने अपनी कल्पनाओं से किस प्रकार संवारा है। निम्न उदाहरण में देखिए -

'चली है आँधी जो गिरि पथ वनों में गरजती
गुँजाती वेगों से गगन अचला को प्रलय के
सहस्त्रों शंखों की मिलित ध्वनि गूँजी, तड़ित की
कड़ाके की धारा पसर कर फैली भुवन में
खगों के नीड़ों को अकरूण करों से पकड़ के
उछाला तारों में, करूण रस से आज उनके
धरा भी काँपी जो परवश पड़ी थी अनय के

प्रहारों से डारी, भव-भय भरे प्राण तल में।'[1]

यहाँ पर आँधी का गर्जन उसका वेग जो धरती से लेकर आकाश तक व्याप्त है उसकी ध्वनि को कवि ने सहस्त्रों शंखों की सम्मिलित ध्वनि के रूप में कल्पित किया है। धरती से लेकर आकाश तक आँधी के आतंक की कल्पना सजीव सी लगती है। इसी प्रकार तमिस्त्र (अंधकार) के विषय में भी कवि की कल्पना मानवीकृत रूप में साकार हुई है।

'उड़ चले खग व्योम पथ से / नीड़ पाया /
राह भर कहते अँधेरा पास आया,
घिर चली अब दृष्टि परिचय की निकासी
ओढ़ तारा चूनरी को / रात आई /
मिल रही है साँझ से कहकर अवाई
पार पाये हम न यह तम विजय-हासी।'[2]

यहाँ पर अन्धकार की विभीषिका रात्रि का शुभागमन उसके नारी रूप की साज - सज्जा और तम का विजय हास इन सभी कल्पनाओं में सौन्दर्य भरा है।

कवि ने विश्व को महाकाव्य की संज्ञा दी है और सांगरूपक के आवरण में इसका पूरा-पूरा निर्वाह किया है। यथा —

"महाकाव्य है विश्व, किसी ने रचना की है
मनोयोग से, रात और दिन के रंगों से
भूषित करके पृष्ठ काल के, किस ढंगों से
वर्ण-वर्ण से भरे डाखिए उपमा दी है,
किसकी किस से नई कल्पना भाषा ली है
लोकोत्तर सुव्यक्त कला अपने अंगों से
विविध तरंगोच्छ्वासित पल्लवित अनुषंगों से
सुशोभित सर्वांग उदित है, आशा भी है।"[3]

1- अरघान, पृ0 14 2- तुम्हें सौंपता हूँ, पृ0 31
3- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 106

हरी-हरी धूप जब अपनी हरी छबि लेकर जीवन के अस्तित्व को लेकर ऊपर उठती है तो वह आकाश को जीवन के उत्थान की कहानी सुनाती है। मानवीकृत रूप में कवि कीयह कल्पना कितनी मधुर है --

"दूब पैरों के तले से / सिर उठाती है
व्योम को दिखता समुद्भव / मौन गाती है/
छवि हरी उसकी हुई परवाह जीवन की
बाढ़ वर्षा की जगत है / और ये लहरें /
चल रहीं उठ गिर अनवरत / कहीं जा ठहरें /
एक उत्सव एक ही है आह जीवन की।"[1]

कवि का आशावादी दृष्टिकोण जीवन के प्यासे पथिकों को बताता है कि यह संसार मरूस्थल है। यहाँ मृगतृष्णा का साम्राज्य है जो दृष्टिभ्रम है। इसलिए धरती के वास्तविक जल को खोजने की शक्तिमुझसे लेकर उसे खोजो। इस दार्शनिक कल्पना को कवि ने रूपकातिशयोक्ति, रूपक और प्रतीकात्मकता के माध्यम से व्यक्त किया है।कुल मिलाकर कवि की यह कल्पना बड़ी ही मार्मिक है।

'यह मरूस्थल है, कहाँ जल है पथिक प्यासे
दृष्टि भ्रम है, मौन मृगजल है, थके तासे
शक्ति खो मत दो भटक कर व्यर्थ आशा से
भूमि में जल है, उठो, लो शक्ति मुझसे लो
तुम तिमिर रंजित नयन से देख क्या पाए
बन्धु भी यमदूत बन कर आँख में आए
कहो, कब तक रहोगे उद्भ्रान्त, अलसाए
प्राण का अवलम्ब लो विश्वास मुझसे लो।'[2]

वर्षा के दिनों में घटाओं का घिर आना और विद्युत का चमक चमक जाना दृष्टि-बिम्ब के रूप में कवि की कल्पना को उजागर कर देता है।

1- सबका अपना आकाश, पृ0 28-29 2- वही, पृ0 55

"आई थी घटाएँ अभी / नाच कर चली गयीं /
बिजली का मशाल जल-जल कर /बुझ जाता था।"[1]

राका के आगमन में कवि का हृदय कल्पना से भर जाता है। उसे चारों ओर संसार सौन्दर्यमय दिखलायी देने लगता है। इस मधुर-कल्पना का आनन्द निम्नलिखित पंक्तियों में विद्यमान है —

"खिल रहे फूल, हँसते उपवन/जीवन ही जीवन भरा भुवन/
इस समय भुवन की मधुर कान्ति
कर रही गंधवह का चुंबन
क्या हुआ कि सत्ता चुपके से
आई, सुषमा अनुपम आई।"[2]

प्रेम के क्षेत्र में भी कवि ने अनोखी कल्पनायें की है। उसकेहृदय में प्रियतमा की स्मृति इतनी कसकती है इसके लिए भी उसने कल्पना को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है —

"काँटे गड़कर पैर पकड़ लेते हैं जैसे
वैसे ही यह याद तुम्हारी मेरे मन को
पकड़ लिया करती है तब घर और विजन को
भूल-भाल जाता हूँ और न जाने कैसे
आँखों में वह पथ पहाड़ी आ जाता है।"[3]

जीवन की विभीषिकायें देखकर कवि के हृदय में चिन्ता उत्पन्न होती है वह उन्हें कभी खाई, कभी खन्दक, कभी नदी, कभी नाले कभी वन और कभी दुर्गम पर्वतों के रूप में परिकल्पित करता है।

"अब आगे हैं खाई, खंदक, नदियाँ, नाले
वन, पहाड़, दुर्गम आने वाले हैं,
हाय, हाय क्या करें, नहीं हम पर वाले हैं:
उड़ जाते, नीचे रह जाते सभी कसाले।"[4]

1- ताप के ताए हुए दिन, पृ0 18 2- सबका अपना आकाश, पृ0 14
3- दिगन्त, पृ0 20 4- अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ0 42

इस प्रकार त्रिलोचन का कल्पना-सौन्दर्य भी अद्भुत है। उनकी विशेषता यह है कि उनकी कल्पनायें गगन-बिहारिणी, कोरी कल्पनाएँ ही नहीं हैं; अपितु उनका सूक्ष्म तार भूतल से जुड़ा हुआ है। वे इन कल्पनाओं में नवीनता का रंग भरते समय भी जीवन की उपेक्षा नहीं कर पाते। इसलिए उनकी कल्पनाओं में जीवन का स्वर झंकृत रहता है। इसे सुधी-समीक्षक सहज ही में समझ सकते हैं। वे कल्पना के लिए सर्वत्र स्थान निकाल लेते हैं। चाहे प्रकृति हो, चाहे मानव-जीवन का संघर्षपूर्ण युद्ध-स्थल हो, सर्वत्र उनकी मचलती हुई कल्पनाएँ पाठक के हृदय और बुद्धि को अपनी-ओर आकृष्ट कर लेती हैं। इस प्रकार त्रिलोचन के काव्य में अलंकारों का सहज रूप विद्यमान है, और प्रगतिशील होने पर भी ये कल्पना के धनी कवि कहे जा सकते हैं।

चतुर्थ अध्याय

त्रिलोचन के काव्य में बुद्धितत्व

चतुर्थ अध्याय

त्रिलोचन के काव्य में बुद्धि-तत्व

संसार के सभी कार्य बुद्धि के आश्रय से ही फलित होते हैं। इसलिए अपने देश में 'बुद्धिर्यस्य बलं तस्य' का उद्घोष किया गया है। साहित्यिक-आलोचना के क्षेत्र में काव्य का कोई तत्व ऐसा नहीं है, जिसमें बुद्धि का सहयोग न लिया जाता हो। उदाहरणार्थ, यदि भाव-पक्ष को ही लें तो उसमें देखना पड़ता है कि किस रस का परिपाक कहाँ तक उचित होगा। कहाँ किस भाव को अधिक-महत्ता देनी है, किसको नहीं। इस औचित्य का विचार तो बुद्धि ही करती है। इसी प्रकार औचित्य का ध्यान रखने के लिए बुद्धि का आश्रय लेना पड़ता है। यदि अलंकारों का जमघट लग गया तो कविता-कामिनी बोझिल हो जायेगी और काव्य कृत्रिम कहलाने लगेगा। जैसे कि केशव की कविता के बारे में आलोचकों का दृष्टिकोण सुप्रसिद्ध है। इन्हीं अलंकारों की अधिकता के कारण ही केशव को कठिन काव्य के प्रेत की संज्ञा दी गई। उन्हें हृदयहीन कहा गया और यह सारे आक्षेप इसीलिए हुए हैं कि उन्होंने अलंकार-विनियोग में बौद्धिक-विवेक से काम नहीं लिया। यदि यह कहें कि बुद्धितत्व का अतिरेक हो गया है तो अधिक तर्कसंगत होगा। यही बात शैली-तत्व के विषय में लागू होती है। शैली-सौन्दर्य का निर्माण करने के लिए बुद्धितत्व की सहायता आवश्यक है। ध्वनि-सौन्दर्य, नाद-सौन्दर्य, चित्र-सौन्दर्य आदि का विधान करने के लिए कवि को अपनी बुद्धि पर बल तो देना ही पड़ता है। इसी प्रकार कल्पना-सौन्दर्य का विधान करने में बिना बुद्धि की सहायता के कवि कुछ भी नहीं कर सकता, क्योंकि कल्पना तो दूर की कौड़ी है। उसे पाने के लिए कवि को गहरे पानी में पैठने की आवश्यकता होती है। इस प्रकार यह निश्चित हुआ कि कल्पना-विधान में भी बुद्धि का विशेष महत्व है। यही कारण है कि भारतीय आलोचकों ने बुद्धि की सर्वोपरि महिमा समझकर उसे केवल एक तत्व तक

ही सीमित नहीं रखा। यह बात दूसरी है कि पाश्चात्य विद्वानों ने भावतत्व, कल्पना तत्व, बुद्धि तत्व और शैली तत्व, इन चार काव्य तत्वों को गिनाते हुए बुद्धि तत्व को एक काव्य तत्व माना है। आधुनिक आलोचना पाश्चात्य काव्य - शास्त्र पर विशेष बल देती है, अतः मैंने भी बुद्धि तत्व की दृष्टि से त्रिलोचन के काव्य का अनुशीलन समीचीन समझा है। अतः यहाँ प्रस्तुत है -' त्रिलोचन के काव्य में बुद्धि तत्व' —

त्रिलोचन एक विचारशील कवि हैं। वे सामाजिक-जीवन-दर्शन के पक्षपाती हैं। समाज ही उनका सब कुछ है। वे इस क्षेत्र में साम्यवाद के सन्निकट हैं। उनकी प्रगतिशीलता उनके जीवन की भोगी हुई वस्तु है। इसी परिप्रेक्ष्य पर हमें उनकी कृतियों पर विचार करना है।

वे देखते हैं कि समाज में स्त्री-पुरुष दोनों का समानाधिकार है। नारी स्वातंत्र्य की माँग आज समाज की प्रमुख समस्या बनी हुई है। आज आवश्यकता है कि वह घर के कारागार से बाहर निकल कर पुरुषों की भाँति प्रत्येक-क्षेत्र में नर के कन्धे से कन्धा मिलाकर उद्योग करे। उसकी इस प्रगति में नर - समाज रोड़े क्यों अटका रहा है। त्रिलोचन का कवि इस अन्याय के प्रति अपने आक्रोश-पूर्ण-विचार व्यक्त करता हुआ समाज से पूछता है —

"नर जो संसार में भटकता है
इस जगह उस जगह अटकता है
कैसे नारी घिरी रहे घर में
उसका उद्योग क्यों खटकता है।"[1]

आज के बदलते हुए परिवेश में मानव जीवन करवटें ले रहा है जिससे कवि का

1- गुलाब और बुलबुल, पृ0 138

मन आशान्वित है। वह समझता है कि यह समाज का उत्पीड़न ईर्ष्या, दम्भ, और द्वेष का साम्राज्य समाप्त होगा और नवीन मानवता विकसित होगी। उनका यह आशावादी दृष्टिकोण आज के सन्दर्भ में कितना प्रशस्त है —

"दुःख को, दंभ को, ईर्ष्या को, युद्धलिप्सा को,
नष्ट करने के लिए नव मनुष्य आया है
अब अधिक दिन नहीं अन्याय न यह उत्पीड़न
वर्ष के अन्त में अंत इनका भी तो आया है।"[1]

कवि का विचार है कि युग की नयी चेतना के साथ विघ्न-बाधाओं की परवाह न करते हुए हमे निर्भीक भाव से बढ़ना है और अत्याचारी के विरुद्ध क्रान्ति करनी है जिससे भविष्य में वह हमारा शोषण न कर सके।

"नव मनुष्यता का लेकर विश्वास
अधिकारी मनुष्य के अत्याचार।"[2]

त्रिलोचन संकीर्णता के विरुद्ध है। वे वर्ण व्यवस्था जाति व्यवस्था और यहाँ तक कि देशीयता के भी विरुद्ध हैं। उन्हें अखण्ड-मानवता ही प्यारी है, क्योंकि पूरा मानव-समाज एक है फिर यह भेद क्यों? इससे तो मानवता खण्डित होती है। वसुधैव-कुटुम्बकम् का उनका यह विचार कितना स्पष्ट है:—

"देश के ये बंध तोड़ो / जाति के ये बंध तोड़ो
वर्ण वर्ण खिले सुमन दल/ रुचिर-रुचिर सुगंध जोड़ो
रूप में हो तेज संचय / तेज मे नव प्राण परिचय।
सब विराजें एक रचना में वही है पास लानी।"[3]

प्रगतिशीलता जीवन का श्रृंगार है। विघ्न-बाधाओं की परवाह न करते हुए निरन्तर आगे बढ़ते जाना हमारा कर्तव्य होना चाहिए। कवि के सरिता की गति से

1- गुलाब और बुलबुल, पृ0 35
2 - सबका अपना आकाश, पृ0 10
3- सबका अपना आकाश, पृ0 32

शिक्षा लेते हुए मानव जीवन की गतिशीलता का समर्थन किया है। उपनिषदों में भी 'चरैवेति' के सिद्धान्त को स्वीकार किया गया है। यथा —

"सरिता की संगीतमयी गति
नहीं जानती जीवन में यति
गति जीवन है यति उस की क्षति
यति पर रुक कर फिर गति पथ पर ढलना है।"[1]

कवि साम्यवाद के स्वर में बोलता हुआ कहता है कि बहुत दिनों तक दलित मनुष्य ने रक्त और अश्रु की नदी में स्नान किया किन्तु अब तो जाग उठा है। क्योंकि अत्याचार के सहने की भी सीमा होती है। आज नयी सभ्यता का युग है। नये समाज की संरचना प्रारम्भ हो गयी है। महलों पर इन शोषितों और पीड़ितों का आक्रमण होने वाला है। ओजस्वी स्वरों में इन भावों को कवि ने इन शब्दों में पिरोया है —

"गिरि, नदी, नद, पार करती आ रही ललकार बढ़ती
छिन्न भिन्न समाज में नव सभ्यता की मूर्ति गढ़ती
दूर आगामी जनों के लिए मंगल पाठ पढ़ती
स्तब्ध महलों में लगाती है मरण की छाप
द्वार पर आई विजय"[2]

प्रगतिशील धारा के अनुसार ईश्वर की कल्पना सामन्ती युग की देन है अथवा यह कहें कि पूंजीवादी व्यवस्था की मान्यता है। प्रगतिशील कवि इस बात को स्वीकार नहीं करते। त्रिलोचन जी भी 'ईश्वर की मृत्यु' शीर्षक कविता में कुछ ऐसे ही विचार इस प्रकार व्यक्त किए हैं —

"मृत्यु हो चुकी है ईश्वर की नया आदमी
अब इच्छानुसार करता है काम, क्या रहा

1- सबका अपना आकाश, पृ0 40

2- वही, पृ0 48

जो उसने न किया हो, कोई भी कहीं कभी
नहीं रही है ठाटबाट का महल है ढहा
सामंती युग का स्वाभाविक मौत न पाई
ईश्वर ने, पूंजीपतियों ने, सामंतों ने,
उसे मार डाला उसकी जो गत कमाई
देश-देश में जो संचित थी, विपदंतों ने...।[1]

प्रगतिशील कवि प्रेम भावना को भी प्रगतिशीलता के कटघरे में रखते हैं। त्रिलोचन का प्रेम भी उनकी कविताओं में विविध प्रकार से व्याप्त हुआ है जिसमें उनका वैयक्तिक दृष्टिकोण विद्यमान है —

"प्रेम व्यक्ति व्यक्ति से
समाज को पकड़ता है
जैसे फूल खिलता है
उसका पराग किसी और जगह पड़ता है
फूलों की दुनिया बन जाती है।'[2]

समाजवादी कवि की यथार्थवादी पकड़ बहुत तीव्र होती है। वह निर्भीक होकर आक्षेप करता है। भले ही आक्षेप का पात्र प्रशासन हो या समाज। कुम्भकाण्ड में कवि की यह अन्तर्वेदना व्यंग्य का तीखा बाण लेकर पुलिस व्यवस्था आदि पर बरस पड़ी —

"लाशों का सुप्रबन्ध पुलिस ने फैलाया, इसी केलिए तो उसने
पैसा खा है /कुप्रबन्ध का कहना ही क्या है,
कमाल था, समाज पत्रों ने गली-गली गाया है।'[3]

त्रिलोचन इस सम्बन्ध में साहित्यकारों पर भी कमाल व्यंग्य करते हैं —

,लाशों की चर्चा थी, अथवा सन्नाटा था
राज्यपाल ने दावत दी थी हा-हा, ही-ही
चहल-पहल था, जागर और ज्वार भाटा था

1- अरघान, पृ0 64 2- अरघान, पृ0 37
3- वही, पृ0 50

जो सुनता था वह थूकता था यह छी-छी
यह क्या रंग-ढंग है मानवता थोड़ी सी
आज दिखा दी होती वे साहित्यकार है।'[1]

त्रिलोचन का यथार्थवादी कवि व्यापारियों पर भी कठोर व्यंग्य करता है। उसके मूल में स्थित सरकारी व्यवस्था पर भी उनकी कड़ी नजर है। निम्नलिखित कुण्डलियाँ में उनकी अभिव्यक्ति दर्शनीय है —

'छोड़ा है सरकार ने गेहूँ का व्यापार
हुआ मण्डियों में शुरू व्यापारी त्योहार'[2]

प्रगतिशील विचारधारा में मानवतावाद सर्वोपरि है। उसकी तुलना में व्यक्तिवाद का कुछ महत्व नहीं है। कवि ने समय के चक्रव्यूह में क्या कुछ देखा है। वह नव-मानव की विजय पर आश्वस्त है। इस विषय में उनके ये विचार दर्शनीय हैं —

"व्यूह विधाता स्वयं व्यूह में फँस जायेंगे।
उनका रचना कुहासा, पाकर समय, कट चला।
गड्ढा नव जीवन-प्रवाह से स्वयं पट चला,
अब मनुष्य अपने-अपने पथ से आयेंगे
एकलक्ष्य पर, सबके सुख में सुख पायेंगे
गैसों का आतंक मेघ के तुल्य छट चला।'[3]

आधुनिक युग विभीषिका से वातावरण कितना विषाक्त है। यह मनुष्य की विजय के मार्ग से होकर महाप्रलय का आह्वाहन करता हुआ प्रतीत होताहै। त्रिलोचन में मानव के इस पागलपन पर महान आक्रोश है। जिसकी अभिव्यक्ति इस प्रकार है —

'रण गर्जन से बधिर गगन है,
कम्पमान पृथ्वी का तन है
तेरा यह उल्लास विजय का,

1-अरधान, पृ0 61   2- तुम्हें सौंपता हूँ, पृ0 99

3- तुम्हें सौंपता हूँ, 84

महाप्रलय का आवाहन है,
ओह दूध पर पलने वाले,
नहीं प्रकृति तेरा दर्शन है
औ सभ्यताभिमानी क्या कृति अभिव्यक्त की।'[1]

श्रृंगारी भावना को भी त्रिलोचन उसी मस्ती से व्यक्त करते हैं जिस मस्ती से वे व्यंग्य प्रधान सामाजिक कविताएँ लिखते हैं। स्पष्टता इन रचनाओं का प्राण है। वे कितने निःसंकोच भाव से श्रृंगार की अभिव्यक्तिकरते हैं —

'मुझे इच्छा थी / तुम्हारे इन हाथों का स्पर्श /
कुछ और मिले / और इन आँखों के
करूण प्रकाश में /नहाता रहूँ
और साँसों की अधीरता
भी कानों से सुनूँ।"[2]

कवि के क्रान्ति के स्वर भी अपने में दम रखते हैं। वे इस सड़ी-गली सामाजिक व्यवस्था के प्रति क्रान्ति का स्वर अलापते हैं। सोयी हुई जनता को जगाते हैं। नये समाज की नये सिरे से रचना कर देना उनकी रूचि है। वे घुटन और छटपटाहट के घेरे को तोड़कर क्रान्ति का आह्वाहन करते हैं —

'बीज क्रान्ति के बोता हूँ मैं अक्षर दाने
हैं, घर बाहर जन समाज को नये सिरे से
रच देने की रूचि देता हूँ, धिरे धिरे से
रहना असम्मान है जीवन का अनजाने
अगर घुटन हो, प्राण छटपटाएँ तो घेरा
तोड़ फोड दो, क्योंकि हुआ है नया सबेरा"[3]

[illegible] भी 1– तुम्हें सौंपता हूँ, पृ0 22
2– चैती, पृ0 15
3– अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ086

कवि ने मजदूरों के कार्य का मूल्यांकन करने में उदारता का परिचय दिया है। मानवीय सभ्यता को नया रूप देने वाले मजदूर के वे खुरदुरे हाथ ही है अतः त्रिलोचन उन मेहनतकश मजदूरों के उन हाथों का गुणगान करते नहीं अघाते—

"जब तुम किसी बड़े या छोटे कारखाने में
कभी काम करते हो किसी भी पथ पर
तब मैं तुम्हारे इस काम का महत्व खूब जानता हूँ
और ये भी जानता हूँ मानव की सभ्यता
तुम्हारे ही खुरदरे हाथों में नया रूप पाती है।"[1]

वर्तमान समाज व्यवस्था में वैषम्य का राज्य है। वे उसे और परिवर्तित करना चाहते हैं। ये वर्ग संघर्ष उन्हें बराबर व्यथित करता रहता है। जब वर्गहीन समाज की स्थापना हो जायेगी तभी उन्हें सन्तोष होगा —

'विषम समाज व्यवस्था सम जब दिखलाएगा
तभी- तभी सन्तोष इस हृदय में आयेगा।'[2]

त्रिलोचन भूखे और नंगे असहाय व्यक्तियों को सहारा देने की बात करते हैं क्योंकि वे ही हमारे समाज का स्तम्भ है। यदि हमने उन्हें सहारा न दिया तो ऐसी ही स्थिति होगी जैसे कि घूरे पर बैठकर 'भागवत' का पारायण करना' अशोभनीय और उपहास्यास्पद लगता है —

'कोई भूखा हो तो उसको लाकर रोटी
दो, मत लंबी चौड़ी बात बनाओ इसकी
उसकी सारे जग की, नींव छोड़कर जिसकी
तो दीवार गिरेगी, थूनी छोटी-छोटी
देकर उसे ठिकाना मुश्किल है सब ऊँची / बातें नीची लगती है।'[3]

1- ताप के ताए हुए दिन, पृ0 60
2- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 93
3- वही, पृ0 87

समाज का दुख दर्द कवि का दुख दर्द है। वे यथार्थ के प्रेमी हैं। किन्तु सामाजिक जीवन को परिष्कृत रूप में देखने के अभ्यासी हैं। उनके हृदय में सर्वोदय की तीव्र भावना भरी हुई है। वे जिसे सहज रूप में व्यक्त करते हैं। उनकी दृष्टि में नये समाज का निर्माण आवश्यक है। सबको विकास का समान अवसर प्राप्त होना चाहिए। सबको अपनी बात कहने का अधिकार होना चाहिए।

"मैं यथार्थ का
प्रेमी हूँ, शिव हो सुन्दर हो, पद पदार्थ का
संग चाहता हूँ, जो जमा हुआ है गर्द
सामाजिक जीवन समाज पर झड़ जाए,
सहज प्रसन्न रूप सबका हो, सबकी भाषा
कंठ-कंठ से खुले और पूजे अभिलाषा
निर्विरोध नूतन जीवन की छवि गढ़ जाए
बाल किरण सी आँख-आँख में भूले भटके
रास्ता पाए, सत्वर कोई कहीं न अटके।"[1]

त्रिलोचन को श्रमजीवियों से विशेष सहानुभूति है। किन्तु वे बेचारे जीवन में समय-असमय कीपरवाह किये बिना परिश्रम में जुटे रहते हैं। उनके लिए आराम-हराम है। दिन का पसीना खेतों को तैयार करने में बहता रहता है। चिन्ता उनके शरीर को विदीर्ण कर देती है। शरीर दुर्बल हो जाता है फिर भी वे काम करते थकते नहीं। वे सांसों के बल पर जीवन की नइया खेते हैं और रूखा-सूखा जैसा भी पाते हैं वैसा ही खाकर श्रम में संलग्न रहते हैं। समाज में उनका विशेष महत्व है। उनके इस जीवन से कवि की गहरी सहानुभूति उन्हीं के शब्दोंमें इस प्रकार प्रकट हुई है —

"श्रम को फलीभूत करने में स्वयं निचोड़ी
अपनी रग रग जिसने और पसीना ढाला

1- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 86

क्षेत्र किया तैयार, भले ही खूब चिचोड़ी
चिन्ताओं ने उसकी काया, पहले वाला
रहन जाए बल, इससे क्या उसने तो अपना
काम किया, आराम न देखा, समय न ताका।'[1]

प्रगतिशीलता के क्षेत्र में सरल और सहज भाषा के द्वारा विचारों की अभिव्यक्ति को भी वाणी दी जाती है। इन्होंने इस विषय में बड़ी स्पष्टता के साथ अपनी बात कही है। वे उस कविता को कविता नहीं समझते जो जीवन के यथार्थ का अंकन न करती हो और घर के एक कोने में पढ़ी जाती हो। उन्होंने भाषा के क्षेत्र में भी उपेक्षित लोक भाषा को महत्व दिया है —

'रस जीवन का जीवन से खींचो
दिए हृदय के भाव, उपेक्षित थी जो भाषा
उसको आदर दिया, मरूस्थल मन का सींचा
परित्यक्त आकाशविहारी कवि अभिलाषा
उड़ने की ही रखते थे गर्जन हीगर्जन
उनका सुन पड़ता था, शीतल वर्षा धारा
दौड़-धौड़ असमय समय न आगे आए
उनका सुन पड़ता था शीतल वर्षा धारा
वह कविता क्या जो कोने में बैठ बजाए।"[2]

त्रिलोचन धरती के कवि है। इसलिए अनुभूतियों में बल है। उनसे कवि को बड़ी गहरी सहानुभूति है। उनका सामाजिक लक्ष्य सार्वजनिक उत्थान है। वे परिश्रम और ईमानदारी को बहुत महत्व देते हैं। उनकी नैतिक भावना मानवीय मूल्यों को विशेष महत्व देती है। धरती में कवि कहता है —

1- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 89

2- वही, पृ0 116

"जो अपनी धुन में न्योछावर अपना सब कुछ कर देते हैं
जग जीवन के लिए स्वयं को निर्भय होकर बलि कर देते हैं
जिसका कदम-कदम जीवन की जय यात्रा का प्रिय प्रतीक है
मैं सगर्व सोल्लास निरन्तर उन लोगों का गुण गाता हूँ।"[1]

पूँजीवादी विचारधारा के विरुद्ध इस समाजवादी कवि ने पर्याप्त लिखा है। वे लिखते हैं कि जब तक ये पूँजीवादी व्यवस्था मिट नहीं जाती जब तक ये जीवन स्वस्थ नहीं हो सकता और तब तक ज्ञान विज्ञान की न तो उन्नतिहो सकती है —

"पूँजीवाद ने महत्व नष्ट कर दिया सब का
जीवन का जन का, समाज का कला का
बिना पूँजीवाद को मिटाये किसी तरह भी
यह जीवन स्वस्थ नहीं हो सकता
ज्ञान-विज्ञान से किसी प्रकार
कोरा कल्याण नहीं हो सकता।"[2]

त्रिलोचन को धर्म पर कोई आस्था नहीं है। जैसा कि सभी प्रगतिशील कवियों का दृष्टि-कोण है क्योंकि वे धर्म को रूढ़िवाद से ग्रस्त और जड़ता का प्रतीक मानते हैं। आज के नये मानव के लिए इस धर्म की कोई आवश्यकता नहीं —

"करता हूँ आक्रमण धर्म के दृढ़ दुर्गों पर
कवि हूँ, नया मनुष्य मुझे यदि अपनायेगा
उन गानों में अपने विजय गान पायेगा
जिनको मैंने गाया है वैसे मुर्गों पर
निर्भर नहीं सवेरा होना, लेकिन इतना
झूठ नहीं है, जहां कहीं वह बड़े सवेरे
ऊँचे स्वर से बोला करता है मुँह फेरे

1- धरती, पृ0 108
2- धरती, पृ0 98

कोई पड़ा नहीं रह सकता, फिर भी कितना

उसमें बल है, केवल निर्मल स्वर की धारा

उसकी अपनी है जिसकी अजस्र कल कल में

स्वप्न डूब जाते हैं जीवन के लघु पल में

तम से लड़ता है इस पश्यन्ती के द्वारा

धर्म विनिर्मित अन्धकार से लड़ते-लड़ते

आगामी मनुष्य तुम तक मेरे स्वर बढ़ते।'[1]

कवि का सामाजिक दृष्टिकोण यथार्थ के दायरे में ही अभिव्यक्ति करता है उन्हें दुखी मनुष्यों से है, सहानुभूति है। वो उसके दुख को बँटाने के लिए लालायित रहते हैं ये प्रगतिशीलता काल्पनिक नहीं अपितु अनुभूतिमय है। इसलिए अभिव्यक्ति में ईमान-दारी दिखलायी पड़ती है —

'दुख में दबे हुए मानव आ-आ मैं ले लूँ

तेरा सब दुख तू हल्का होकर सिर ताने

आसमान में, इस दुनिया को अपनी माने

जिसको अपनी ही नहीं मानता किसको दे लूँ

तेरा ईर्ष्या द्वेष, कपट, पाखण्ड उसे लूँ

और डाल दूँ तुरन्त महासागर के थाने।'[2]

इस प्रकार त्रिलोचन की समस्त काव्य कृतियों का अनुशीलन करने से उनकी प्रगतिशील विचारधारा का विस्तृत परिचय प्राप्त होता है। इनकी प्रगतिशील कविता में मार्क्सवादी चिन्तन दृष्टि मुखर है। वे नये समाज की रचना पर बल देते हैं। आज के नये मानव के लिए ईश्वर और धर्म जैसी बातें रूढ़िवादिता की परिचायक हैं। वे जीवन में श्रम

1- दिगन्त, पृ0 15

2- शब्द , पृ0 19

के महत्व को पहचानते हैं। इसलिए श्रमजीवियों को गले से लगाकर उनके प्रति अपनी गहरी आस्था व्यक्त करते हैं। ये समझते हैं कि पूँजीवाद समाज का शत्रु है इसलिए वे उनके प्रति आक्रोश व्यक्त करते हैं। उनकी समाजिक विचारधारा में आशावाद का दृढ़ स्वर है। वे मानवतावाद के पुजारी बनकर सबका दुख दर्द बाँट लेना चाहते हैं और सबको समान रूप से विकसित और सुखी देना चाहते हैं। समाज के विकास में बाधक तत्वों पर निर्मम प्रहार करते हैं और लोक के पक्षधर कवि बन-कर लोकभाषा को अधिक शक्तिमयी समझते हैं। अतः यह स्पष्ट है कि त्रिलोचन धरती के कवि हैं। धरती के पुत्रों को सुखी देखना चाहते हैं। उन्हें जड़ता से मुक्त कर नये समाज की संरचना में संपृक्त करना चाहते हैं।

आर्थिक चिन्तन :--

आज के भौतिक युग में सर्वत्र अर्थ की प्राधान्य देखने में आता है। जिसे देखो वही अर्थ चिन्ता की दौड़ में धूप में अस्त-व्यस्त है। अर्थ का भार किसानों मजदूरों एवं श्रम जीवियों के लिए एक समस्या बना हुआ है। एक ओर पूँजीपति धन, बटोरने में लगे हुए हैं दूसरी ओर सर्वहारा वर्ग रोजी-रोटी के लिए मोहताज है। आर्थिक वैषम्य के इस वातावरण में कवि को आर्थिक दृष्टि से विपन्न व्यक्तियों से गहरी सहानुभूति है। किसी आर्थिक समस्या के चिन्तन में डूबा हुआ कहता है —

"कमाई का हिसाब जोड़ना, बराबर चित्त उचटना
इस उस पर मन दौड़ाना फिर उठकर रोटी
करना, कभी नमक से, कभी साग से खाना
आरर डाल नौकरी है, यह बिल्कुल छोटी
है, इसका कुछ ठीक नहीं आना-जाना
आए दिन की बात है, वहाँ टोटा टोटा।"[1]

1- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 46

आर्थिक विषमता में व्यक्ति की क्या स्थिति हो जाती है इसका भी कवि ने सुन्दर चित्रण किया है। दैन्य ग्रस्त व्यक्तियों को सुख की चहल-पहल सुनने को नहीं मिलती उनसे विपत्ति ही आकर मिलती है। सम्पत्ति या अन्य व्यक्ति नहीं। वह विपत्ति ही निर्धन व्यक्ति को व्याकुल और विचलित कर देती है। यद्यपि उसका मन दूसरों को कुछ देना चाहता है किन्तु वह सोचता ही रह जाता है कि आखिर मेरे पास है ही क्या जो मैं दूसरों को दूँ। दैन्य जीवन की यह समस्या कितनी जटिल है। कवि के शब्दों में द्रष्टव्य है —

"ऐसे भी मनुष्य हैं जन्मे
दुनियाँ में जिनको दुर्लभ है कानी कौड़ी
प्यार उन्हें भी मिलता है, सुख का कोलाहल
उन्हें नहीं सुन पड़ता है— विपत्ति की दौड़ी
दौड़ी उन्हें भेंटती है, करती है विह्वल
क्या दूँ, क्या दूँ, क्या दूँ ?
अपनी पहुच में कहाँ है जो मैं ला दूँ।"[1]

आज के समाज में जिसे देखिये वही धन कमाने की दौड़ में दौड़ता हुआ दिखाई देता है किन्तु सहृदयता नाम की वस्तु दिखलायी नहीं पड़ती। किसी के पास इतनी सहानुभूति नहीं दिखायी पड़ती कि दीनों एवं असहायों को देखकर उनकी सहायता के लिए उद्यत हों। उनका दुख दर्द देखकर दुखी हो। दुखी व्यक्तियों को देखकर चुपके से खिसक जाना उनकी आदत बन गयी है। मानवता के लिए इस अमानवीय व्यवहार पर कवि कहता है —"धन दौलत पर सभी दौड़ते हैं पर किसके

श्री मैं दुखिया परममता हूँ, देखा खिसके।"[2]

1- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 42

2- वही, पृ0 73

कवि को इस बात की चिन्ता है कि आज का मनुष्य कितना निर्मम हो गया है। अपने स्वार्थ के कारण एक दूसरे से दूर भाग रहा है। ममत्व जैसे शब्द निरर्थक हो रहे हैं जिसे देखिए वही प्रलोभनों में उलझा हुआ है। इन सबका मूल कारण यह अर्थ प्रधान युग ही है। यथा —

"परस्परावलंबन क्या न होगा/ममत्व क्या शब्द बना रहेगा /
विरथ चिंतातुर स्वप्नदर्शी / अतृप्त ही प्राण तजा करेंगे/
प्रलोभनों से मन मुक्त होगा/ कभी कि जो नाटक आज का है/
वही चलेगा कल भी यहाँ वहाँ/प्रयोग का अंत कभी न होगा/[1]

आज अर्थ की दुनिया इतनी बावली है जो श्रम करते हैंउनको सुख की रोटी भी नहीं मिलती और जो दयालु महात्मा हैं वह मार खाते हैं। मजदूर मजदूरी करता है फिर भी धक्के खाता है जो अकर्ता हैं वे महात्मा बने हुए हैं और बड़े-बड़े पूँजीपति उनके पास आकर उनके चरण स्पर्श करते हैं।अर्थ के यह अटपटे खेल कवि के हृदय को व्यथित करते हैं —

"बैरागी रागी है और माल खाते हैं,
मूढ़ विधाता का है यह छोटा सा खेला
देख कती मजदूर वस्तु ढोकर लाते हैं
मजदूरी के पैसे पर धक्के पाते हैं
साधु सन्त सोते हैं सुखी पाँव फैलाए
कितने ही लखपती पास उनके आते हैं
चरण धूलि लेते हैं वही स्वर्ग से आये।"[2]

त्रिलोचन को मानव समाज अत्यन्त प्रिय है लेकिन उसकी विपन्नता उसे कुरेदती है वे नहीं चाहते कि समाज में कहीं पेट की आग से व्यक्ति पीड़ित हो। सबको शांति

1- अरधान, पृ0 13
2- वही, पृ0 47

मिलनी चाहिए। इस उत्तरदायित्व शासन को लेना चाहिए। इस आर्थिक पीड़ा और वैराग्य में ऊबकर कवि अपने इच्छित भविष्य की कल्पना को व्यक्त करता हुआ कहता है —

"कहीं दबाई न दे, पेट की आग न दुख दे
कहीं किसी को, शान्ति सभी की हो शासन की
शान्ति-शान्ति की विडम्बना है और व्यवस्था
यहीं अव्यवस्था भी है, जो सबको सुख दे
वह आचरण और भाषा हो संशासन की
रीति मिटे, अपनाव ही बने नई आस्था।"[1]

ग्रामीण समाज में पूँजीपति ऋण देकर ब्याज का धन्धा करते हैं। मनमानी वसूलने के लिए अनेक अथकड़े अपनाते हैं। यह शोषण कवि को असहनीय है। अर्थ के इस नग्न नृत्य को कवि अपनी शैली में कितनी तन्मयता से व्यक्त करता हुआ कहता है —

"किसी बड़े को बड़ा ऋण दिया, ब्याज न आया,
फेरे करते रहे, पाँव उनके छिया गए
प्राप्ति नहीं दीखी तो ब्राह्मण भाव आ गए
न्याय देवता करे इसलिए बाल रखाया
पाँच साल पर ऋणी गया, कर दी भरपाई
दूबे ने भी देव दया से जटा कटाई।'[2]

पूँजीपतियों के प्रति त्रिलोचन के मन में सहज आक्रोश रहता है। उसकी दृष्टि में ये बड़े ही गद्दार होते हैं। हमारे देश के सिपाही जब ब्रिटिश शासन की ओर से युद्ध करके अपना कटु अनुभव लिए हुए लड़ते हैं तब अपनी मानसिक अभिव्यक्ति इस प्रकार व्यक्त करता है —

"जानते हैं ये कि थैलीशाह धोखेबाज होते
एक थैली के लिए वे सहज ही गद्दार होते

1- तुम्हें सौंपता हूँ, पृ0 45

2- वही, पृ0 55

समझ योरप की कहानी ये सँभलकर आ रहे हैं
सोचते, सुनते, समझते, देखते, तैयार होते
ये मजूर किसान की सन्तान है अभिमान उसके
वक्ष में विश्वास की आँधी लिए घर आ रहे हैं
आज वे संगीन कन्धों पर रखे घर आ रहे हैं।'[1]

कवि किसानों और मजदूरों की शक्तिसे परिचित है। वह जानता है कि आज धरती उन्हीं के बल पर टिकी हुई है। आज शोषकों की आवश्यकता नहीं। विश्व को आर्थिक दृष्टि से हरा-भरा करने का श्रेय इन किसानों औरमजदूरों को है। वे शक्ति के उद्गम स्रोत हैं और उन्हें कोई पराजित नहीं कर सकता।

"ये समझ आए किसान मजूर में बलक्या भरा है
ये समझ आए किसान मजूर के बल से धरा है
ये समझ आए कि जोंकों को नहीं है काम कोई
है मजूर किसान जिनसे विश्व का जीवन हरा है
शक्तिके उद्गम किसान मजूर अपराजेय निश्चय।"[2]

त्रिलोचन धन की उतनी परवाह नहीं करते। उन्हें जन की परवाह है। जनता का सुख ही उनका सुख है। इसी बात को वे रूपक के आवरण में कहते हैं —

"धन की उतनी नहीं मुझे जन की परवा है
जितना जो मुझसे खुलकर मन से मिलता है।
मैं उसका वशवर्ती हूँ, इससे खिलता है
मेरे प्राणों का शतदल एक ही दवा है।"[3]

पूँजीवादी व्यवस्था में हर काम की सिद्धि अर्थ से होती है। अन्य सभी साधन व्यर्थ होते हैं। अर्थ से ही सब दुख दूर किये जा सकते हैं। हर प्रकार केसुख साधन सुलभ

1- तुम्हें सौंपता हूँ, पृ0 113
2- वही, पृ0 114
3- अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ0 17

सुलभ किये जा सकते हैं। यथा —

"काम उसका नहीं अटकता है
जिसकी अंटी में दाम होता है
×　　　×　　　×
दुःख क्या है जो पास पैसा है
ऐसे हाथों में जाम होता है।"[1]

इस प्रकार आर्थिक-चिन्तन की दृष्टि से कवि की दृष्टि अर्थ वैषम्य पर ही रही जिसके कारण समाज मेंअत्याचार- शोषण और अन्याय पनपता है। कवि ने स्वयं व्यक्तिगतरूप से भी आर्थिक संकट सहा है। लेकिन उन्होंने व्यक्ति संकट की तुलना में समाज संकट पर अधिक बल दिया है। उन्हें आर्थिक विपन्नता से ग्रस्त किसानों-मजदूरों और परिश्रमी व्यक्तियों के प्रति गहरी सहानुभूति है इसलिए सामन्तों, जमींदारों और पूंजीपतियों के प्रति गहरा असन्तोष व्यक्त किया है क्योंकि इन्हीं के कारण आर्थिक वैषम्य और सामाजिक तनाव फैलता है। कवि ने इन सबके विरूद्ध क्रान्ति करने का आह्वाहन किया है और नये समाज की परिकल्पना की है।

राजनीतिक विचारधारा :—

यद्यपि त्रिलोचन का राजनीति से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है किन्तु फिर भी वे सर्वोदय एवं साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित हैं वे लाल क्रान्ति से भी जुड़े हुए हैं।मानवतावाद उनका प्रमुख ध्येय है। वे कालमार्क्स के सिद्धान्तों से भी सहमत प्रतीत होते हैं, उनके ग्रन्थों के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है। प्रजा की की क्रान्ति के बारे में कवि का निम्नलिखितवक्तव्य कवि के राजनीतिक विचारधारा के परिचायक हैं —"वह निकली वह पीड़ित जनता
आजादी का झण्डा ताने

1- गुलाब और बुलबुल, पृ0 14

बन्दी दिल के भाव उबलते

बम गोलों से चले तराने

प्रास चिरंजीवी हो' गूंजा

महाकाल की बाढ़ चली यह

खूं से जमीं जमाने वाली

जन तरंगिणी उमड़ चली है।'[1]

हमारे देश के सैनिक ही जो ब्रिटिश शासन से लड़ने गये थे उनके लौटने पर कवि का हृदय भर आया और अफ्रीका रशिया और यूरोप में अपनी धाक जमाने वाले वीरों की प्रशस्ति गाता हुआ कवि कहता है —

"हिन्द जी भर देख तेरे पुत्र ये घर लौट आये

जान की बाजी लगाकर ये तुझे सम्मान लाये

उग्र अत्याचार से लोहा लिया डटकर इन्होंने

बैरियों के और अपने रक्त में निर्भय नहाये

अफ्रीका, रशिया, योरप आज जिनको जानता है

वे बहादुर लाल तेरे ले विजय घर आ रहे हैं

आज वे संगीन कंधों पर रखे आ रहे हैं।"[2]

जहाँ समाजवादी विचारधारा साम्यवाद के स्वर में बोलती है वहाँ कवि विषम समाज व्यवस्था को उखाड़ फेंक देने के लिए आतुर दिखाई पड़ता हैऔर वो साम्यवाद की वजह से ही सन्तोष प्राप्त करने की प्रतीक्षाकरता है —

"मुझको प्रिय है बड़ा खेत में है जो मोथा

मैं उस को उखाड़ डालूँगा - ज्वर है फसली

विषम समाज व्यवस्था सम जब दिखलाएगा।

तभी तभी संतोष इस हृदय में आयेगा।"[3]

1, तुम्हें सौंपता हूँ, पृ0 119

2- वही, पृ0 111 3— उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 93

अब बिहार में क्रान्ति ज्यादा फैल गयी। उस समय कवि के मन में एक ज्वार उत्पन्न हुआ और इस धारा में सम्मिलित होते हुए भी अपने मन की बात लिख डाली — "हुआ उपद्रव हो गया बिल्कुल और बिहार

अब दिल्ली किस कण्ठ में पहनाएगी हार

पहनाएगी हार गर्व से इतरायेगी
अथवा कुण्ठा ही कुण्ठा में चितरायेगी
संघर्षों के चलते देखो क्या है सम्भव
अभी क्या कहा जाये इस तरह हुआ उपद्रव।'[1]

नेता गणों की लूटपाट को देखकर त्रिलोचन क्षुब्ध हो जाते हैं और उनके विरूद्ध जनता को सचेत करने के लिए उसका आह्वाहन करते हैं। उनका यह विद्रोह सड़ी-गली व्यवस्था के प्रति उसके इस क्रान्तिकारी स्वर में साम्यवादी राजनीति बोलती प्रतीत होती है।

'सड़ी व्यवस्था के विरूद्ध विद्रोह के लिए
मैं ललकार रहा हूँ अब सोई जनता को
जिसको नेता लूट रहे हैं कह कर ताको
मत, हम तो है ही, अत्यधिक विमोह के लिए[2]

भारत की तटस्थ नीति के विषय में भी कवि ने चिन्तन किया है। उसका कहना है कि यदि हमारी तटस्थता की नीति पराधीनता पर आधारित है। हम अन्य राष्ट्रों के सह - योग से ही यही नीति चला सकते हैं तो इससे क्या लाभ निकलेगा। जब सभी राष्ट्र इसको स्वीकार करें तब तो इसकी सार्थकता है और देशों का पारस्परिक भेदभाव दूर हो सकता है और स्वार्थिक सीमायें मिट सकती हैं —

"हम हो जायें तटस्थ, हमारी यह तटस्थता
औरों की मुहताज रहेगी, इस पर सबकी
सहमति हो तो अर्थ रहेगा और स्वस्थता
भी होगी सप्राण मिटी प्राचीरें कब की।'[3]

1- तुम्हें सौंपता हूँ, पृ0 99 2- अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ0 87
3- [illegible]

विश्व शान्ति के विषयमें भी कवि सोचता है। राजनीति के क्षेत्र में शान्ति का भी व्यापार होता है और जो राजनीतिक सन्धियाँ होती है उनमें भी व्यक्तिगत स्वार्थ छिपे रहते हैं। यदि देशों के अधिकारी चाहें तो ये सम्भव भी है। वे असम्भव को सम्भव कर सकते हैं और विश्व के भाग्य को परिवर्तित कर सकते हैं। इसी राजनीतिक दुरभिसंधि को चित्रित करते हुए ये कहते हैं —

"जग में व्यापार किया जाता है
और सन्धियोंमें होती है मैत्री सस्वर
देश-देश के अधिकारी जो चाहें कर दें
इन पर रोक कहाँ है शक्ति बाहिर जितनी
उतनी है वे चाहें तो गूँगों को स्वर दें
भाग्य विश्व का अभी करवटें लेगा कितनी।"[1]

महाकुम्भ में जो भीषण महानाद का दृश्य उपस्थित हुआ था उसमें नेताओं की स्थिति पर कवि ने कठोर व्यंग्य किया है —

"चमत्कार है, दावत होने पर दुर्घटना
नेताओं को ज्ञात हुई, फिर कारें दौड़ी
दौड़ी इधर से उधर पहुँची, यों ही घटना
पड़ता है अवसर पर, सजी सजाई चौड़ी
सड़क दहल सी उठी, भीड़ थी मानो गौड़ी
रीति, पूछ की पंक्ति में कसी कसाई।"[2]

कवि भोली-भाली जनता को ठगने वाले नेताओं से चिढ़ता है। कोई सफेद टोपी लगाकर, कोई लाल टोपी लगाकर जनता के बीच आते हैं और अपना-अपना प्रचार करते हैं और झूठे वायदे करते हैं। जनता को बरगलाते हैं। इस राजनीतिक छलना का पर्दा-

---

1- तुम्हें सौंपता हूँ, पृ0 92   3-

2- अरघान, पृ0 59

प्र.श करता हुआ कवि कहता है —

"धौली काली, लाल टोपियों की मर्यादा
का गुणगान वायुमण्डल को चीर रहा है
नित्य निरंतर, सब कहते हैं अभी कहा है
अंश मात्र, टोपी ने इतना लिया, लबादा
*　　　*　　　*　　　*
है वह जो गूंगी जनता है, जिसे जवाहर
जयप्रकाश गोलबल कर फुसलाया करते हैं —
स्वर्ग तुम्हें दिखलाएंगे हम, पर डरते हैं
कहीं तुम्हें यह या वह कोई रंग मनोहर।"[1]

खद्दर धारण करने वाले जन प्रतिनिधियों के प्रति कवि का यथार्थ पूर्ण व्यंग्य उल्लेखनीय है। जो उच्च पदों पर बैठ जाते हैं उन गद्दी नशीनों के झूठे वक्तव्यों को सुनने के लिए यह भूखी अपमानित और जड़ जनता विवश है। इन नेताओं को तो अपना घर भरने से अवकाश कहाँ? जो जनता के दुख दर्द को सुने और उसको दूर करने का उपाय करें। इस राजनीतिक दुर्व्यवस्था पर कवि का कठोर व्यंग्य देखिए —

"उसे सहा जाता है, जो गद्दीनशीन हैं
अलापते हैं इसी राग को ये जनता के
प्रतिनिधि हैं, भूखी, अपमानित जड़ जनता के
ये खद्दरधारी प्रतिनिधि हैं, दीन हीन हैं
जरा और इन घर भर दो, क्योंकि तुम्हारा
दुख दर्द नया नहीं है, बनो सहारा।"[2]

इसी प्रकार महाकुम्भ के मरण पर राज्य शासन की जो भूमिका थी कवि को उस पर बहुत आक्रोश है। यदि स्वतंत्र देश में भी जन जीवन की रक्षा का प्रथम उद्देश्य नहीं

1- अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ0 36

2- वही, पृ0 37

सिद्ध हो सकता तो शासन का अर्थ ही क्या है। इन्हीं भावों को कवि के शब्दों में देखिये — "महामरण का चंड गदाभिघात झेला था

मूक देश ने दुःशासन का, याद आज भी

हूक जगा देती है, पाँव तले ढेला था

कड़ा नुकीला मानो अगर स्वतंत्र राज भी

जनता की जीवन रक्षा का प्रथम काज भी

न कर सके तो किस मतलब के लिए राज है?'[1]

साम्यवाद के अनुसार देश और जाति के बन्धन तोड़कर मनव को एक सूत्र में बँध जाना चाहिए। कवि त्रिलोचन जी भी मानवता के दिग्विजय के लिए जनता को आदर्श दिया —

"देश के ये बँध तोड़ो

जाति के ये बँध तोड़ो

वर्ण-वर्ण खिले सुमन दल

रुचिर-रुचिर सुगंध जोड़ो

रूप में हो तेज संचय

तेज मेंहो प्राण परिचय

सब विराजे एक रचना में वही है पास लानी।'[2]

सरकार से सम्मान प्राप्त व्यक्ति समाज का क्या करते हैं? जनता तो पिसती ही रहती है और पुलकित होकर लोग आनन्द कीअनुभूति करते हैं। इसी राजनीतिक व्यंग्य को तीक्ष्ण करते हुए त्रिलोचन कहते हैं —

"पद्म विभूषण जो हसे हंसते रहे

हम जो लहरों में फंसे फंसते रहे

बाघ बूढ़ा व कड़ा सोने का

लोग दलदल में फंसे, फंसते रहे।'[3]

1- अरधान, पृ0 65

2- सबका अपना आकाश, पृ0 33

3- गुलाब और बुलबुल पृ0 11

इस प्रकार त्रिलोचन की काव्य रचनाओं में राजनीति की दृष्टि से साम्यवादी विचारधारा का गायन किया गया है। ये शासन के प्रति कठोर यथार्थवादी व्यंग्यपरक दृष्टिकोण रखते हैं। उनकी दृष्टि में जनता का सुख ही सही प्रजातंत्र है। यदि राज्य प्रजा की रक्षा नहीं कर सकता तो उससे क्या लाभ, कवि का कथन है कि सामाजिक व्यसन, अन्याय, प्रपीड़न और अत्याचार बन्द होना चाहिए और इन सब बातों का उत्तरदायित्व शासन पर है और विभिन्न दलों के नेता अपनी-अपनी टोपी लगाकर अपना-अपना राग अलापते हैं। और भोली भाली जनता को झूठे आश्वासनों से मुग्ध कर देते हैं। उनका दुरूपयोग करते हैं जबकि जनता के दुख दर्द को दूर करना इन नेताओं का प्रथम कर्तव्य होना चाहिए। प्रायः इन्हीं भावों की अभिव्यक्ति कवि ने अपने अनेक ग्रन्थों में की है। इस प्रकार राजनीतिक दृष्टि से कवि साम्यवादी विचार--धारा का पोषक और मानवतावाद का सच्चा समर्थक प्रतीत होता है।

सामाजिक एवं सांस्कृतिक चिन्तन :--

त्रिलोचन जन-जीवन के कवि हैं। इसलिए उनका समाजवादी दृष्टिकोण अत्यन्त उदार है। संस्कृति के क्षेत्र में भी वे जड़ता और रूढ़ियों का पक्ष नहीं लेते। उन्हें तो ऐसे समाज की आवश्यकता है जिसमें मानवता का मूल्य हो सबको विकास का समान अवसर मिले, वर्ण-व्यवस्था या जाति व्यवस्था की खाई न हो। यहाँ तक कि वे संकुचित राष्ट्रवाद के पक्ष में भी नहीं हैं। वे अखिल विश्व के हैं और अखिल विश्व उनका है। उन्हें देश की दुर्दशा भी नहीं देखी जाती क्योंकि उससे मानव समाज ही तो क्षत-विक्षत हो रहा है। यथा --

"आपत्काल स्वदेश और जन को जैसा मिला है अभी
वैसा और कभी न था, समय ने क्या-क्या दिखाया नहीं
सारा देश विवर्ण है, विकल है, अत्यन्त उद्विग्न है

लाशा से हतदर्प है, व्यथित है, विक्षुब्ध है, श्रान्त है।'[1]

त्रिलोचन इस समाज को निर्मल बनाना चाहते हैं। घर घर में गृहलक्ष्मी की मुस्कान देखना चाहते हैं। वे समाज में ऐसा दीप जलाना चाहते हैं जिससे दम्भ, द्वेष, अन्याय घृणा, छल, आदि का अंधकार दूर हो जाए। उनका यह दृष्टिकोण कितना महान है।

"इस जीवन में रह न जाय मल
द्वेष, दंभ, अन्याय, घृणा, छल
चरण-चरण चल गृह कर उज्ज्वल
गृह-गृह की लक्ष्मी मुसकाओ।'[2]

इतना ही नहीं वे उषा की लालिमा को समस्त वसुधा में देखना चाहते हैं। वे स्वाभिमानी और जन-जन के पोषक हैं और सद्भाव की धारा को बहाकर समाज को उन्नत एवं परिष्कृत रूप में देखना चाहते हैं।

"उषा का अनुराग पूर्व नभ से हेमाद्रि के श्रृंग को,
कर्णालंकृति दे, समस्त वसुधा सुस्नात हो, मुदित से,
अन्वेषी अभिमान मान अपना पाएँ, सुधी तृप्त हों,
प्राणों को यह ज्योति दिव्य कर दे, सद्भाव धारा बहे।'[3]

कवि के लिए यह समाज सन्तोष दायक नहीं है। वह इसका नये सिरे से निर्माण करना चाहता है। समाज के परिवर्तन की यह मांग केवल इस कवि की नहीं है अपितु समय की है जिसे ठुकराया नहीं जा सकता।'

"मुझे सूत्र वह कहाँ मिलेगा, मुझ को दुनिया
नापसंद है जो रहने के लिए मिली है,
मेरे संतोषों की सारी नींव हिली है,
कठी कार्य करना है जोकरता है धुनिया
दुनिया, तुझे बदल देने की इच्छा जागी,
एक दो नहीं, आज जमाना ही है बागी।'[4]

1- धैती, पृ0 28   2- सबका अपना आकाश, पृ0 16

3- धैती, पृ0 29   4- अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ0 [illegible]

त्रिलोचन यह मानते हैं कि वेदों में जिस सहस्त्र शीर्षा पुरूषः ' की परिकल्पना की गयी है वह व्यापक मानव समाज ही है। इसके अतिरिक्त विराट पुरूष है ही क्या? सन् 1953 के महाकुम्भ के अवसर पर एकत्र जन सागर को देखकर उसे यह विश्वास हो गया कि वास्तव में हजार सिरों वाला, हजार नेत्रों वाला, हजार पैरों वाला विराट पुरूष यही विराट जन सागर है। इसी विश्वास में वह मानवता की व्योम व्यापी विजय गान का स्वर भरता हुआ कहता है —

"जनता का समुद्र वह देखा शीश झुकाया,
तभी सहस्त्रशीर्षापुरूषः याद आ गया
उन आँखों को देखा, सहस्त्राक्षः गाया
चरणों को देखा, तो सहस्त्रपात छा गया
प्रतिबिम्बित होकर मानस में, मुझे भा गया
वह विराट दर्शन मैंने विश्वास पा लिया,
वह विश्वास जो विजय के नवगान गा गया,
गान के स्वरों से मैंने आकाश छा लिया।'[1]

समाज में धनी या निर्धन कोई भी हो घर में आये हुए का सम्मान करना उचित है। मानवता सर्वोपरि है इसलिए हमें मानवता का सम्मान करना चाहिए।

"[illegible] ठीक नहीं है निःस्व धनी कोई कैसा हो,
अपने घर आए तो उठ कर आसन देना
अच्छा है ऐंठ से अकड़ना माथे लेना
है कुसूर दुनिया है, जब जिससे जैसा हो
किये चलो बस, अपनी दिशा न चूको जग में
मनुष्य सबके ऊपर है, चाहे जिस मग में।'[2]

1- अरधान, पृ0 42

2- अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ0 28

आज मानव-मानव के रक्त का प्यासा है। जिस पृथ्वी में रहकर वह खेला-कूदा और इतनी बड़ी उन्नति की आज उसी की अवहेलना कर रहा है। उसी मानव का रक्त बहाकर प्रलय का दृश्य उपस्थित कर दिया है। समाज की इस भीषण परिस्थिति में कवि इस समाज के प्रतिनिधि मानव को ही समझाता हुआ कहता है—

"मानव, तेरी जब तक मिटी न प्यास रक्त की।
धरती, जिस पर पहले खेला,
उसकी तूने की अवहेला
जो जीवन की हरित ध्वजाएँ
फहराती क्रमशः आगे ला
उस पर अविरत रुधिर बहाकर
लाया पास प्रलय की वेला
स्वघ्नी तू ने सृष्टि-कल्पना की अक्षत की।"[1]

कवि जानता है कि आज के समाज में मानव का मूल्य गिर गया है। पूँजीवादी व्यवस्था के कारण जनता का समाज का, एवं जीवन का महत्व समाप्त हो गया है इसलिए चाहें हम ज्ञान और विज्ञान का जितना प्रयास करें समाज का कल्याण नहीं हो सकता।[2]

हमारे समाज में व्यक्ति का सही मूल्यांकन नहीं हो पाता। यहाँ तक कि लोग हीरे को भी कौड़ी के बराबर तौलते हैं। कवि इस व्यवस्था से होकर कहता है—

"बात कुछ ऐसी हो गयी है अब की पूँछो मत
हाट में कौड़ी की हीरा भी आज भुनता है।"[3]

यद्यपि समाज में इतनी दुर्व्यवस्था है किन्तु फिर भी कवि नये समाज निर्माण की अपेक्षा करता है।

1- तुम्हें सौंपता हूँ, पृ० 22

2- धरती, पृ० 98

3- गुलाब और बुलबुल, पृ० 11

"हम जो जीवन का घर बनायेंगे
उसको मानव का घर बनायेंगे
जिसके गुंजन करें घर, पुर, वन, पथ
ऐसा कुछ शब्द स्वर बनायेंगे।"[1]

समाजवादी चेतना के आधार पर कवि मुक्ति के लिए छटपटाता है। क्योंकि उसे जन मन निरूपाय एवं बन्दी लगता है। जब तक समस्त मानवता को आनन्द नहीं मिलता तब तक एक व्यक्ति के आनन्द से समाज कल्याण नहीं हो सकता —

"मुक्ति कहाँ है, मुक्ति कहाँ? जीवन बन्दी है।
पंख फड़फड़ाती है मन में मुक्ति विचारी
तन के बन्धन में जन-मन निरूपाय पड़ा है
भवरोगी बहुजन हैं, कोई आनन्दी है,
कोकिल का तम के गढ़ में सन्देश बढ़ा है।"[2]

आज के भीषण सांस्कृतिक पतन पर कवि के मन में अनेक प्रश्न उठते हैं।कोई भी व्यक्ति अपने कर्म पथ पर सच्चाई से चलने वाला नहीं दिखता। अतः वे हिन्दुओं से ही क्षुब्ध होकर प्रश्न करते हैं —

"तुम हिंदू हो? कैसे हिंदू हो? क्या जाने"[3]

उसका कहना है कि इस प्रकार के गये गुजरे हिन्दुओं से तो वो मुसलमान ही अच्छे हैं जिन्होंने अपनी संस्कृति नहीं छोड़ी है और इस बात का दावा करते हैंकि हम अपने चालढाल पर अटल हैं उसमें कोई परिवर्तन नहीं किया —

"जरा मुसलमानों को देखो चाल चलावा
अपना नहीं छोड़ते हैं रखते हैं दावा।"[4]

1- गुलाब और बुलबुल, पृ० 12

2- दिगन्त, पृ० 39

3- अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ० 81

4- अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ08।

ग्रामीण समाज की दुर्दशा से कवि के चित्त में बड़ा क्षोभ है वहां छोटे-छोटे खेतों के पीछे झगड़े होते हैं। मेड़ों कोलेकर ही कलह उत्पन्न होता है आपसी मेल-जोल का अभाव है।ठाकुरों की कूटनीति के कारण समाज टुकड़ों में बंट कर रह गया है। पटवारी के खेतों में पैसे के बल पर अपनी क्षुद्र स्वार्थ के कारण झूठे लेख लिखवा दिये जाते हैं। ऐसे व्यक्तियों का सामना करने के लिए समाज को संगठित होकर आगे आना चाहिए -

"छोटे-छोटे खेत, बाढ़ मेड़ों की, अपनी
अपनी चिन्ता मेल जोल से काम नहीं क्या
इस से होगा, काट-कपट ठाकुरों की, बदा
जाने वाला खेवट, क्षुद्र स्वार्थ की झपनी।'
लुटे सताए हुए आदमी जहां पड़े हों,
अच्छा हो जागृत जब उन के लिए खड़े हों।"[1]

हमारा समाज ही कुछ ऐसा हो गया है कि तीर्थों की पवित्रता अपवित्रता में परिवर्तित हो गयी है। जहां से पाप और पापी मुक्त होते हैं वहीं इनके बद बन गये हैं।काशी जैसी नगरी की ये स्थिति है। नगर का उद्धार करने वाली नगर निगम जैसी संस्थायें निष्काम कर्म योग में लगी हुई हैं। और उसके सदस्य अपनी जेबें भरने में लगे हुए हैं। इस प्रकार जिस समाज में इतना सांस्कृतिक ह्रास हो उसकेलिए यदि कवि मानस क्षुब्ध होकर इस सड़ी गली समाज व्यवस्था को बदलने के लिए क्रान्ति का स्वर फूंकता हो, व्यंग्य के बाण चलाता हो तो उचित ही है। त्रिलोचन का यह क्षोभ निम्नलिखित पंक्तियों में देखिए —

"काशी पुरी पवित्र हैइसी लिए यहांपर
दुनिया की गंदगी इकट्ठा मिल जाती है,
और छोर से लोग छोड़ने पाप जहां पर

1- अनकहनी भी कुछ कहनी है: पृ0 77

पहुंचे काशी दशा वहाँ की दिखलाती है,
म्युनिसिपैलिटी डिस्ट्रिक्ट बोर्ड करें तो क्या क्या
करे, हुई नैष्कर्म्य सिद्धि है अनायास ही,
मेम्बर जेबें भरते हैं, इस में भी क्या-क्या
कष्ट उठाने पड़ते हैं, प्रत्येक श्वास ही।'[1]

ऐसा नहीं है कि काशी की वर्तमान व्यवस्था से क्षुब्ध होकर उससे उसने अपना लगाव ही तोड़ दिया हो। काशी की सांस्कृतिक विरासत पर उसे अब भी आस्था है। वहाँ ग्रामीण जीवन की सी अनेकरूपता है।

"काशी मुझे गाँव सी लगती है, शहराती
हवा यहाँ कम से कम है सब आसपास से
घुले मिले रहते हैं, अपना रंग दिखाती
प्रकृति मनुष्यों में है, धरती से आकाश से।'[2]

कवि इस समय भी काशी में रहने वाले और चबा चबैनी गंग जल जो पूजबै करतार' तो काशी न छोड़ये विश्वनाथ दरबार' इस उक्ति को मानने वाले सच्चे व्यक्तियों के त्याग पर मुग्ध है। ये विशेषतः अन्य तीर्थों में कहाँ मिलती है। कबीर और तुलसी की ये नगरी काशी अपनी आन-बान में नित्य नवीन है।

काशी के विषय में कवि का यह सांस्कृतिक दृष्टिकोण प्रगतिशीलता के सिर पर चढ़ कर बोलता है। भारतीय संस्कृति की यह विशेषता कवि के मन को दूर दूर तक प्रभावित किये हुए है। कवि के ही शब्दों में देखिए —

"है वे जन भी मस्त मिलेंगे ऐसी मस्ती
और कहीं तो नहीं मिलेगी, चना चबैनी
और गंगजल के मस्ताने हैं यह हस्ती

1- अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ0 73
2- वही, पृ0 71

और कहाँ है, अर्धे तीरथराज त्रिवेनी

रोज-रोज ताजा है कभी नहीं है बासी

आन बान में कबिरा तुलसी की यह काशी।'[1]

कवि के चित्त में जनता के प्रति अपूर्व आस्था है। जब वह कुम्भ स्नान करने के लिए जाता है तब पुलिस द्वारा जनता को रोकने पर क्षुब्ध हो जाता है। वह कहता है कि उनको रोको मत, उन्हें सुविधायें दो, पानी पिलाओ औरमार्ग दो। ये बल प्रयोग से नहीं रुक सकते —

"आने दो आने दो, जनता को मत रोको

पर्वत की दुहिता है, कब रुकने वाली है,

पथ दो प्याऊ बैठा दो, चलते मत टोको

बल प्रयोग देखकर कब झुकने वाली है।'[2]

महाकुम्भ में जब नागा साधुओं की भीड़ जनसाधारण को डराती हुई चलती है तब कवि त्रिलोचन महानाश के निमित्त स्वरूप इन साधुओं पर कठोर व्यंग्य करते हैं। क्योंकि इन्हीं के कारण ये भयंकर दुर्घटना हुई —

'नागों का यह नंगा नाच और वह चिमटा

भांजते हुए जाना फिर तान कर डराना

जन साधारण को समूह जिनका था सिमटा

आस पास कौतूहल से, भयभीत कराना

और भगाना, प्रेत रूप से उन्हें छराना

× × ×

लानत है, लानत, विराग को राग सुहाए

साधू होकर मास मनुज का भर मुंह खाए।'[3]

1- अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ0 7।

2- अरघान, पृ0 43

3- अरघान, पृ0 46

इस प्रकार हमारे समाज में नागा साधुओं ने जो आतंक जमा रखा है उसकी कठोर शब्दों में भर्त्सना करके कवि ने यह दिखाया है कि ये मानवीय समाज केनिशाचर हैं और साधुओं का वेश बनाये हुए हैं इनके आतंक से हमें समाज को मुक्त करना चाहिए। कहीं तो बेचारे मजदूर बोझा ढोकर अपना पेट पालते हैं फिर भी धक्के खाते हैं और दूसरी ओर साधु सन्त अपने ढोंग से समाज को छलते हैं। कुछ काम न करके माल उड़ाते हैं। हमारे समाज में यह कैसा वैषम्य है?

"वैरागी रागी हैं और माल खाते हैं,
मूढ़ विधाता का है यह छोटा सा खेला
देख कुली मजदूर वस्तु ढोकर लाते हैं
मजदूरी के पैसे पर धक्के पाते हैं
साधु संत सोते हैं सुखी पाँव फैलाए
कितने लखपती पास उनके आते हैं
चरण धूलि लेते हैं, वहीं स्वर्ग से आए।'[1]

हमारे समाज में पुलिस इतनाअत्याचार करती है। कभी तो नंगा झोरी लेकर लंगोट तक उतरवा लेती है, कभी गाली देती है और बाहर निकाल देती है। इस अत्याचार को कवि लोक भाषा के माध्यम से व्यक्त करता हुआ कहता है —

नंगाझोरी लिहेसि लंगोट उतारि
मारिआएसि पुलीस फेरि, दिहेसि निकारि।'[2]

संक्षेप में त्रिलोचन ने प्रगतिशील जीवन दर्शन अपनाकर नये समाज की परिकल्पना की है और समाज की सड़ी-गली व्यवस्था पर क्षोभ व्यक्त करते हुए उसे जड़ता और रूढ़ियों से मुक्त होने का आदेश दिया है। इस कथन में कहीं तो सरलता है और कहीं व्यंग्य

1- अरधान, पृ० 47

2- अमोला, पृ० 15

वाणी का भी प्रयोग किया गया है। उसको जन-जीवन से निराशा नहीं है। वह जनता को ललकारता है और युग के अनुकूल नये समाज की रचना के लिए आशा बंधाता हुआ प्रोत्साहन देता है। इनकी समस्त रचनाओं में पूंजीवादियों पर आक्रोश सांस्कृतिक पतन पर विक्षोभ और दुर्बलों तथा असहायों के प्रति किये गये दुर्व्यवहारों पर असन्तोष है। और वह अत्याचारियों का सामना करने के लिए सबको संगठित होकर उनसे लोहा लेने का आह्वाहन करता है। उसकी वाणी में ओज है। कथन और करनी में एकता है। सफलता पर विश्वास है और इस समाज को इस मानव को नयी परिस्थितियों के अनुकूल रचने की अदम्य चेष्टा है।

अन्य स्फुट विचार :—

त्रिलोचन के काव्य में उपर्युक्त विचारों के अतिरिक्त कुछ अन्य स्फुटिक विचार भी हैं जो उनके कवि व्यक्तित्व के अनुकूल है। प्रायः उन विचारों को वे कविता के निष्कर्ष रूप में अथवा सूक्ति के रूप में रखते हैं। कतिपय उदाहरणों द्वारा हम अपने कथन की पुष्टि करेंगे। कवि ने उसी काव्य को अमर माना है जो प्रत्येक हृदय को स्पंदित कर देता है। यथा —

हृदय-हृदय में स्पंदित होने वाला
काव्य अमर है सुकवि बीज स्वर बोने वाला।'[1]

इसी प्रकार कवि ये मानता है कि मानव जीवन चोट खाकर [illegible] गतिशील होता है। उसमें उर्वरा शक्ति की वृद्धि होती है। वह जितने ही अधिक संघर्ष झेलता है उतना ही उसका उत्तरोत्तर विकास होता है।

'उर्वर होता है, जीवन भी आघातों से
विकसित होता है, बढ़ता है उत्पातों से।[2]

1- अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ0 10

2- वही, पृ0 14

मनुष्य को अपने कर्तव्य पथ पर अग्रसर होना चाहिए। लक्ष्य की दिशा नहीं चूकना चाहिए। चाहे जिस मार्ग में हो मनुष्यता सर्वोपरि है —

"किये चलो बस अपनी दिशा न चूको जग में"
मानुष सबके ऊपर है चाहे जिस मग में।'[1]

संसार में पैसे का ही बोलबाला है। इसलिए पैसा कमाने केलिए पूँजीपतियों की जूतियाँ हटानी पड़ती है —

"दुनियाँ पैसे से ही तुलती है, कौन कहे चाँदी है जिसकी,
सीधी करनी पड़ी जूतियाँ किसकी-किसकी।'[2]

कवि मानता है कि मनुष्य वही है जो विघ्न-बाधाओं से थककर बैठन जाए —

'बाधाओं के सम्मुख थक कर बैठ न जाना
तुम मनुष्य हो, मनुष्यता का यह बाना है।'[3]

कवि का मत है कि दूसरों के कष्टों को देखकर हमारे नेत्रों से जो आँसू बरसते हैं उन्हीं केद्वारा जीवन रूपी पौधे हरे-भरे रहते हैं। अर्थात् मानवीय संवेदना ही जीवन की जड़ है। कवि के शब्दों में —

"वे आँसू जो औरों के तप-ताप पर धरे
जीवन के पौधे इस कारण हरे-भरे।'[4]

इसी प्रकार हर मनुष्य दुख में डूबा है। जब प्रतिक्षण दुख ही दुख है तो ऐसे दुख की चिन्ता कहा तक की जाये क्योंकि दुःख मुक्ति का कोई चारा ही नहीं है। यथा —

'सांस-सांस में दुःख ही दुःख है, ऐसे दुःख की
चिंता करे कहाँ तक कोई, गति न विमुख की।"[5]

1- अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ0 28
2- वही, पृ0 34
3- वही, पृ0 39
4- वही, पृ0 52
5- वही, पृ0 60

जीवन में साँस लेना ही जीवन नहीं है अपितु उससे भी ऊपर कठोर कर्तव्य पथ है। इसलिए अपने कर्तव्य मार्ग में दृढ़ रहकर जीना जीना ही सत्य जीवन है और कर्तव्य पथ में सफलता के लिए जब व्यक्ति आगे बढ़ता है तब साँस फूलने लगती है और पसीना आ जाता है इसलिए कर्तव्य करते हुए जीना अत्यन्त दुष्कर कार्य है।

'जीना सबसे कठिन काम है, सचमुच जीना
केवल साँस नहीं लेना है, इस से ऊपर
कुछ करना है, कुछ करने में ही इस भू पर
हाँफा पकड़ लिया करता है और पसीना।'[1]

त्रिलोचन शब्दकोशों से प्राप्त शब्दावली की तुलना में लोकभाषा को अपनाने का परामर्श देते हैं। क्योंकि लोकभाषा सजी सजाई और बनी-बनायी होती है। इसकी तुलना में साहित्यिक भाषा कृत्रिम होती है उसे सजाने और सँवारने की आवश्यकता पड़ती है। अस्तु कवियों को काव्य के क्षेत्र में भी लोकभाषा को महत्व देना चाहिए यही कारण है कि उन्होंने अपनी साहित्यिक कविताओं में भी लोकभाषा का प्रयोग किया और अमोला' शीर्षक उनका नवीनतम काव्य संग्रह तो उनकीजनभाषा का ही काव्य संग्रह है।'[2]

गीतकाव्य के लिए केवल फूलों को ही मत चुनो जैसा कि प्राचीन गीत काव्य में होता था। अपितु धूल से भी गीतों की रचना की जाने लगती है। इसलिए कवि गीत काव्य के लिए फूल और धूल दोनों से जीवन की कविता लिखने का परामर्श देता है।

"बदल गयी है इधर गान की पहली धारा
फूल धूल दोनों में ही जीवन है प्यारा।'[3]

1- अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ0 66

2- भाषा ले लो सजी सजायी बनी बनायी
मत बेकल बजाओ कोशों की शहनाई।" वही, पृ0 78

3- वही, पृ0 79

सत्य भले ही कड़ुवा हो किन्तु यदि वह मर्मस्पर्शी है तो सराहनीय है। इस बात को कवि ने डंके की चोट पर कहा है —

"सच कड़वा हो, मर्म स्पृक हो, तो भी अच्छा
कभी नहीं है यह मीठी बातों का लच्छा।'[1]

त्रिलोचन धरती माता के वे सपूत हैं जो शायर और सिंह की भांति अपना मार्ग स्वयं चुनते हैं। भले ही उन्हें अनेक संकटों का सामना करना पड़े।

"बनी बनाई राह मुझे कब, कहा, सुहाई
गहन विपिन में धंसा नहीं कि राम दुहाई।'[2]

कविता के क्षेत्र में आज अभिव्यक्ति कौशल को विशेष महत्व दिया जा रहा है। यदि कथ्य को प्रभावशाली बनाना है तो अभिव्यक्ति कौशल अपनाना आवश्यक है कविका यह विचार इस प्रकार शब्दबद्ध है —

'आज उक्ति जो अभिव्यक्ति में उद्योगी है
दिल में घर कर लेगी यदि है चुनी चुनाई।'[3]

कवि नेताओं और पागलों को एक दूसरे के समकक्ष समझता है। किन्तु उसकी दृष्टि में पागल तब भी अच्छा है क्योंकि पागल तो सीधा सादा होता है और नेता तो घाघ होते हैं-

'नेता पागल दोनों होते हैं घमंडी
नेता घाघ है, मगर पागल सीधा-सादा।'[4]

कवि का मत है कि यदि हाथ में पैसा है तो दुख किस बात पर। पूंजी के बल पर जाम दिये जाते हैं। मस्ती उड़ाई जाती है। अतः दुख भूल जाता है। पूंजी के सम्बन्ध में इस व्यंग्य को इस प्रकार उजागर किया गया है —

'दुख क्या है जो पास पैसा
ऐसे हाथों में जाम होता है।'[5]

1-अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ0 82
2- वही, पृ0 97, 3— वही, पृ0 98
4- वही, पृ0 102
5- गुलाब और बुलबुल, पृ0 63

मनुष्य का जीवन अमूल्य वस्तु है। इसलिए हमें इसका अपमान नहीं करना चाहिए इसका व्यापार नहीं करना चाहिए। इस सूक्ति को इन शब्दों में देखिए —

'जान इंसान की अनमोल चीज है कोई
उसकी बेकद्री का कोई कभी व्यापार न करना।'[1]

दुःख को घटाने के लिए त्रिलोचन जी ने एक ही बहाना बताया है कि अपनी बात एक दूसरे से कहो और सुनो। तुलसी ने भी 'रामचरित-मानस' में लिखा है —

'कहेहु ते कछु दुःख घटि होई'

यही बात कवि के शब्दों में —

"आदमी हो तो यहाँ सुनो भी सुनाओ भी
दुख घटाने का त्रिलोचन नहीं बहाना है।'[2]

अमर-साहित्य-रचना में क्या विशेषता होनी चाहिए, इस बात को भी त्रिलोचन बड़ी सरलता से समझा देते हैं। व्यक्तिगत-प्रतिभा और समाज-चेतना दोनों के पारस्परिक सहयोग से अमर-साहित्य की सृष्टि होती है। यही उनका मत है —

'वैयक्तिक प्रतिभा समाज चेतना परस्पर
मिल जुल कर साहित्य सृष्टि कर गई है अमर।'[3]

संसार मे किसी भी काम को पूर्ण करने के लिए कठोर श्रम आवश्यक है। इस तथ्य को कवि ने इस प्रकार व्यक्त किया है—

'तप के बिना कब गला हिम खिला प्राण
मन की चुना चाह फलती कहाँ है?'[4]

इसी प्रकार कवि का अपना अनुभव यह भी है कि संसार में कोई ऐसा उन्नत व्यक्ति नहीं हुआ, जिसको अपने विरूद्ध कुछ न सुनना पड़ा हो या देखना न पड़ा हो। क्योंकि यह सृष्टि ही ऐसी है। जो आगे बढ़ेगा उसकी आलोचना भी होगी, क्योंकि संसार किसी

1- गुलाब और बुलबुल, पृ0 59
2- वही, पृ0 114
3- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 115
4- सबका अपना आकाश, पृ0 11

की उन्नति देख नहीं सकता, ऐसा प्राकृतिक-नियम है। चाहे राम, कृष्ण या बुद्ध रहे हों, या गाँधी, जवाहर या 'सुभाष' रहे हों। इसी-व्यापक निष्कर्ष को कितने कम शब्दों मे कलात्मक ढंग से कहने का प्रयास किया गया है —

'जिस को पड़े देखना कुछ न अनुकूल,
ऐसी कली कोई खिलती कहाँ है।'[1]

यह संसार कर्मक्षेत्र है। यहाँ निष्काम बनकर रहना भी बड़ा कठिन है। पलायनवाद का आश्रय लेकर कर्म के बन्धनों से बचना बड़ा कठिन है। इस प्रकार कर्म करना ही जीवन का इतिहास बन चुका है। गीता में भी 'नहि कश्चित् क्षणमिह जातु तिष्ठत्यकर्म-कृत'। इसी भाव को कवि ने भी व्यक्त किया है —

'भागकर यहाँ बचा है कौन
अटल है कर्मों के संयोग
यही है जीवन का इतिहास"[2]

संक्षेप में इन स्फुट विचारों में कवि ने अपने वर्तमान-जीवन से जो कुछ सीखा है, उसी को कविताओं में यत्र-तत्र अपने जीवन निष्कर्षों के रूप में व्यक्त किया है। जिनके आधार पर हम कह सकते हैं कि त्रिलोचन जीवन के प्रतिगम्भीर आस्था और विश्वास के कवि हैं। उन्होंने जीवन-सागर के अन्तः स्थल से जो अमूल्य मोती चुने हैं, उन्हीं को यहाँ उनके स्फुट विचारों मेंसंजोया गया है; जिनकी चमत्कृति से कोई भी विचारक आश्चर्य-चकित हुए बिना नहीं रह सकता।

1- सबका अपना आकाश, पृ 11

2- वही, पृ0 19

पंचम अध्याय

त्रिलोचन के काव्य में शैली तत्व

पंचम अध्याय

त्रिलोचन के काव्य में शैलिक तत्व

काव्य के क्षेत्र में 'शैली' तत्व का अपना एक विशिष्ट स्थान है। इसलिए काव्य-शास्त्रियों ने शैली को एक पृथक् तत्व ही मान लिया है। वस्तुतः 'शैली' कवि के कथन का एक ढंग ही है और प्रत्येक व्यक्ति के कथन का अपना एक विशेष ढंग होता है। का भी यही तात्पर्य है कि व्यक्ति स्वयं अपनी शैली का निर्माता होता है। शैली के अन्तर्गत भाषा भी आतीहै, क्योंकि भाषा ही वह साधन है जिसके द्वारा कवि व लेखक अपने भावों और विचारों की अभिव्यक्ति करते हैं। हम सभी जानते हैं कि भाषा विचारों का परिधानहै और इसी के माध्यम से हम अपनी अभिव्यक्ति करते हैं। अभिव्यक्ति का सौन्दर्य ही उसे कलात्मकबनाता है।

'सियन सुहावन टाट पटोरे' कहकर 'तुलसी' ने भी शैली-सौन्दर्य पर बल दिया है। शैली का निर्माण करने में भाषा मुख्य रूप से सहायिका होती है।भाषा के अनेक रूप होते हैं। जैसे — लोक-भाषा या जन-भाषा, उपभाषा, विभाषा, प्रान्तीय-भाषा, राज्य-भाषा, राष्ट्रभाषा आदि। सभी में अर्थ की अभिव्यक्ति करने की अलग-अलग क्षमता होती है, अलग-अलग वैशिष्ट्य होता है। उदाहरणार्थ, लोक-भाषा का सौन्दर्य और मिठास कुछ और ही होता है। उसमें जो लोकोक्तियाँ और मुहावरे प्रयुक्त होते हैं, वे बहुत ही सटीक और तीव्र भावाभिव्यंजक होते हैं। इसकी तुलना में साहित्यिक भाषा कृत्रिम होती है, क्योंकि व्याकरण इसका संस्कार करता है, इसलिए उसमें कृत्रिमता का आ जाना स्वाभाविक है। वह अलंकृत-भाषा होती है और जब भाषा में अलंकृति को स्थान दिया जायेगा तो उसका सहज रूप न होगा, कृत्रिम रूप हो जायेगा। यही कारण है कि अब साहित्यिक क्षेत्र में लोक-भाषा के भी शब्दों का समादर होने लगा है। प्रगतिशील कवियों ने इस तथ्य की ओर ध्यान दिया है।

भाषा सार्थक ध्वनि संकेतोंका वह समुदाय है जिसे हम अपने उच्चारणो - पयोगी अवयवोंके माध्यम से व्यक्त करते हैं। जैसा कि भाषाका परिभाषा देते हुए अनेक विद्वानों ने लिखा भी है —

(1) ध्वन्यात्मक शब्दों द्वारा विचारों को प्रकट करना ही भाषा है।"[1]

(2) भाषा एक तरह का संकेत है। संकेत से आशय उन प्रतीकों से है जिसके द्वारा मानव अपने विचार दूसरों पर प्रकट करता है। यह प्रतीक कई के प्रकार के होते हैं, जैसे — नेत्रग्राह्य, कर्णग्राह्य, स्पर्शग्राह्य। वस्तुतः भाषा की दृष्टि में कर्णग्राह्य प्रतीक ही सर्वश्रेष्ठ हैं।"[2]

(3) भाषा, उच्चारण - अवयवों से उच्चरित यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों की वह व्यवस्था है जिसके द्वारा समाज विशेष के लोग आपस में विचारों का आदान-प्रदान करते हैं।"[3]

सामान्यतया भाषा के अवयवों पर विचार करने से प्रतीत होता है कि वर्ण- पद और वाक्य, ये तीन अवयव ऐसे हैं जो भाषा के ढांचे को निर्मित करते हैं। वर्णोंका इसलिए महत्व है कि कहीं-कहीं पर एक वर्ण का ही अर्थ लिया जाता है जैसे- 'क' का अर्थ 'जल' और 'ख' का अर्थ 'आकाश' से लिया जाता है, किन्तु व्यवहार-जगत् में पद या शब्द का प्रयोग होताहै। आचार्य पाणिनि ने सुबन्त और तिङन्त की पद संज्ञा मानी है।[4] इसके अनुसार सभी सार्थक शब्द 'पद' कहलाते हैं, चाहे वे कृदन्त प्रत्यय से निर्मित होया तद्धित प्रत्ययों से निर्मित हों, अथवा क्रियार्थक शब्द हों। सभी का अन्त पद के अन्तर्गत हो जाता है। वर्ण समुदाय ही पदों का सृजन करता है। इसलिए वैयाकरणों ने 'वर्ण' और 'पद' को भी महत्व दिया है। वर्ण-स्फोट और पद-स्फोट का विवेचन भी इस बात का प्रमाण है।

1- स्वीट के अनुसार — भाषा विज्ञान— भोलानाथ तिवारी, पृ02
2- वेन्द्रिए के अनुसार — वही, पृ02
3- भोलानाथ तिवारी, वही, पृ0 4
4- सुप्तिङन्तम् पदम्' सिद्धान्त कौमुदी-संज्ञाप्रकरण, भट्टोजि दीक्षित

यह ठीक है कि हमें वर्णों एवं पदों की आवश्यकता होती है किन्तु हमें वाक्य से ही पूर्ण अर्थ का बोध होता है। यदि हम कहें कि —'यह पुस्तक' तो कोई निश्चित अर्थ तब तक नहीं समझ में आयेगा, जब तक पूर्ण वाक्य नहीं होता। इसलिए व्याकरण के प्रसिद्ध विद्वान् भर्तृहरि ने वाक्य को ही सर्वोपरि माना है। यथा —

'वाक्यस्फोटोऽति निष्कर्षे तिष्ठतीति मतिस्थितिः "

अर्थात् यह मेरा मत है कि निष्कर्ष रूप में वाक्य स्फोट ही मुख्य है। जब हम यह मानते हैं कि वर्णों का समुदाय 'पद' है और पदों का समुदाय वाक्य, तब इस पर अपना अन्तिम निर्णय देते हुए भर्तृहरि कहते हैं —

'पदेन वर्णा विद्यन्ते वर्णेष्ववयवा न च।
वाक्यात् पदानामत्यन्तं प्रविवेको न कश्चन।" (वाक्यपदीय ब्रह्मकाण्ड)

अर्थात् पदों में वर्ण नहीं होते और वर्णों में अवयव नहीं होते। वाक्य के अतिरिक्त पदों का कोई विशेष महत्व नहीं होता। समझने में बात अटपटी सी लगती है किन्तु इसकी सत्यता में सन्देह नहीं है, क्योंकि प्रारम्भिक ज्ञान के लिए ही वर्णों से पद और पदों से वाक्य बनने की कल्पना की गयी है। यदि आधुनिक भाषा-विज्ञान का आश्रय लें तो उन्होंने भी दृष्टान्त रूप में बतलाया है कि जब शिशु एक-आध शब्द ही बोल पाता है, जैसे 'मम्मा' जिसका अर्थ 'पानी' या पानी लाओ' होता है। वस्तुतः वह अपने अन्तः-करण से वाक्य ही बोलता है, भले ही उसकी भाषा की असमर्थता के कारण हमें वह केवल एक शब्द ही लगता है। इस प्रकार यह निश्चय हुआ कि हम लोक-व्यवहार में वाक्य का ही प्रयोग करते हैं, अतः वाक्य की श्रेष्ठता में कोई सन्देह नहीं रह जाता।

1- वैयाकरण भूषण सार — वाक्यस्फोट

2- वही, —

यहाँ पर त्रिलोचन की भाषा-शैली की समीक्षा के सन्दर्भ में उनके द्वारा प्रयुक्त वर्ण, पद और वाक्य-कदम्ब पर विचार कर लेना समीचीन होगा, जिससे उनकी भाषा का स्वरूप निर्धारण करने में सरलता हो सके।

वर्ण : —

त्रिलोचन की कृतियों का सर्वेक्षण करने से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रायः उन्हों ने अपने कविता संग्रहों के प्रारम्भ में दीर्घ वर्ण का प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ — उनके निम्नलिखित ग्रन्थों में प्रथम कविता दीर्घ-वर्ण से ही प्रारम्भ हुई है।

(1) तुम्हें सौंपता हूँ —(दूर)

(2) अरधान —(पीछे)

(3) चैती — (रात)

(4) गुलाब और बुलबुल (दुःख)

(5) सबका अपना आकाश (बादल)

(6) अनकहनी भी कुछ कहनी है। (मूर्तिकार)

(7) अमोला — (तोहई)

त्रिलोचन का वर्ण-विन्यास आकस्मिक ही नहीं होता। वे विषय-वस्तु को ध्यान में रखते हुए एक एक वर्ण को सोच विचार कर विन्यस्त करते हैं। यही कारण है कि उनकी भाषा में शब्दालंकारों का भी सौन्दर्य अपने स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत हुआ है। कतिपय उदाहरणों द्वारा इस कथन की पुष्टि की जा रही है —

(क) 'विच्छेदन - विस्फोटन, स्तूप-स्तूप, निकल व्योम गंगा)'[1]

(ख) 'रिमझिम-रिमझिम, झुलसी-झुलसी, हुलसी हरियाली' कौंधी कौंधी'[2]

1- अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ0 24

2- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 27

(ग) जी कड़ा कर ले कभी संसार कोमल का नहीं'[1]

(घ) 'तार-तार, प्राण-प्राण, पराये उपराये तराये, कनकन, चूनू'[2]

(ङ) 'नर-नर पत्ते-पुराने पियरा चले अलग-अलग अपना-अपना, देश-देश[3]

(च) पग-पग घिर-घिर घन, फिर-फिर- खिल-खिल- रंग-रंग, उठ-उठ[4]

(छ) नियति है, यति है, गति है यही'[5]

उपर्युक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट हो गया है कि कवि को वर्ण मैत्री का विशेष ध्यान रहता है। उनकी वर्ण मैत्री सुविचारित होती है किन्तु इसके द्वारा वे अर्थ गुरुत्व में भी वृद्धि करते हैं। वीप्सा के स्थलों में अर्थानुसंधान की प्रवृत्ति को उनकी वर्णमैत्री ने पूर्ण सहयोग दिया है।

'त्रिलोचन जी ने जहाँ तक हो सका है, कर्ण-कटु वर्णावली का प्रयोग नहीं किया। उनके सुन्दर से सुन्दरऔर कोमल से कोमल वर्णों का प्रयोग सबका अपना आकाश' शीर्षक ग्रन्थ के बावन गीतों के माध्यम से व्यक्त हुआ है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है —

"नभ में नीरव चंचल बादल
रूई के गाले से उज्ज्वल
बिखर रहे होंगे दल के दल
लेता हुआ हवा छींटी से लख पाऊँगा।"[6]

जहाँ पर कवि प्रकृति के परिवेश में कुछ लिखता है अथवा श्रृंगारी वातावरण का चित्रण करता है वहाँ स्वतः कोमल वर्ण आ आ कर पंक्ति में बैठ जाते हैं और अपने माधुर्य

1- गुलाब और बुलबुल, पृ0 12
2- सबका अपना आकाश, पृ0 68-69
3- तुम्हें सौंपता हूँ, पृ0 35
4- अरधान, पृ0 10
5- चैती, पृ0 35
6- सबका अपना आकाश, पृ0 42

से रचना को भी मधुमय बना देते हैं। किन्तु जहाँ पर धरती की कठोरता, सादगी है या जनजीवन की विभीषिका है, वहाँ वर्ण-विन्यास अति साधारण हो जाता है और कथ्य प्रमुख हो जाता है। इसका भी एक उदाहरण पर्याप्त होगा —

'कर्ता, तू ने जब मुझको दुनिया में भेजा
देखा भाला खूब और जी में क्या जाने
क्या आई, ममता के स्वर से बोला ले जा
यह दुख की माला है, ये आँसू के दाने,
तू पहचानेगा, कोई भी मत पहचाने
यह जीवन की छवि है शोभा बढ़ जायेगी।" [1]

यहाँ पर कवि ने सीधी-सपाट भाषा में दुख को सृष्टि में व्यापक बतलाया है और उसे जीवन के लिए उपयुक्त बताया है। यद्यपि यहाँ वर्ण का चमत्कार तो नहीं है किन्तु अर्थ की दृष्टि से इसका भी महत्व है, क्योंकि इसमें विचार की प्रधानता है और कवि जिस विचार को अधिक समझाना चाहता है उसके लिए उसने रंगीन वर्णों का प्रयोग नहीं किया। यह उनके वर्ण विन्यास की अपर विशेषता है।

शब्द — (पद)

वर्णों का समुदाय शब्द की सीमा में ही आता है। अर्थात् वर्णों का समूह शब्द कहलाता है। भाषा के निर्माण में शब्दों की एक अहम् भूमिका होती है। काव्य के क्षेत्र में कवि का शब्द-विन्यास उसकी काव्य शक्ति का एक मुख्य निदर्शन होता है। सुविधा की दृष्टि से शब्दों को तत्सम तद्भव, देशज, और विदेशी इन चारभागों में विभक्त कर सकते हैं। यदि तत्सम शब्दों का सम्बन्ध संस्कृत के व्याकरण सम्मत शुद्ध

1- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 16

शब्दों से है तो तद्भव शब्दों का सम्बन्ध संस्कृत में निकले हुए उन शब्दों से है, जो संस्कृत से विकृत होकर हिन्दी में आ गये हैं, जैसे — पुच्छ शब्द से पूंछ, कर्ण शब्द से कान, नासिका शब्द से नाक, आदि। इसी प्रकार देशज शब्द वे कहलाते हैं जो हमारी लोक भाषाओं से जुड़े हुए हैं वे कभी-कभी आंचलिक भी होते हैं। सामान्यतया उनकी व्युत्पत्ति भी नहीं होती। जैसे — तेन्दुआ आदि। विदेशी शब्द वे शब्द हैं जो विदेशी भाषाओं से लोक व्यवहार के कारण आकर हिन्दी में प्रयुक्त होने लगे हैं। जैसे — म्युनिसपैलिटी, डिस्ट्रिक बोर्ड, स्टेशन, ट्रेन आदि। इस दृष्टि से यहां पर त्रिलोचन की शब्दावली का समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत है।

तत्सम शब्द :—

प्रगतिशील कवियोंमें त्रिलोचन एक विशिष्ट प्रतिभा सम्पन्न विद्वान् कवियों की श्रेणी में आते हैं। वाराणसी से उनका निकटतम शैक्षिक सम्बन्ध रहा है, इस कारण वे संस्कृत-साहित्य से भी सुपरिचित हैं। इसलिए प्रगतिशील होने पर भी वे संस्कृत के तत्सम शब्दों का मोह नहीं संवरण कर सके। यही कारण है कि प्रायः इनकी सभी रचनाओं में तत्सम शब्दों का यथोचित प्रयोग हुआ है, जिसके कारण उनकी भाषा में गुरुत्व एवं गाम्भीर्य का स्वतः समावेश हो गया है। कतिपय उदाहरण —

(क) 'सुलाकण्य आंखों में आता रहा है,
हुआ अश्रुजल यों ही खारा नहीं है।'[1]

(ख) "परस्परालंबन क्या न होगा
ममत्व क्या शब्द बना रहेगा
निरर्थ चिंतातुर स्वप्नदर्शी
अतृप्त ही प्राण तजा करेंगे।'[2]

1- गुलाब और बुलबुल, पृ० 30

2- अरघान, पृ० 13

(ग) 'स्वाभिमान ज्योतिष्क लोचनों में उतरा था,

यह मनुष्य था, इतने पर भी नहीं मरा था।'[1]

(घ) हृदयोदधि-अवगाहन-वाहन अवधार्य

निराकृति चुम्बन पर आकृति व्यवहार।'[2]

(ङ) 'मुग्ध तटस्थ पड़ा था यों ही

तुम ने नव आह्वान भर दिया।'[3]

(च) 'त्रस्त नक्षत-हारावलि अलकावलि जाल,

विमनस्कता की कथा व्यथा थी विशाल।'

अरुण-तरुण, वरुण स्वर नाचे दे ताल

मगन मनोस्वात'।[4]

(छ) 'कौन जानता है बलात्, आवश्यकता क्या

इन्हें कहें अयमहं भोः आतिथ्य मात्र क्या।'[5]

(ज) 'अनिवार्य निरन्तर आवाहन

सुनता रहता हूँ कुछ निःस्वन

धारापृथिवी के कण-कण का

अग जग का प्रेरक संजीवन

ममता-बंधन यह वशीकरण

बंधन में मुक्ति सहज आई।"[6]

(झ) 'विजन में जैसे व्यर्थ किसी को पुकारा हो,

ध्वनि उठी गगन में डूब गई

मैंने व्यर्थ आशा की / व्यर्थ की प्रतीक्षा की।'[7]

1- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 13
2- तुम्हें सौंपता हूँ, पृ0 14
3- सबका अपना आकाश, पृ0 22
4- तुम्हें सौंपता हूँ, पृ0 14
5- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 31
6- सबका अपना आकाश, पृ0 14
7- वैती, पृ0 9

(ज) 'हुई असत वृत्तियाँ सदा को सुप्त रहेगी
जैसे हैं विकीर्ण विद्युत्कण उन का संग्रह
विच्छेदन, विस्फोटन है शक्ति का दुराग्रह,
जीवन की धाराएँ नीरव नित्य बहेंगी।'[1]

(ट) तमसावृत मेदिनी-विच्छेदनी हँसी।'[2]

इन उद्धरणों के अतिरिक्त त्रिलोचन केअनेक ग्रन्थों से तत्सम शब्दों की प्रमुख सूची प्रस्तुत है जिसके आधार पर यह सिद्ध हो सकेगा कि त्रिलोचन संस्कृत के तत्सम शब्दों के प्रयोग में कितने दक्ष हैं और उनके प्रति उनका कितना सहज लगाव है —

शब्द-सूची — वितज, उद्धत, तेजपुंज, अनुनयमय, विनम्रता, कम्पमान, सभ्यताभिमानी, अभिव्यक्त, परिधान, विकल्प, अवसाद, द्युति, मुखर, धूत, प्रतिघात, रुधिर, स्तम्भ, जिज्ञासा, प्रौढ़ा, आत्मविश्लेषण, संत्रासन, स्वरयंत्र, विह्वल, रहस्योद्घाटन, व्यसन, अश्लील, शिष्टता, धृष्टता, निकृष्टता, इतिवृत्त, अहोरात्र, प्रवहमान, तटस्थता, स्वस्थता, निर्बाध, प्रदक्षिणा, अकाम्यमान, ग्रस्तसूर्योदय, संगमन, दिग्दर्शी, संवदन(संवाद करना) अनुपदगतिक, (पीछे चलने वाला) निहितार्थधर, संश्रय, जयमाना, कल्याणी, अनाग्नि, वेला, अट्टहास, फेनिल, वसुधैवकुटुम्बकम्, चक्रव्यूह, मेघाडम्बर, जीवन-प्रवाह, ज्योतिपथ, निस्तरंग, पाषाणी, अलक्षित स्पंदन, अरण्य, आहार-विहार, दुर्निवार, संघटित, आत्मीय, संकोचन, स्नेहाधीन, विषाण (सींग) व्याप्त, छायाचित्त, प्रवासी, अभीप्सित, गृद्धनेत्र, अपराजेय, सिंधु, उद्गम उल्लास, संग्रामजेता, कटिबद्ध, ईप्सित, अयाचित, समाजप्रविष्ट, प्रतिरूप, सोत्साह विटप, अखिल, सत्यासत्य, जनतरंगिणी, निरीह, सुमुख, स्वार्थसाधु, उद्धार, मुक्ति-दिवस, प्रशान्त, अनाम, सभ्यतम, पुनर्व्यवस्था, सुवर्ण, अविचल, तरंगित स्वातंत्र्य, तटस्थ विद्युत्बल, पल्लवित, पुष्पित, सुरभित, संतुष्ट, स्वतंत्रतासंगर, मनसावाचा, क्रन्दन

1- अनकहनी भीकुछ कहनी है, पृ0 24 2- तुम्हें सौंपता हूँ,

अपरिसीम, हस्तक्षेप, असत्य, कार्यान्वित, यथार्थता, स्तब्ध, उलूक, विक्रय, शोणित अपरिमित, अपरिसंख्य उत्सर्ग, अपरिसंख्य, सर्वस्व, विप्लवकारी, प्रतिरोध, सर्व - विदित, प्रतिकार, वणिक, अन्युक्त, नवनिर्माण, जन्मशत्रु।'[1]

ये सभी शब्द त्रिलोचन जी की एक पुस्तक 'तुम्हें सौंपता हूँ' से लिए गये हैं। इनसे ये बात स्पष्ट हो जाती है कि त्रिलोचन की भाषा में तत्सम शब्दों का क्या स्थान है। बिना प्रगाढ़ अध्ययन के ऐसे शब्दों का समुचित प्रयोग करना असम्भव है। इसके आधार पर हम कह सकते हैं कि त्रिलोचन भाषा के समर्थ कवि है और तत्सम शब्दों पर तो इनका असाधारण अधिकार है। विस्तारभय से इनके अन्य ग्रन्थों में प्रयुक्त अन्य तत्सम शब्दों का उल्लेख नहीं किया जा रहा।

तद्भव शब्द :—

'त्रिलोचन' अध्ययन प्रसूत - तत्सम शब्दावली तथा तद्भव शब्दों के ही पक्षधर ॥ नहीं हैं। वे स्वाभाविक रूप से तद्भव शब्दों का डटकर प्रयोग करते हैं। सम्भवतः उन प्रयोगों में कवि का मानस अधिक उल्लास का अनुभव करता रहा है, क्योंकि वह जनता का कवि है। इसलिए जनभाषा से उसे असीम प्यार है और उनके काव्य ग्रन्थों में तद्भव शब्दों का सहज एवं पर्याप्त प्रयोग है। कतिपय उद्धरणों से इस कथन की पुष्टि की जा रही है।

'आँसू बाँधे मैंने गठरिया में
अपने भी हैं और पराए भी हैं ये
उपराए हैं तो तराए भी हैं ये
आप आ गये हैं बराए भी हैं ये
साधे हैं मैंने कनकन डगरिया में
× × ×

1- तुम्हें सौंपता हूँ, — त्रिलोचन (के आधार पर)

सूने में अटके अभी अनहुए हैं
कधि हैं मैं ने बढ़ के नगरिया में।'[1]

(ख) 'सूरज की एक किरण
पीपल के पते पर / ठहरी है।'[2]

(ग) 'महल बनाया करो और जैसे मन बहले
वैसे कलतब किया करो अब तो सच्चाई।'[3]

(घ) 'जब तक आँखों में है तब तक ज्योति बना है
अलग हुआ तो आँसू है या तिमिर घना है।'[4]

(ङ) 'बरगद के पेड़ से एक चिड़िया उड़ गयी
दोनों का ध्यान गया आँखि उठी उस ओर
पाँव बढ़ा ही किये।'[5]

(च) 'यदि तुम्हारे पास विष ही है तो ले आओ पिला दो,
प्यास मारे डालती है बन पड़े दम भर जिला दो।'[6]

(छ) 'रात ढली, ढुलका बिछौने पर,
प्रश्न किसी ने किया
तू न काम क्या किया।'[7]

इसी प्रकार उनके ग्रन्थों में अन्य स्फुटिक शब्द भी हैं जो तद्भव के उदाहरण हैं। जैसे —

शब्दसूची :— पग-पग, रँग-रँग, भीतर, मछलियाँ, ऊपर, साँस, पहर, बिजली, गहरा, धान, पत्ते, मिट्टी, नीम, हिरन, धुआँ, पैदल, पुराना, सुहाने, काँटे, लसें, कलोल, हरियाली, परस, सिरा, शाम, जेठ, सावन, काठ, सेज, काँठ, कोठी पक्का, परसा, छाती, अम्मा, भौंह, उरेह, (चित्रित करना) पत्थर, भूख, रोम।'

1- सबका अपना आकाश, पृ0 69 2- अरघान, पृ0 20
3- अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ0 103 4- दिगन्त, पृ0 10
5- तुम्हें सौंपता हूँ, पृ0 82 6- गुलाब और बुलबुल, 82

देशज :— त्रिलोचन लोकभाषा से बड़े स्नेहिल हैं। इसलिए उनके काव्यों में देशज' शब्दों की भरमार है। उनकी धारणा को निम्नलिखित उद्धरणों में देख सकते हैं —

(क) 'हम जो जीवन का घर बनायेंगे,
उसको मानव का घर बनायेंगे,
जिससे गुंजन करें घर, पुर, वन, पथ
ऐसा कुछ शब्द स्वर बनायेंगे।'[1]

कतिपय उदाहरणों से इनके देशज शब्दों के ममत्व और सौन्दर्य को रखने की चेष्टा की जा रही है —

(क) 'दखिनहिया जगी / और तारे ढले /
नींद से जागकर/अब बटोही चले।'

यहाँ पर दक्षिण से आने वाले मलय वायु को ही दखिनहिया कहते हैं जो शीतल - मन्द और सुगन्धि गुण युक्त होता है। लोक में मार्ग को बाट कहते हैं और इसी से बटोही शब्द बना है जिसका असली अर्थ पथिक होता है।

'पवन / शाम बीतने पर
बँसवारी में/ छिपकर आता है।'

यहाँ पर बँसवारी से तात्पर्य बाँसों के समूह से है जहाँ एक स्थान में बाँसों के झुण्ड के झुण्ड लगे रहते हैं जिसे 'पन्त' ने बाँसों का झुरमुट कहा है ?

'आती थी पछुआ की लहरें
पूरब को बढ़ जाती थीं।'

इस पंक्ति में पछुआ का तात्पर्य पश्चिम से आने वाली वायु से है।

"उठकर ही मारती है तू भी प्रभा
भैया अब चुप रहा करते हैं समझी।'

1- प्रगतिवादी काव्य साहित्य, पृ0 280 कृष्णलाल हंस
2- अरधान, पृ0 35 3— अरधान, पृ0 4— चैती, पृ0 18

अटकल बात कहने को डटक्कर मारना कहते हैं जिसमें अनुमान ही प्रधान होता है।

'आँखों नेदेखा कि एक जन लाँग चढ़ाए
कीचड़ में लथपथ आता है, चिल्लाता है।'[1]

यहाँ पर लाँग का तात्पर्य जंघा से है। जब कोई व्यक्ति आगे पानी, नाली या कीचड़ में चलना चाहता है ~~तो~~ तब वह कीचड़ या पानी में सन जाने के भय से अपनी धोती को कमर तक सिमेट लेता है और इस क्रिया में जंघाएँ खुल जाती है। इसी को लाँग चढ़ाना कहते हैं।

"कह - कहवाव से भी अलग
कभी-कभी बात होती है।"[2]

जब हम किसी से कुछ कहते हैं तब वह हमें भी कछ कहता है तब इस कथन अनु - कथन के अर्थ में ही उपर्युक्त शब्द प्रयुक्त होता है।

'जरा कुनकुनाया जब सूरज उठा बसि भर'[3]

यहाँ पर कुनकुनाया का अर्थ है — हल्का हल्का गरम होना। जो सम्भवतः संस्कृत के 'कवोष्ण' शब्द का वंशज है। लम्बी यात्रा पार करके लोक भाषा में इस रूप में परि-वर्तित हो गया है।

'तिनके रेशे चुन चुन कर बुनती / है खोंता"[4]

यहाँ पर 'खोंता' शब्द घोंसले के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है जिसे साहित्यिक हिन्दी में 'नीड़' कहते हैं।

'उठ हियाव कर /अभी सामने सारा रास्ता पड़ा हुआ है।'[5]

यहाँ पर 'साहस' अर्थ में 'हियाव' का प्रयोग किया गया है। सम्भवतः हृदय से साहस करने के कारण ही हियाव शब्द लोकभाषा में प्रचलित हो गया है।

1- चैती, पृ० 55
2- उस जनपद का कवि हूँ, पृ० 61
3- वही पृ० 102
4- उसजनपद का कवि हूँ, पृ० 104
5- वही, पृ० 73

'सोना जैसी पाक साफ थी तो भी लचना
पड़ा उसे, किससे उसका लेना देना था।'[1]

यहाँ पर 'लचना' शब्द झुकने अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

'कहा समोरी तेरा, तेरी माँ की थाती।'[2]

यहाँ पर समोरी सेमल के वृक्ष के लिए आया है और थाती शब्द 'धरोहर' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

'किसमें गरमी गरमा की बात नहीं है,
समझाइये, हमें भी,[3]

यहाँ पर गरमी गरमा' शब्द क्रोध से तीव्रता के साथ उत्तर प्रत्युत्तर देने अर्थ में प्रयुक्त हुआ है जो अपनेमें बड़ा उपयुक्त लगता है, क्योंकि इसमें क्रोध की दि्वतरफा व्यंजना छिपी हुई है।

'जल उछालते राह ताकते, कोई आयें
अपना हेली-मेली लेकिन देर हुई थी।'[4]

यहाँ पर 'हेली-मेली' से तात्पर्य 'यार-दोस्त' से है।

'बिचरती है खिड़रिच, उठती गिरती सी लहरों पर,
चुनती है, संगीत की तरह, नन्हा सा तन,
इधर-उधर को बढ़ता है।"[5]

यहाँ पर'खिड़रिच' शब्द खंजन पक्षी के लिए आया है, जिसे संस्कृत में 'खंजरीट'कहते है। यही शब्द इस लोकभाषा के मूल में रहा प्रतीत होता है।

1- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 73

2- वही, पृ0 69

3- वही, पृ0 14

4- वही, पृ0 26

5- वही, पृ0 48

'दियना छू के तुम जगा दो
बात बन ही जायेगी।'[1]

यहाँ पर संस्कृत के दीप' शब्द को लोकभाषा में दीया या पूर्वांचल की भाषा में 'दियना' हो गया है, जो अपने में बड़ा ही मधुर कोमल एवं सरस है।

'सभी जीना चाहते /अँजुरी में माँगते हैं।'[2]

यहाँ पर 'अँजुरी' शब्द 'अंजलि' और संस्कृत के अंजलि शब्द से विकसित हुआ प्रतीत होता है।

'धुरिआइ देह इतनी है खेह।'[3]

यहाँ पर 'धुरियाइ' शब्द धूल धूसरित अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। संस्कृत के धूलि' शब्द से अव अवधी में धूरि हो जाता है और उससे नाम - धातु बनाकर विशेषण बनाया गया है।

'सिला बीनती थी करती थी कहीं पिसौनी
तब गड्ढा भरता था। छह-छह बेटे मरते
गये छोड़ते गए उसे रह गयी घिसौनी'[4]

यहाँ पर 'पिसौनी शब्द 'जाँत' की पिसाई के लिए और घिसौनी शब्द घिसने अर्थ में प्रयुक्त हुआ है जिसे जीवन की घिसन-घिसअर्थ में भी ले सकते हैं।

'विदा किया तब कहा कि यह लाना वह लाना
ग्वैंड़े आया, और हाथ दोनों हैं खाली।'[5]

यहाँ पर 'ग्वै ग्वैंड़े' शब्द लोकभाषा का है और गाँव की बस्ती के बाहर समीपवर्ती क्षेत्र के लिए प्रयुक्त हुआ है। गाँव की बस्ती के चारों ओर लगी हुई लगभग एक किलो-मीटर तक की सीमा को 'ग्वैंड' कहते हैं।

'रुक सकते हैं धेधर से भी धेधर हरहे।'[6]

1- सबका अपना आकाश, पृ0 7।
2- वही, पृ0 7।
3- वही, पृ0 65
4- वही, पृ0
5- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 42
6- वही, पृ0 63

यहाँ पर थैथर' शब्द जबरदस्त से भी जबरदस्त के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है और 'हरहा' शब्द जानवर अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। उल्लेखनीय है कि जनपद फतेहपुर और कानपुर देहात में सामान्य जानवरों को हरहा कहते हैं। सम्भवतः जंगल में फिरने के कारण ही इनको हरहा कहा जाता है क्योंकि इन अंचलों में 'हार' का अर्थ वन या जंगल होता है।

"बैठ धूप में हरी मटर की घुंघनी खाना,
जाड़े का आनंद यही है रस गन्ने का
ताजा-ताजा पीना, कोल्हाड़ो में जाना।'[1]

यहाँ पर 'घुंघनी' शब्द लोकभाषा का है। जब मटर या चने को केवल पानी में उबाल लेते हैं फिर उसे गुड़ या नमक के साथ खाते हैं तब उसी को घुंघनी खाना कहते हैं। उसके पकने में घूँ-घूँ की ध्वनि होती है इसलिए इसे घुंघनी कहते हैं। इस प्रकार यह ध्वनि के आधार पर बना हुआ शब्द है। इसी प्रकार 'कोल्हाड़' शब्द भी है। जहाँ पर गन्ना पेरा जाता है, वहाँ एकत्र करके गुड़ बनाया जाता है, उस स्थान को भी 'कोल्हाड़' कहते हैं। चूंकि गन्ना कोल्हू में पेरा जाता है इसलिए 'कोल्हू' शब्द से ही 'कोल्हाड़' शब्द बन गया प्रतीत होता है। इसी सन्दर्भ में गुलौर शब्द का प्रयोग भी दर्शनीय है। इसको गन्ने की पत्तियों एवं रस निकाले गये गन्ने के छाँछ के लिए प्रयुक्त किया गया है।[2] सम्भवतः यह गुड़ शब्द से समुदाय अर्थ में प्रयुक्त होकर गुलौर हो गया है।

'आज ककरिहवा आम सो गया
सुगौवा को देखो तो
शाखा का सहारा मिला गिरकर भी बच गया।'[3]

यहाँ पर 'ककरिहवा' शब्द आंचलिक है। सम्भवतः ककरीली भूमि में उगने के कारण

1- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 74

2- वही, पृ0

उसका यह नाम पड़ा। अथवा ककड़ी की तरह कोमल होने के कारण उस आम के पेड़ का यह नाम पड़ गया हो। इसी प्रकार सुगौवा शब्द शुक-वाचक, अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, जो शुक के ककार के स्थान पर गकार हो जाने के कारण निष्पन्न हो गयाहै।

'अमोला' शीर्षक संग्रह में तो इन देशज शब्दों की भरमार ही हो गयी है। क्योंकि यह रचना बैसवाड़े के किसान की बोली में रची गयी है जैसा कि निम्न - लिखितसूची से स्पष्ट हो जायेगा –

(1) लिकउ — अच्छा भी
(2) निचावहूँ — नीचा करते हैं
(3) निर्जोस — निर्दोष
(4) गोड़ — पैर
(5) मनई — मनुष्य
(6) धाये धूपे — दौड़ धूप करने से
(7) निवीहनी — निरायी
(8) भिनउरवा — प्रातः काल
(9) पुछत्तर — पूछने वाला
(10) गोहरार — पुकारना
(11) फसिदसानी — उलझन
(12) गड़ष्प — समाप्त कर देना
(13) जीउचल — चलता फिरता अथवा बुद्धिमान
(14) तोहार — तुम्हारा
(15) जिनगानी — जिन्दगानी
(16) भुखान — भूखा
(17) अँजुरिआयी — अंजुलि से भर लेना

(18) बेसहनि	खरीदना, क्रय करना
(19) अगसरहूँ	अग्रसर होना
(20) ओखद	औषधि
(21) फुटेहरा	फूटा हुआ
(22) अटवइ	पूरा करे
(23) कुरिया	कुटिया
(24) अंजोर	उजाला
(25) हिआई	हिम्मती

इस प्रकार हम देखते हैं कि त्रिलोचन देशज शब्दों के कुबेर हैं। उन्हें उनके प्रयोगों में किसी प्रकार का प्रयास नहीं करना पड़ा। और वे साहित्यिक शब्दों के साथ उन आंच - लिक शब्दों को रखने में किसी प्रकार का संकोच नहीं करते क्योंकि उनसे भावों या विचारों की अभिव्यक्ति में कवि को बहुत बल मिलता है।

विदेशी शब्द :—

त्रिलोचन के काव्य में विदेशी शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं विशेषतः उर्दू-फारसी के शब्द उन्हें इतने अच्छे लगते हैं कि अधिकांश कविताओं में वे उन्हें स्थान देने के लिए लालायित रहते हैं। 'गुलाब और बुलबुल' शीर्षक काव्य संग्रह में तो इन उर्दू-फारसी शब्दों का डटकर प्रयोग किया गया है किन्तु यह उल्लेखनीय है कि कवि ने उर्दू-फारसी के उन्हीं शब्दों को काव्य में स्थान दिया है जो बोलचाल की हिन्दी मेंप्रयुक्त होते हैं, उनका विदेशीपन समाप्त हो चुका है और वे कथ्य की अभिव्यक्ति में विशेष सहायक सिद्ध हुये हैं।

अंग्रेजी शब्द :— यद्यपि त्रिलोचन अंग्रेजी साहित्य के भी विद्वान हैं, फिर भी उन्होंने अपने काव्य ग्रन्थों में अंग्रेजी शब्दों का कम से कम प्रयोग किया है। जहाँ पर अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग के बिना भाव या विचार व्यक्त ही नहीं हो पाता वहाँ पर वे विवश

होकर अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग कर देते हैं। यथा —

'नहीं-नहीं / मत समझो / अत्याचार मिट गया /

फैसिस्टों से और / नाजियों से ही

हमको मुक्ति मिली है।'[1]

"मुझे डिमिट्री के अन्तिम क्षण नहीं भूलते।'[2]

'रायल्टी के थोड़े पैसे मिल जाए

यही बहुत है।'[3]

यहाँ पर 'यदि रायल्टी शब्द का हिन्दीकरण किया जाता तो सम्भवतः अर्थ की अभिव्यक्ति में बाधा पड़ती, अतः विवशतावश कवि को विदेशी शब्द का प्रयोग करना पड़ा है। इसी प्रकार हमारे दैनिक व्यवहार के शब्द म्यूनिसिपैल्टी डिस्ट्रिक्ट बोर्ड और मेम्बर जैसे शब्दों का भी प्रयोग दृष्टव्य है —

'म्यूनिसिपैलिटी डिस्ट्रिक्त बोर्ड करें तो क्या-क्या

करे, नैष्कर्म्य सिद्धि है अनायास ही

मेम्बर जेबें भरते हैं, इसमें भी क्या क्या।'[4]

'हटो यहाँ से पार्क छोड़ दो'[5]

'जल्द कोर्ट मार्शल में इनका / न्याय किया जाएगा।'[6]

इसी प्रकार कैप्टन, सैल्यूट, मिस्टर, कमाण्डर, पल्टन, कन्ट्रोल, हिप-हिप हुर्रे, ई0टी0ई0एस0, फायर आदि अत्यावश्यक शब्दों के प्रयोग भी मिलते हैं लेकिन कवि ने जानबूझकर एक भी अंग्रेजी शब्द का प्रयोग नहीं किया। ऊपर जिन शब्दों के प्रयोग लिखे गये वे हमारे दैनिक जीवन में मिल-घुल गये हैं और यदि ये कहें कि उनका हिन्दीकरण हो चुका है तो भी अतिशयोक्ति नहीं है।

1- तुम्हें सौंपता हूँ, पृ0 151

2- वही, पृ0 150

3- वैती, पृ0 55

4-अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ0 73

5- तुम्हें सौंपता हूँ, पृ0 129

6- वही, पृ0 131

इस प्रकार त्रिलोचन की शब्द सम्पदा का लोहा मानना पड़ता है। जहाँ वे एक ओर संस्कृत के अधिकृत विद्वान् हैं और पूरी क्षमता के साथ इसका प्रयोग भी करते हैं, वहीं, वे लोकभाषाओं के भी पण्डित हैं। लोकभाषा के शब्द के प्रयोग का मोह उन्हें जन जीवन का कवि सिद्ध करता है। विद्यापति ने भी तो 'देसिल बैना सब जन मिट्ठा' कहकर लोकभाषा को मधुर बताया है। उन्हें उर्दू-फारसी के शब्दों के प्रयोग में भी महारत हासिल है। इसलिए स्वेच्छापूर्वक जहाँ उपयुक्त समझते हैं वहीं उर्दू शब्दों का भी प्रयोग कर देते हैं। कतिपय उदाहरणों से इस बात की पुष्टि की जा सकती है —

'देख आया हूँ, कहीं भी नहीं मिला कोई,
गुल गुल जिस को मिले और मिले खार ही'[1]

(ख) 'घूसलेते हैं नहीं कोई कहीं फरियाद सुनता
हैं इन्हें नफरत, निकम्मी ओफ यह सरकार कितनी
आज ये अफसोस, गुस्से से भरे घर आ रहे हैं।'[2]

(ग) 'गम की अक्सीर दवा हाट में नहीं मिलती
गम गलत करने को दूकान पै जाया न करो।'[3]

(घ) 'मै तेरी राह में खुद चल के इसलिए बैठा,
घर में तू कैद है मुझ पर मेरा अधिकार नहीं।'[4]

(ङ) 'है दुनिया का तौर तरीका रेखा रेखा
जाने क्यों जीवन में इतनी लाचारी है।'[5]

उपर्युक्त उदाहरणों के अतिरिक्त कवि के उर्दू - फारसी के कुछ प्रमुख शब्दों की सूची दी जा रही है जो उनके विभिन्न ग्रन्थों में प्रयुक्त हुए हैं —

1- गुलाब और बुलबुल, पृ0 9।   2- तुम्हें सौंपता हूँ।पृ0 15।
3- वही, पृ0 18
4- वही, पृ0 19   5- अनकहनी भी कुछ कहनीहै, पृ0 43

कारवाँ, गुजरा, हसीना, चाँदनी, शाह, मजबूर, दर्द, जमीन, दीन(ईमान), खबर नौजवानी, बेताब, खुश, इन्सान, शान, जुलूस, आखिर, जरा सी, शह, भाप, ताज़ आदम(आदिपुरूष) टहनी, गला, याद, तेज, आदमियत, मशाल, कैदी, खून, पाजी, अदालत, अन्दर, अजीब, मंजिल, शर्म, गैर, मिला, नज़र, इंतजार, गुनहगार, महफिल, कहर, हर्फ़, गुजरा, आसमां, तमाशा, आबाद, वीराना, गुलशन, शैयाब, उस्ताद, रवानी, शिकायत, बस्ती, फ़ानी(नश्वर) सानी, कलेजा, मालुम, राज, जिन्दगी, तकदीर, महज, अवाज, दरबदर, सब्र, जुल्फ़, कबतलक, मौज, किस्मत मेहमान, मुश्किल, अन्दाज, गो(यद्यपि) खाक लाग, नुकसान, निगहवान्, बेसहारा डाह, वरना, बेकद्री, अनमोल, खत, सौदा, लत, रियाज़, बला, पय, खुद, पतंगबाजी, सूरत, मुहब्बत, खाली, शिकायत, रजीदा, मनशा, हैरान, फ़कीरी आदि।

उपर्युक्त सूची को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि त्रिलोचन ने जिन उर्दू फ़ारसी शब्दों का प्रयोग किया है, वे अति सरल हैं और हमलोग समाज में सरलता के साथ इन शब्दों का प्रयोग किया करते हैं। उल्लेखनीय है कि इनके प्रयोग से आप कहीं कृत्रिमता या क्लिष्टता का अनुभव नहीं करेंगे। अपितु उसमें एक प्रकार के प्रवाह का अनुभव करेंगे। इनके द्वारा कवि की भाषा का लावण्य बढ़ गया है, स्वाभाविकता की रक्षा हुई है और अभिव्यक्ति कौशल में स्वतः वृद्धि हो गयी है। बोलचाल के इन उर्दू फ़ारसी शब्दों के प्रयोग के पीछे कवि का जनवादी दृष्टिकोण ही मुखर दिखलाई पड़ता है। इसलिए जनभाषा में सहज प्रयुक्त होने वाले इन शब्दों को भी कवि ने उसी ललक से अपनाया है जिस ललक से उसने देशज शब्दों को, अथवा तत्सम शब्दों को। अस्तु कोई भी पाठक या आलोचक निश्चिंत होकर यह कह सकता है कि त्रिलोचन शब्द सम्पदा के कुबेर हैं। भाषा इनकी इच्छानुसार ऐसे ऐसे शब्दों का चयन करती है, इनकी लेखनी से उतार लेती है जिनके द्वारा कविता कामिनी का सहज श्रृंगार हो जाता है।

वाक्य :—

सम्पूर्ण अर्थबोध की इकाई वाक्य ही है। त्रिलोचन वाक्य रचना में अत्यन्त निपुण हैं। वे वाक्य रचना के कवि के रूप में प्रख्यात भी हैं। इनके सभी सानेट अपने पूर्ण वाक्यों के लिए विख्यात हैं। कविता में सम्पूर्ण वाक्यों का लिखना टेढ़ी खीर है, किंतु त्रिलोचन ने इस गुरूतर उत्तरदायित्व को भलीभांति निभाया है। उनकी कविताओं में वाक्यों के विभिन्न उदाहरण समुपलब्ध होते हैं। उनकी अधिकांश बूंद कविताएँ तो एक दो वाक्यों में ही समाप्त हो जाती है। यथा —

"ससि फिसलती है / समय की / भूमि पर'[1]

यहाँ पर प्रकृति को एक ही वाक्य में बांधने का प्रयास किया गया है। इसी प्रकार सौन्दर्य को रूपायित करता हुआ कवि एक ही वाक्य में कहता है —

'मैं / तुम्हें निहारते / अघाता नहीं।'[2]

यहाँ पर भी एक ही वाक्य है, जिसने प्रेम सौन्दर्य और अतृप्ति को एक ही वाक्य में इस प्रकार संजो दिया है जैसे एक छोटे से गमले में कई पुष्प सजा कर रख दिये गये हों।

त्रिलोचन अपने सानेटों में पूरे वाक्य लिखते हैं। अर्ध विरामों की सहायता से वे वाक्य के आकार को विस्तृत कर लेते हैं। यथा —

'मुझकोहरियाली पसंद है, खुल कर खिलना
फूलों का मुझको भी आह्लादित करता है
किंतु चाहने भर से ही वांछित का मिलना
सहज नहीं है।'[3]

जहाँ पर कवि काव्यात्मक परिवेश में मग्न हो जाता है वहाँ पर एक-एक वाक्य पाँच पाँच पंक्तियों तक विस्तृत हो जाता है। उसमें अलंकारिक सौन्दर्यऔर भाव सम्पत्ति का

1- अरधान, पृ0 29
2- वही, पृ0 28
3- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 63

विकास देखते ही बनता है। यथा —

> 'जीवन का इस तरह करूँगा जैसे कोई
> पक्का घुड़सवार अपने घोड़े का करता
> है कि चेतनाएँ केन्द्रित कर जागी सोई
> मानव का मन विश्वामित्र नई तत्परता
> नई लगन से, नई सृष्टि करने लगता है।'[1]

त्रिलोचन के वाक्य कहीं-कहीं तो इतने सरल हो गये हैं कि उनमें कोई चमत्कार ही नहीं दिखता, ऐसा लगता है कि मानों वे अपने सहज लहजे में बोल रहे हों। बोलचाल भाषा के सीधे-सादे शब्द उनकी सहज भाषा शैली का प्रमाण बन जाते हैं किन्तु उल्लेखनीय है कि वे एक वाक्य में ही न जाने कितना वर्णन कर देते हैं।

> "मेथी और पालक की
> दो दो हरी गड्डियाँ
> लहसन और प्याज की / चार चार पोटियाँ
> बुढ़िया कर रही थी / ग्राहक से / ले लो
> यह सब / ले लो / कुल पचास पैसे में।'[2]

यही कवि जब साहित्यिक शब्दावली में उतर आता है तब एक ही वाक्य में भाव, भाषा कल्पना, अलंकार आदि सभी काव्य तत्वों को समाविष्ट कर देता है। ऐसा करने में उसे अल्प विराम और अर्धविराम का आश्रय लेकर वाक्य के आकार को छन्द का रूप देना पड़ता है, किन्तु रहता है एक ही वाक्य, जिसे मिश्रित वाक्य की संज्ञा दी जा सकती है।

> "प्राणों की पीड़ा में खोया,
> चलता हूँ विषम धरातल पर,
> जैसे बिल्कुल सोया-सोया
> स्वप्न के जलद पर इन्द्रधनुष कल्पना-किरण है पूर रही,

1- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 47

2- अरधान, पृ0 7।

जीवन के शतदल को अपनी आभा में खिलने का वर दो।'[1]

इस प्रकार त्रिलोचन के वाक्य साधारण होते हुए भी असाधारण है, उनमें अभिधा का ही चमत्कार नहीं अपितु लक्षणा और व्यंजना के भी चमत्कार है, जिन्हें शब्द शक्ति के विवेचन के सन्दर्भ में प्रस्तुत किया जायेगा। वे अपने वाक्यों में लोकोक्तियाँ एवं मुहावरों के द्वारा जीवनी शक्ति भर देते हैं। एक भी शब्द किसी वाक्य से निकाल दिया जाए तो सम्पूर्ण अर्थाभिव्यक्ति नहीं हो सकती। इस प्रकार उनके वाक्य का एक-एक शब्द एक विशेष कसाव में कसा हुआ है। उन्होंने अपनी कविता में सम्पूर्ण वाक्य लिखे हैं। इस शिल्प का प्रयोग करने वाला कवि असाधारण ही कहा जायेगा। आइये त्रिलोचन के वाक्यों को व्यंजना का जामा पहनाने वाले उनके मुहावरों का विश्लेषण करें —

<u>मुहावरा-मीमांसा :—</u>

'राह नापना' और कावा काटना' इन मुहावरों का प्रयोग कवि ने इस प्रकार किया है —

'कहीं बुलावा
न हो तो तरंगावेशों में राह नापना
नहीं बात में बात, काटना यों ही कावा'[2]

'कानी कौड़ी' "ऐसे भी मनुष्य हैं भी जन्मे
दुनियाँ में, जिनको दुर्लभ है कानी कौड़ी।'[3]

नित्य कुआँ खोदना —
'कर्म अपार कमी का ही था अपना कोटा,
नित्य कुआँ खोदना तब कहीं पानी पीना।'[4]

दूध का जला मट्ठा फूंक कर पीता है —
'कितना भी ढक दिया जाए, कोई अवश्य था
मोह तुम्हारे मन में। यू तो दूध काजला
मट्ठा फूंक कर पीता है।' [5]

1, तुम्हें सौंपता हूँ, पृ0 88 2— उसजनपद का कवि हूँ, पृ037 3— वही, पृ42
4— वही, पृ0 46 5— वही, पृ0 79

पाँव फैलाकर सोना —

'साधु सन्त सोते हैं सुखी पाँव फैलाये।'[1]

तिल का ताड़ बनाना —

'छिप न सकी, छिसन कब तिल का ताड़ बन गया।'[2]

नया पाठ पढ़ाना —

'गजब न हो जाता, अधिकारी लोग पढ़ाने
लगते नए पाठ।'[3]

लोहा लेना और जान की बाजी लगाना —

'हिन्द जी भर देख तेरे पुत्र ये घर लौट आए
जान की बाजी लगाकर ये तुझे सम्मान लाए
उग्र अत्याचार से लोहा लिया डटकर इन्होंने।'[4]

फूँक मारकर उड़ाना —

'वे दुर्दिन के मेघ प्रलय लेकर जो आये
आज नहीं है फूँक मारकर हमने उनको उड़ा दिया है।'[5]

आस्तीन के साँप —

'और हमें अब
आस्तीन में पलने वाले इन साँपों को
हरगिज नहीं छोड़ना होगा।'[6]

तेल लगाना और पौ बारह होना —

'बात नहीं है इसमें, केवल तेल लगाना
अगर ज़रा आ जाए तो समझ लो पौ बारह।'[7]

जूतियाँ सीधी करना —

'दुनियाँ पैसे ही से तुलती है,
कौन कहे चाँदी है जिसकी,
सीधी करनी पड़ी जूतियाँ किसकी किसकी।'[8]

1- अरमान, पृ0 47
2- वही, पृ0 57
3- वही, पृ0 60
4- तुम्हें सौंपता हूँ, पृ0 111
5- वही, पृ0 148
6- वही, पृ0 163
7- अनकहनी भी कुछ कहनी है, 34
8- वही, पृ0 34

मक्खी मारना —

'खटिया पर ही पड़े-पड़े
नहीं मक्खियाँ मारा करते अब।'[1]

दिन आना — 'सर शोभित है और कुई के दिन आये हैं।'[2]

चैन की वंशी बजाना — पसीना मारना —

'फिर क्या, मारे कौन पसीना
अभी चैन की वंशी बजती है मतवाली।'[3]

चोली दामन का साथ होना —

'भाषा का इस जीवन से चोली दामन का साथ।'[4]

नाक तक पानी आना —

'यहाँ भर दिया पानी तुमने नाक में।'[5]

कड़वे घूंट पीना —

'कवि का कड़वी घूंटे पीनी पड़ती हो चाहे कितनी।'[6]

चबेना बंटना — कलेजा मुँह को आना —

'तुमने समझ लिया था यहाँ चबेना,
बंटता है, मुँह को जी आ जाता है।'[7]

पहाड़ा पढ़ना —

'तुम सब मिलकर उसे पहाड़ा
रिस का पढ़ा रहे हो।'[8]

दिन दूना रात चौगुना —

'नव जीवन के बीज धरातल की हरियाली
हो दिन दूनी रात चौगुनी।[9]

सपना टूटना —

'ऐसा मत समझो टूटा वह सपना कब का।'[10]

1- अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ0 34
2- वही, पृ0 59
3- वही, पृ0 75
4- वही, पृ0 78
5- वही, पृ0 81
6- अनकहनी भी कुछ कहनी है, 89
7- वही, पृ0 88
8- वही, पृ0 90
9- वही, पृ0 97
10- वही, पृ0 97

स्वप्न देखना —'उसे पाने का
स्वप्न तक नहीं देखा उसने।'[1]

किनारा करना —

'जगत रूठे तो रूठे तुम जो अपने हो तो क्या चिंता
किनारा कर लो यदि तुम भी तो फिर आधार क्या होगा।'[2]

त्रिलोचन लोकोक्तियों को भी यथा सम्भव स्थान देते हैं। कतिपय उद्धरणों द्वारा इस कथन की पुष्टि की जा रही है — लोक जीवन में काशी के सम्बन्ध में यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है —"चना चबेनी गंग जल जो पुजवै करतार
तो काशी न छोड़ियो विश्वनाथ दरबार।'[3]

त्रिलोचन जी ने इस लोकोक्ति को अपने काव्य में इसप्रकार प्रयुक्त किया है —

'है वे जन भी मस्त मिलेंगे। ऐसी मस्ती
और कहीं तो नहीं मिलेगी, चना चबेनी
और गंग जल के मस्ताने हैं।'[4]

इसी प्रकार सुख दुख की परिवर्तनशीलता पर कवि ने चार दिनों की चाँदनी फिर अँधियार पाख' इस लोकोक्ति को इस प्रकार सँवारा है —

'विश्व की कथा का आमुख, दोहरी साँसों से ही लिखा गया है,
चार दिनों की रहे चाँदनी रहे फिर अँधियार।'[5]

'जहाँ चाह है वहाँ राह है' इस लोकोक्ति को त्रिलोचन विचार के दार्शनिक परिधिमें लेकर तौलते हैं — यथा —

'अस्थिरता है, स्थिरता की क्यों चाह है,
जहाँ चाह है सुना है वहाँ राह है।'
किन्तु राह पर जब भी देखा झाड़ है
साँसों से ही क्यों होता है साँसों का संघात।'[6]

1- धैती पृ0 16
2- गुलाब और बुलबुल' पृ0 108
3- अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ0 7।
4- वही, पृ0 7।
5- अनकहनी भी कुछ0, पृ098
6- सबका अपना आकाश, पृ054

जब विपत्ति पर विपत्ति होती है तब कोढ़ में खाज इस लोकोक्ति का प्रयोग होता है- कवि के शब्दों में —

'शासन का प्रमाद बिल्कुल कोढ़ की खाज है।'[1]

इसी प्रकार यथा योग्य साध्य और साधन के सम्बन्ध मेंकवि काकथन है —

'जैसा घोड़ा हो वैसा चाहिए साज भी।'[2]

प्राय, पत्रों में परम्परा से समझदार के लिए इशारा' काफी यह लोकोक्ति लिखी जाती रही है। त्रिलोचन ने भी 'परदेशी के नाम पत्र' शीर्षक कविता में इसका प्रयोग इस प्रकार किया है —

'समझदार के लिए इशारा ही काफी है'[3]

लोकोक्तियों का प्रयोग त्रिलोचन की 'अमोला' शीर्षक कृति में पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं जो अवधी की बैसवाड़ी बोली लिखे हुए हैं। इससे ज्ञात होता है कि त्रिलोचन अपने कथ्य को लोकोक्तियों और मुहावरों से भी पुष्ट करते हुए चलते हैं जिनसे भाषा की अभिव्यंजना शक्ति में विकास हुआ है और वे जन जीवन से जुड़े हुए हैं। इन मुहावरों और लोकोक्तियों के आधार पर यह निष्कर्ष भी निकलता है कि कवि आशा और उत्साह को लेकर कर्मठता की ओर अग्रसर है। उन्होंने ऐसे किसी मुहावरे या लोकोक्ति को स्थान नहीं दिया, जिससे निराशा या कुण्ठा की झलक आती हो क्योंकि वे स्वयं आशा और उत्साह के कवि हैं, उन्हें जीवन पर पूर्ण आस्था है और मानवता के अखण्ड विकास में अटूट विश्वास है।

शब्द शक्तियाँ :-

परम्परा से अभिधा लक्षणा और व्यंजना ये तीन शब्द शक्तियाँ साहित्य शास्त्र में प्रचलित हैं। इनका पालन और प्रयोग प्रायः प्रत्येककवि करता है। यद्यपि सामान्य

1- अरधान, पृ0 63
2- वही, पृ0 63
3- वही, पृ0 75

पाठक त्रिलोचन को अभिधा के ही कवि कहते हैं, क्योंकि उनकी वर्णनात्मक कविताएँ अभिधामूलक ही हैं, किन्तु उनका काव्य लक्षणा और व्यंजना के असाधारण प्रयोगों से ही परिपूर्ण है, इनका प्रयोग चमत्कार प्रदर्शन के लिए ही नहीं किया गया, अपितु उनकी वाक्य रचना ही ऐसी है, जिसमें लक्षणा व्यंजना अनाहूत ही उपस्थित हो गयी है, इससे जहाँ उनका काव्य कृत्रिमता से बच गया है, वहाँ स्वाभाविकता की भी रक्षा हुई और वे इस आरोप से भी अछूते रह पाये हैं कि उन्होंने जान-बूझकर चमत्कार प्रदर्शन के लिए लक्षणा व्यंजना का प्रयोग किया है। यहाँ पर त्रिलोचन की शब्द शक्ति का सोदाहरण समीक्षण प्रस्तुत है –

अभिधा : —

त्रिलोचन की अभिधा में भी कोई न कोई विशेषता परिलक्षित होती है।

यथा — "डाक्टर साहब, पेड़ यह उसी दिन का रोपा
है जिस दिन मैं गिरा भूमि पर, और पास से
चलकर देखें। पूरे सौ वर्षों का झोंका
झेल चुका है।'[1]

यहाँ पर कवि ने अपने जन-जीवन के साथी एक ऐसे वृक्ष का चित्रण किया है, जिसने अपनी जिन्दगी के सौ वर्ष पूरे कर लिए हैं। यहाँ ऊपर से देखने में तो कोई विशेषता मालूम नहीं होती, लेकिन अभिधा-मूलक इस कथन में यही वैशिष्ट्य है कि इससे कवि का स्वाभाविक एवं रागात्मक सम्बन्ध व्यक्त होता है। उसकी कृति में कवि की संवेदनात्मक-दृष्टि है और वह यह कहना चाहता है — यह वृक्ष कितना शक्तिशाली है, कितना सहिष्णु है, इसने झंझा-तूफानों और विभिन्न भीषण परिस्थितियों को झेलकर भी शतंजीवी होने का गौरव प्राप्त कर लिया है। एक वृक्ष पर कवि की यह संवेदनात्मक दृष्टि और उसकी

1- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 72

रागात्मकता कवि की अभिधा शक्ति की विशेषता का परिचायक है।

'इस पृथ्वी की रक्षा मानव का अपना कर्तव्य है
इसकी वनस्पतियाँ चिड़ियाँ और जीव जन्तु
उसके सहयात्री हैं इसी तरह जलवायु और सारा आकाश
अपनी-अपनी रक्षा मानव से चाहते हैं
उनकी इस रक्षा में मानवता की भी तो रक्षा है।'[1]

यहाँ पर कवि यह कहना चाहता है कि पृथ्वी और मनुष्य दोनों एक दूसरे के रक्षक हैं। बात बिल्कुल सीधी है किन्तु यहाँ भी वह मनुष्य का पृथ्वी के समस्त जड़ चेतन जगत से जोड़कर देखते हैं और मानव को विशिष्ट समझकर प्रकृति के संरक्षण का उत्तरदायित्व मनुष्य पर देते हैं। क्योंकि समर्थ व्यक्ति को ही उत्तरदायित्व दिया जाता है और यदि स्वार्थ दृष्टि से ही देखें तो पृथ्वी और प्रकृति इनके बिना मानव का जीवन ही सम्भव नहीं है। अतः यदि मानव को जीना है तो उसे भी पशु-पक्षियों, वृक्ष - वनस्पतियों और समस्त वातावरण की सुरक्षा करनी होगी इस प्रकार प्रकृति के साथ मनुष्य का रागात्मक सम्बन्ध सिद्ध हो जाता है। इससे त्रिलोचन की अभिधा शक्ति की विशेषता पर सीधा प्रकाश पड़ता है।

'कवि है नहीं त्रिलोचन अपना सुख-दुख गाता
रोता है वह, केवल अपना सुख-दुख गाना
और इसी से इस दुनिया में कवि कहलाना
देखा नहीं गया, उसको क्या आता-जाता
है, आठ दिन लिखता है वह पिटी पिटाई।'[2]

यद्यपि इस कविता में त्रिलोचन अपने कटु आलोचकों एवं द्वेषियों द्वारा की गयी निन्दा को ही अभिधा में व्यक्त करते हैं, लेकिन यहाँ भी एक विशेषता है, वह यह

1- ताप के ताए हुए दिन, पृ० 62

2- उस जनपद का कवि हूँ, पृ० 108

कि यह बात केवल त्रिलोचन पर ही नहीं घटती अत्त अपितु इसी प्रकार के अन्य उन कवियों पर भी घटती है जो कवि पंक्ति में आगे आने के लिए अपने द्वेषियों की कटूक्तियों के शिकार बनते हैं। इस प्रकार यहाँ पर कवि ने सामान्यीकृत तथ्य को विशेषीकृत करके अपनी आत्मपरक काव्य शैली का उदाहरण प्रस्तुत किया है।

'गया बसंत और आया कब, याद नहीं है,
अब तो धूल उड़ा करती है, फूल कहाँ है,
सूनी है पेड़ों की डालें, अगर कहीं है
छिपी कली एकाध, तो नहीं भ्रमर वहाँ है।'[1]

यहाँ पर अभिधा के द्वारा तो केवल यही बात समझ में आती है कि बसंत के बीतने पर वातावरण कितना उदास हो गया है किंतु इसके व्याज(बहाना) से कवि परिवर्तन की धारा को इंगित करता है उसे वर्तमान में निराशा दिखलायी पड़ती है। अतः इस अभिधा-मूलक काव्य में भी प्रतीकात्मकता सी लगती है। और अभिधा का व्यापार, बाण की भांति दूर-दूर तक पहुंचकर हमें अतीत की सुखद स्मृतियाँ दिलाकर वर्तमान की विभीषिका से जोड़ देता है। इस प्रकार कवि की यह सपाटबयानी भी आकर्षक और सार्थक लगती है।

'मुक्ति का आनन्द क्या है ये न उसको जानते हैं,
बोल हिन्दुस्तान कीजय युद्ध करना जानते हैं,
बंद होकर देखते ही रह गये इनको विदेशी
किस तरह ये मुक्ति का सन्मान करना जानते हैं

पूछ तो तेरे लिए ये कौन सी सौगात लाये
आज ये योद्धा प्रवासी हर्ष से घर आ रहे हैं
आज वे संगीन क्यों परखे घर आ रहे हैं।'[2]

1- अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ0 15

2- तुम्हें सौंपता हूँ, पृ0 111-112

यद्यपि यहाँ पर कवि ने अपने देश के उन सैनिकों की प्रशस्ति की है जो द्वितीय विश्व महायुद्ध में भारत की ओर से युद्ध के लिए भेजे गये थे। किन्तु यहाँ पर भी कवि कीअभिधा शक्ति सराहनीय है।जहाँ इस प्रशस्ति केद्वारा कवि अपने देश के वीरों पर गर्व करता है वहीं उनकी वीरता, उत्साह और उनके स्वतंत्रता प्रेम की विशेषता को भी रेखांकित करता है। सीधे-सादे शब्दों में वीर रस और ओज गुण का ऐसा परिपाक दुष्कर है। जिसे त्रिलोचन की सहज वाणी ने सुलभ कर दिया है।

लक्षणा शक्ति :—

त्रिलोचन शब्द शक्ति की परवाह किये बिना स्वच्छन्द गति से लिखने वाले कवि हैं, किन्तु इतने समर्थ हैं कि जब उनकी वाणी फूटती है तो लक्षणा और व्यंजना के पुष्प काव्य पथ में स्वयं बिखर जाते हैं।इस प्रकार स्वतः उपस्थित हुई लक्षणाओं का आनन्द ही कुछ दूसरा है। कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं।

(क) 'यह नया पतझर रहे झर
वे पुराने भाव वे स्वर
मिट रहे वे चित्र घन के
रवि गया जिन को बिरच कर
रात में जो स्वप्न देखा
पुष्ट जिसकी भाव रेखा।'[1]

यहाँ पर गौड़ी लक्षणा के द्वारा कवि ने पुरानी रूढ़ियों एवं कुप्रथाओं के नष्ट होने और नये समाज के उदय होने का भाव व्यक्त किया है। इसी प्रकार लक्षणा के द्वारा कवि ने कल्पना का अर्थ किया है। नये समाज की उद्भावना का यह स्वर व्यक्त करने के लिए कवि ने गौड़ी लक्षणा का मनोहर रूप प्रस्तुत किया है।

1- सबका अपना आकाश, पृ0 32

(ख) 'जीवन का ज्वार यहाँ
आता है तो आता है
क्या-क्या साथ लाता है
शंख, सीप, घोंघे
जलचर जीव / और भी बहुत कुछ।'[1]

यहाँ कवि ने 'साध्यवसाना' लक्षणा द्वारा समुद्र के तुल्य विश्व की ओर इंगित किया है, क्योंकि यहीं पर तो जीवन रूपी ज्वार का चढ़ाव उतार होता है, उस ज्वार के साथ अनेक वस्तुयें आती हैं। कोई शंख के समान जागृति देती है तो कोई सीप के समान बहुमूल्य मोती रूपी सुखों की उपलब्धि कराती है। और कोई घोंघे के समान निस्सार होते हैं।

(ग) 'महल बनाया करो और जैसे मन बहले
वैसे करतब किया करो अब तो सच्चाई
का आदर है यहाँ कहीं कोई कुछ कह ले
अधिक दिनों तक नहीं चल सकेगी कच्चाई।'[2]

यहाँ पर महल और 'कच्चाई' में भी 'साध्यवसाना लक्षणा' है क्योंकि महलों में कल्पना का आरोप लुप्त है और 'कच्चाई' में थोथापन का रूप छुपा हुआ है।

(घ) 'मेरा और तुम्हारी
दो दुनियाँ अब एक थी, उधर कोयल बोली
कहीं पपीहा चीखा, फेरी यों ही हो ली
प्राणों की। मन की छवि अपने आप उतारी।'[3]

यहाँ पर प्रेम के चित्रण में कवि ने दो दुनियाँ की एकता में लक्षणा के द्वारा दो व्यक्तियों का सर्वस्व एक था, इस अर्थ की प्रस्तुति की है। कोयल का बोलना और पपीहे का चीखना

1- तुम्हें सौंपता हूँ, पृ0 76

2- अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ0 103

3- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 39

ये भी लाक्षणिक है, यहाँ गौड़ी लक्षणा है। 'कोयल बोलने का तात्पर्य मधुर वाणी से है, और पपीहा चीखने का तात्पर्य प्रेम की अतृप्त प्यास से है। इस प्रकार लक्षणा के व्यापक प्रयोग ने कविता को उत्कृष्ट बना दिया है।

'कलकत्ता बंबई हेठ थे उस के आगे,
कुंभ नगर था भी क्या, दो दिन का मेला था
पथिक दूर के आए, ठहरे रम कर भागे
मेले ने कुछ तो चिंताओं का ठेला था।'[1]

यहाँ पर दो दिन का मेला भी लाक्षणिक प्रयोग है, जो नश्वर अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इसी प्रकार मेले से जनता की चिंतायें कुछ तो आगे बढ़ी अर्थात् कुछ दिनों के लिए खिसक गयीं। इस अर्थ की अभिव्यक्ति चतुर्थ पंक्ति में लक्षणा के द्वारा ही हुई है।

'दुनियाँ में ताप भी है मगर छाँह कम नहीं
क्यों ताप से हम अपने को दहते हैं बार-बार।[2]

यहाँ पर लक्षणा के द्वारा ताप का तात्पर्य दुखों और कष्टों से है, और छाँह का तात्पर्य सुखों से है। यहाँ पर सादृश्य से गौड़ी लक्षणा हुई है।

उपर्युक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि त्रिलोचन के काव्य में लक्षणा के प्रयोग कम नहीं है। इसके अतिरिक्त यह निष्कर्ष भी निकलता है कि वे लक्षणा के द्वारा ही जीवन संदेशों को देखते हैं और उन्हीं के बीच विसंगतियों का समाधान भी खोजने की चेष्टा करते हैं।

व्यंजना शक्ति :—

त्रिलोचन लक्षणा से भी अधिक व्यंजना में रम गये हैं।क्योंकि इसमें किसी भी कवि को कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक अर्थ व्यक्त करने की सुविधा प्राप्त होती है, और व्यंग्य बाण चलाने के लिए लक्षणा से बढ़कर और कोई साधन तो है ही

1- अरधान, पृ0 63

2- गुलाब और बुलबुल, पृ0 86

नहीं। आधुनिक कविता में व्यंग्य का कितना महत्व है इसे लिखने की कोई आवश्यकता नहीं। अस्तु यहाँ कतिपय उदाहरणों द्वारा त्रिलोचन की व्यंजना शक्ति की समीक्षा की जा रही है —

(क) 'जो प्रसून खिलने को थे, उनका खिल पाना
क्रूर काल को नहीं सुहाया, और झर चले।
धरा धाम से गये, तीर्थ का यही फल मिला,
अपने घर की जगह विवश काल के घर चले
कल्याण चाहने वालों को कल नहीं छल मिला।'[1]

यहाँ पर 'प्रसून' शब्द लाक्षणिक है, किन्तु लक्षणा के ऊपर भी व्यंजना है जिसके द्वारा कवि ने कुम्भ में दिवंगत होने वाले उन होनहार नवयुवकों की ओर संकेत किया है।जो पुष्प की भाँति कोमल देखने में सुन्दर थे, जिनमें प्रसन्नता मुसकरा रही थी और जिनके जीवन का विकास जिनकी यश सुरभि से संसार को सुवासित होना था। इसी प्रकार 'झर चले' शब्द भी लक्षणा व्यंजना से परिपूर्ण है, जिससे अकाल मृत्यु का संकेत मिलता है।इसी प्रकार सभी पंक्तियाँ इस बात की व्यंजना करती हैं कि बेचारे तीर्थ करने आए थे।क्या तीर्थ का यही फल उचित था— सर्वनाश। उनकेविनाश से तीर्थराज के उन पुजारियों का भी धन्धा कम हो गया जो कल के दिन उनसे ठगकर कुछ ले गये।इतने बड़े मार्मिक अर्थ की व्यंजना कवि की व्यंजना शक्ति पर हीआधारित है।

(ख) फिर महाभारत निकट है
लक्षणों से यह प्रकट है
अब नीरव है रहे पर
भर चुका अब धैर्य घट है।

1- अरधान, पृ0 55

रात दिन उद्योग चलता
पक्ष वर्धन की विकलता
पाँव सिर की ओर दो हैं, एक ही सुनना पड़ेगा।'[1]

यहाँ पर कवि ने व्यंजना के द्वारा यह संकेत किया है कि आज विश्व दो दलों में बँट गया है।

(1)साम्यवादी दल (2)पूँजीवादी दल। सभी राष्ट्रों के लिए समस्या बन गयी है उन्हें किसी एक दल का पक्ष लेना अनिवार्य लगता है। यहाँ पर 'महाभारत' शब्द भी लाक्षणिक व्यंजक है। जिस प्रकार महाभारत में सारे राष्ट्र दो दलों में बँट गये थे और भीषण युद्ध में धन जन की अपार क्षति हुई वही स्थिति आज संसार की होने वाली है, क्योंकि तृतीय विश्व महायुद्ध की सम्भावना है। यद्यपि अभी युद्ध का शंखनाद तो नहीं हुआ किन्तु धैर्य की सीमा टूट चुकी है। दिन-रात अपना-अपना पक्ष बढ़ाने के लिए दोनों दल प्रयत्न करते हुए विकल हैं। दोनों दल सबल हैं। दोनों का दबाव पड़ रहा है, अतः किसी एक पक्ष का दबाव तो मानना ही होगा। इतने व्यापक अर्थ की अभिव्यक्ति व्यंजना शक्ति से ही सम्भव होती है।

(ग) टर्र-टर्र कर कार्या-कूप निवासी बोला,
नया क्या हुआ है, कुछ हो तो नहीं हुआ है,
कौन साधना है यह, धोखा और जुआ है
खोला जब मुँह तथ्योद्घाटनार्थ ही खोला
है हमने तो छोड़ नहीं सकते परम्परा
का अंचल हम रेल, विमान तार, ऐटमबम
विश्वासों को किसी तरह से कुछ भी कम
नहीं कर सकेंगे साक्षी सम्पूर्ण है धरा।'[2]

1- सबका अपना आकाश, पृ० 35

2- अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ० 58

यहाँपर व्यंजना के द्वारा कवि ने रूढ़िवादी परम्पराग्रस्त काशी निवासी पण्डित की समझ पर व्यंजना के द्वारा कठोर व्यंग्य किया है। उसे टर्र-टर्र करने वाला मेढक समझा है, जो काशी के अतिरिक्त संसार को जनता ही जिसे नूतन विकास दिखलायी ही नहीं पड़ता। वह उस नये विकास को भी धोखा और जुए के खेले के समान हानिप्रद तथा स्वार्थी जन नेताओं का चक्कर मात्र समझ लेता है। यह सब व्यंजना के माध्यम से ही पूर्णतः व्यक्त हो सका है।

(घ) 'सुदेश की आज अवस्था
इतनी उन्नत है, सुखमय है, दुख कहीं नहीं है
शेष अवैधानिकता है। छींकों या खांसो
सब अवैधानिकता है। छींको या खांसो
सब नियमानुसार हो, यदि विपरीत किया तो
दण्ड भोगना होगा।
इसको उन्नति कहते हैं
जीवन नहीं और अधिकार सभी रहते हैं।'[1]

यहाँ पर व्यंजना के द्वारा कवि ने अपने देश की भावना की अवनति का संकेत किया है। जनजीवन दुखमय है। सर्वत्र दुख ही दुख है। संवैधानिक कुछ भी नहीं। कुछ भी करो ऊपर से नियम का पालन हो दिखावे के लिए। बाकी सब नियम विरुद्ध हो। सच्चाई से जेल मिले दण्ड भोगना पड़े? क्या यही हमारी उन्नति है? नहीं यह तो अवनति है। इस व्यवस्था से जन जीवन मर चुका है, और वाह्यरूप से प्रजातंत्र है। कहते है सबके अधिकार सुरक्षित हैं। यहाँ पर कवि ने शासन के प्रति अपने असन्तोष की जो मार्मिक व्यंजना की है वह केवल अभिधा से सम्भव नहीं थी। इतनी प्रखरता और प्रभावकारिता व्यंजना शक्ति से ही सम्भव थी। यह है त्रिलोचन की अभिव्यंजना शक्ति जिसके

1- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 83

द्वारा इतने व्यापक अर्थ की अभिव्यक्ति हुई है।

'बाढ़ चाँदनी की आई है, देख रहा हूँ
डूब गये हैं छोर दिशाओं के भी नीरव
इन्द्रलोक में जैसे कोई नूतन उत्सव
होता है इस की धारा में मौन बहा हूँ
लगता है इन लहरों पर मैं बहता-बहता
चला गया हूँ जहाँ उर्वशी नाच रही है
किरणों के सुकुमार कलेवर में उमड़ी है
धारी थी स्वर्ग की कोन कुछ कहता-कहता
मौन हो गया मुझे देखकर।'[1]

यहाँ पर चन्द्र ज्योत्स्ना का मनोरम दृश्य अंकित है जिसमें स्वर्ग की कल्पना व्यंजित है। इस स्वर्गिक सुषमा से कवि ने भूतल पर कल्पित स्वर की कल्पना की है और यथार्थ में भूतल को दुःखमय सूचित किया है। इसी प्रकार के अन्य अनेक स्थल हैं, जहाँ कवि की भाव अभिव्यंजना उच्च कोटि की लगती है।

व्याकरण :—

व्याकरण वह शास्त्र है जो भाषा का संस्कार करता है, इसकी व्युत्पत्ति भी यही कहती है — व्या क्रियन्ते = उत्पात्यन्ते शब्दा अनेन इति व्याकरणम् अर्थात् जिस शास्त्र के द्वारा शब्दों की उत्पत्ति बतायी जाये उसे व्याकरण कहते हैं। इसीलिए इसका दूसरा नाम शब्दशास्त्र भी है।[2] वेद के छः अंगों में व्याकरण को भगवान का मुख कहा गया है।

त्रिलोचन भाषा के अधिकृत कवि है, इसलिए व्याकरण की दृष्टि से उनकी भाषा परिष्कृत और प्रांजल है। उसमें खोजने पर व्याकरण जन अशुद्धियाँ नहीं प्राप्त हो पातीं। बहुत प्रयास करने पर केवल एक ही स्थल मिलता है जो लिंग दोष का

1- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 54
2- मुखं व्याकरणम् स्मृतम् — पाणिनीय शिक्षा से उद्धृत

उदाहरण है — "अमृत मूल कविता जो स्वर्ग से यहाँ आई,
धूल और काँटो में उस को नाच नचाई।"[1]

यहाँ पर नाच नचाई के स्थान पर नाच नचाया उचित था किन्तु ऊपर की पंक्ति में आई के प्रयोग के कारण तुक मिलाते हुए नचाई का प्रयोग किया गया है। जबकि यह प्रयोग लोक व्यवहार की दृष्टि के विरुद्ध है।

व्याकरण के अन्य अंग संज्ञा, क्रिया, सर्वनाम, विशेषण और अव्यय आदि में से त्रिलोचन के विशेषण विशेष महत्वपूर्ण है। यथा —

(क) सूना नभ, ऊना मन, तमसावृत मेदिनी विच्छेदिनी हँसी
अरूण-तरूण-वरूण, संत्रस्त नक्षत्र हारावलि।"[1]

(ख) नीरव तारापथ असन्न आपदाओं[3]

(ग) स्तिमित दृग, सहमी शंकी, अकरूण कर, करूण रव,
अघट-घटना, अगम ध्वनि,[3]

(घ) अनवरत धकम धक्का, चेतन स्थल, भीषण नाट्य[5]

(ङ) फूलों भरी राह, हँसते नर फूल, भावमय रूप, चिन्मय
ध्यान, मधु भूमि प्रखर तेज, नव कल्प,[6]

उपर्युक्त अंशों में दिये गये विशेषणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि त्रिलोचन उपयुक्त विशेषण चुनने में सिद्धहस्त है। वे विशेष्य से सटीक मिलने वाले विशेषण ही चुनते हैं। उनमें भी यथा सम्भव प्रगतिशील का दृष्टिकोण बना रहता है।

संज्ञाओं में त्रिलोचन भाववाचक संज्ञा को अधिक महत्व देते हैं। जैसे — मनुष्यता, मानवता, जनता, स्वतंत्रता, स्थिरता, अस्थिरता, नीरवता, शीतलता, इ

1- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 108
2- तुम्हें सौंपता हूँ, पृ0 14
3- अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ0 84
4- अरधान, पृ0 14
5- अरधान, पृ0 45
6- सबका अपना आकाश, पृ0 11

अधीरता, प्रामाणिकता, इत्यादि शब्द उनकी अनेक कृतियों में प्रयुक्त हुए हैं।

सन्धि :— त्रिलोचन की रचनाओं में स्वर संधि, व्यंजन संधि, विसर्ग संधि इन तीनों के पर्याप्त उदाहरण मिलते हैं। जिनका सोदाहरण विवरण प्रस्तुत है —

स्वर-संधि — त्रिलोचन दीर्घ संधि और गुण संधि का प्रयोग विशेष रूप से करते हैं। शेष स्वर संधियों की ओर उनका ध्यान बहुत कम गया है।

(क) दीर्घ संधि :— गदाभिघात, तमसावृत्त, सम्यताभिमानी, जीवनानुरक्त, ज्ञानाग्नि, निहितार्थधर, मेघाडम्बर, चराचर, स्नेहाधीन, मिथ्याभिमान, अभीप्सित, दूरागता, स्वाभिमान, चण्डांशु, प्राणाधिके, सानुरोध, एकाधिक, कर्णार्पित, यथान्वय, समानान्तर नियमानुसार, महत्वाकांक्षायें, मलयानिल, सर्वांग, पूर्वाभ्यास, परितापित, हरितांचल, अभ्यागत, पर्वतवासी, एकाकार, जीवनानुरक्त, आत्मालोचन, हृदयानुसार, तारुण्याश्रित, प्राणाकार, संकल्पाश्रित, हिमाद्रि, भावाश्रय, जीवाश्रय।

दीर्घ संधि के इन उदाहरणों से यह निष्कर्ष निकलता है कि कवि ने कहीं खटकने वाली संधियां नहीं कीं। केवल उन्हीं स्थानों पर संधियां की गयी हैं जहां उनके करने से प्रवाह में गति आयी है।

(ख) गुण संधि :— षोडशोपचार, लोकोत्तर, स्वेच्छा, सूर्योदय, आदि उदाहरण मिलते हैं। इस संधिका प्रयोग अपेक्षाकृत कम किया गया है।

व्यंजन संधि :— इस सन्धि का भी अधिक प्रयोग नहीं किया गया। दिग्विजयी, वाग्वीरता उच्छ्वास, दिग्गज, आदि उदाहरणों से यह सिद्ध होता है कि व्यंजन संधि में अधिकांश 'झलां जशो न्ते' इस सूत्र के आधार पर प्रथम वर्ण के स्थान पर तृतीय वर्ण हो जाने वाली संधि का प्रयोग अधिक किया गया है।

विसर्ग संधि :— इस सन्धि का प्रयोग अधिक मिलता है। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि विसर्ग सन्धि से कवि को शब्दों के कसाव में कुछ सहायता मिली है। जैसे — निर्विकारता, मनोवांछित, निष्कलंक, निरलंकृत, निर्व्याज, ज्योतिष्केतन, दुर्निवार,

मनोरथ, निस्तरंग, वहिरन्तर, मनोस्नात, वाह्यमुखी, निर्वेद आदि।

समास :—

कवि ने समासों को उतना ही महत्व दिया है जितनी उनकी आवश्यकता रही है। उन्होंने लम्बे-लम्बे समासों का प्रयोग प्रायः नहीं किया है। समस्त ग्रन्थों में केवल एक ही स्थल ऐसा है जहाँ पर कवि ने तेरह शब्दों [1] का समास प्रस्तुतकिया है—

"गिरि-गह्वर-कंदरा-गहन-वन-झाड़ि-झाड़ियाँ
शर-सरिता-निरवाल-सागर-कासार-खाड़ियाँ।" [1]

तत्पुरुष समास :— समासों में तत्पुरुष समास का प्रयोग विशेष रूप से किया गया है। मानवकाया, मनुष्योचित, महत्वाकांक्षा, आत्मनिवेदन, सुषमाराधन, लोकोत्तर, तथ्योद्घाटनार्थ, विश्वविद्यालय, आत्मालोचन, तारापथ, वायुमण्डल, सुखशय्या, संस्कृति-स्रोत, कार्यक्रम, जीवनधारा, तमसावृत, तेजपुंज, सृष्टिकल्पना, रणगर्जन, सभ्यता-भिमानी, नयननीर, देवदया, राजलक्ष्मी, संचारविघ्न, ज्ञानाग्नि, स्नेहाधीन, भुवन-व्याप्त, वायु तरंग, आमन्त्रण भाव, कुलवधु, कर्णार्पित आदि।

कर्मधारय समास :— विशेषण विशेष्य के इस समास को भी अधिक महत्व दिया गया है क्योंकि इससे भी समाहार शक्ति मेंवृद्धि हुई है। इसके कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं। नक्षत्र-हारावलि, हृदयोदधि, स्वर-सुमन, प्रियछवि, महाप्रलय, जीवनपरिधान, प्रबल-प्रवाह, प्रबलप्रवाही, भवसिंधु, सुप्तसमुद्रीचट्टान, ग्रस्तसूर्योदय, आधुनिक आश्रय पाषाणीपीड़ा, वृद्धनेत्र, सुरीली सारंगी, अतुल रस धारा, मुधार-भुज, प्रकाशजल, आमंत्रण-भाव, आकर्षण प्रासाद, संजीवनी लहर, सुमन शिरोमणि आदि।

द्वन्द्व समास :— त्रिलोचन ने द्वन्द्व समासों का भी कम प्रयोग नहीं किया है। मत पृष्ठ में तेरह पृष्ठों का जो बड़ा से बड़ा समास लिखा गया है वह द्वन्द्व समास है।

1- अरधान, पृ0 43

इसके अतिरिक्त अधिकांश दो-दो शब्दों के द्वन्द्व मिलते हैं जैसे — तन-मन, बहिरन्तर जीवन-अजीवन, पत्र-पुष्प, नल-दमयन्ती, लैला-मजनू, धूल-कीच, सार-सभाल, कति-कविता, शराब, चढ़ना-गिरना, कह-कहवाव-, दिवस-रजनी, कहनी-अनकहनी, व्यंग्य-विनोद, हँसी-खेल- धूप-छाँह, अहंकृति-हुंकृति, आकांक्षायें-अभिलाषायें, रूदन-गान आदि।

इन द्वन्द्व समासों से भी कवि को रचना में सहायता मिली है। विशेष रूप से गीतों की रचना में द्वन्द्व समास का प्रयोग अधिक किया गया है, क्योंकि इनसे प्रवाह में सहायता मिलती है। बहुव्रीहि समास के प्रयोग करने में कवि को कोई रुचि नहीं है। इसी प्रकार अव्ययी भाव समास भी बहुत कम स्थान पा सके हैं — यथाशक्ति यथाक्रम, जैसे कुछ प्रयोग अवश्य मिल जाते हैं। उपर्युक्त उदाहरणों से ऐसा प्रतीत होता है कि कवि कहीं पर ऐसे क्लिष्ट समासों का प्रयोग नहीं किया गया जिनसे अर्थानु - सधान में किसी प्रकार का कोई अवरोध उपस्थित होता हो।

शैली -सौन्दर्य :—

प्राचीन आचार्यों ने पांचाली, वैदर्भी और गौड़ी इन तीन रीतियों(शैलियों) का उल्लेख किया है।[1] किन्तु केवल तीन शैलियों मेंही काव्य का विभाजन असंगत और अनुचित लगता है। प्रत्येक कवि की अपनी शैली होती है, जिसमें उसका अपना व्यक्तित्व सन्निहित रहता है। सामान्यतया आधुनिक काव्य में मुख्य रूप से निम्नलिखित पांच शैलियों का प्रयोग अधिकांश रूप में मिलता है।

(1) वर्णनात्मक शैली

(2) विवेचनात्मक शैली

(3) भावाभिव्यंजक शैली

1- भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र,

(4) व्यंग्यात्मक शैली

(5) उद्बोधन शैली

इन्हीं को दृष्टिपथ में रखते हुए त्रिलोचन के काव्य की समीक्षा की जा रही है।

(1) वर्णनात्मक शैली —

त्रिलोचन की रचनाओं में वर्णनात्मक शैली का पर्याप्त प्रयोग हुआ है। इस इसका हेतु सम्भवतः कवि का यथार्थपरक दृष्टिकोण है। वे इस शैली में क्रमशः एक-एक दृश्य अथवा घटना को सामने लाते हैं और उन सबमें तारतम्य बैठाकर सम्पूर्ण रूप की अभिव्यक्ति करते हैं। उनकी लम्बी कविताओं में यह शैली विशेष रूप से अपनायी गयी है। 'नगई महरा' कविता में इसी शैली का प्रयोग मिलता है। प्रारम्भ में तो आकर्षण कम है, लेकिन उत्तरोत्तर जीवन की जिस संघर्षमयी यथार्थपरक स्थिति का समग्र रूप सामने आता है वहाँ कविता की गम्भीरता उन पूरे प्रभाव के साथ पाठक के हृदय पर छा जाती है। इस शैली में जो वर्णन मिलता है उसमें एक विस्तृत कहानी जैसा आनन्द आता है। इसीलिए उनकी यह शैली वस्तु चित्रात्मक शैली कही जाती है। इनमें वस्तु वर्णनकी लाक्षणिकता भले ही हो, किन्तु प्रतीकात्मकता नहीं रहती, इसलिए ऐसी कविताओं में वस्तु का वास्तविक रूप सुरक्षित रहता है। 'तुम्हें सौंपता हूँ' संग्रह में 'वे घर आ रहे हैं' 'रैन बसेरा' इस शैली की अच्छी कविताएँ हैं। चैती' काव्य संग्रह में 'क्षण की खिड़की' 'कवि शमशेर से' 'सारनाथ जैसी रचनाएँ वर्णनात्मक शैली में अपना एक विशेष प्रभाव छोड़ती हुई दिखलायी पड़ती हैं। 'अरधान' शीर्षक काव्य संग्रह में 'आँधी' 'वातावरण' 'साथी है सेमल पुराना' और 'उन्नीस सौ तिरपन के महाकुम्भ से सम्बन्धित 25 कविताओं में (जाड़े की घनमाला से, प्रभुता के मद का विध्वंसक कोप तक) वर्णनात्मक शैली के विविध रूपों का चित्रण किया गया है, जो अपने में प्रशंसनीय हैं। एक उदाहरण द्रष्टव्य है —

दृष्टव्य है –

'मरणसिंधु में मग्नप्राय मानवता, हारा
कोई अपने लड़के को दे रहा सहारा
अभी वाला उस को वे दे होता है
वह भी बच्चे को, भीड़ की लहर ने मारा
अभी को क्या करे, फेंक उस को देता है,
कल जिस छाती में पौरूष का पार नहीं था
आज उसी के प्राणों का उद्धार नहीं था।'[1]

यहाँ पर वर्णनात्मक शैली में कवि ने कितनी संवेदना भर दी है घटना का एक-एक चित्र उतर आताहै और अपना एक अमिट प्रभाव छोड़ जाता है। इसी प्रकार 'सुकनी' नाम की एक बुढ़िया का बड़ा सजीव चित्र प्रस्तुत करता हुआ कवि कहता है कि वह समाज से उपेक्षित थी। बच्चे उसे ताली बजा-बजाकर चिढ़ाया करते थे किन्तु वह बेचारी छः-छः बेटों की मृत्यु पर भी श्रम के बल पर जीती थी। इस वर्णनात्मक शैली में कवि की चित्रात्मकता और हृदय का मीठा-मीठा दर्द दोनों ने मिलकर शैली को सरस बना दिया है, यथा:—

'सुगनी उस बुढ़िया को सभी कहा करते थे
ऊसर पर उस की मँडई थी बिल्कुल सूखी
हड्डी हड्डी तन भैंसी पीछे चरते थे
चौपाए, चरवाहे दरवाजे जा जूझी
कुटकी उसे दिखाते – 'ले बुढ़िया दाना ले,
रोज-रोज का धंधा था बुढ़िया भी गाली
गिन-गिन कर अनगिनत देती थी पर खाना ले
कोई उसके पास न पहुँचा, जा कर ताली
बजा-बजा कर लड़के नित्य चिढ़ाया करते।'[2]

1- अरचान पृ0 54 2— उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 95

इसी प्रकार 'अरघान' संग्रह की 'साथी है सेमल पुराना' शीर्षक कविता में कवि ने सेमल के एक वृक्ष का बड़ा सुहावन चित्र प्रस्तुत किया है, जिसमें वर्णन के साथ ही कवि की रागात्मकता कुछ इस प्रकार घुल-मिल गयी है, जिससे कवि के उदात्त हृदय का परिचय मिल जाता है। यथा —

'पत्तियाँ
अनेक पतझरों का लुटा-चुका
उल्लसित होकर / पुष्पोत्सव मना चुका
रंग दिया दिशाओं को
हृदय में संजोयी हुई / अरूण तरंग से /
डाल-डाल टहनी-टहनी / जगमगा उठा
चिड़ियाँ भी आती हैं / ठहरती हैं
खेलती कलोलती हैं / और चली जाती हैं /
धूप शीत वर्षा से बचने के लिए
यहाँ आया ही करते हैं जानवर
जड़ों से रगड़-रगड़ कर / देह की खुजली मिटाते हैं
अपने इस साथी का परस पाके
मेरी भी शिराओं में / नई रवानी आती है
रूधिर की तरंग बढ़ जाती है
साथी है न।'[1]

उपर्युक्त पंक्तियों में कवि ने सेमल वृक्ष के दुख सुख का चित्र तो उतारा ही है साथ ही साथ वह न जाने कितनों का आश्रय है उसकी परोपकारिता मानव के लिए प्रेरणास्पद लगती है। इस जड़ वृक्ष से भी कवि अपने रागात्मक सम्बन्ध को स्थापित करता

1- अरघान, पृ0 34

है, सम्भवतः वह उसे अपनी ही भांति कवि को जीवन जीने की प्रेरणा देता है, तभी तो वह उसका मित्र है। लाक्षणिक प्रयोगों के साथ वर्णन कौशल का ऐसा अद्-भुत प्रयोग त्रिलोचन की काव्य प्रतिभा का अनूठा उदाहरण है।

विवेचनात्मक शैली :—

इस शैली में कवि विचारों की प्रधानता रखता है। वह बुद्धि कौशल से किसी भी तथ्य का विवेचन करने में गहराई तक उतर जाता है। 'उस जनपद का कवि हूँ' इस काव्य संग्रह में 'आँखों का पानी' दुखों के बाणों से 'यह निर्मम आघात सहो' 'रात के रचे चित्रों में' बैठे धूप में आदि रचनाएँ इसी शैली में लिखी गयी है। अनकहनी भी कुछ कहनी है' जहाँ धूल उड़ती हो, मूर्तिकार हो दक्ष, परदा अपनों से होता है, दुख यों कोई चीज नहीं है, प्रेम कुछ नहीं है, चौदह चरणों में कवि तो मानव आत्मा का आदि कविताएँ कवि की विवेचनात्मक शैली के उच्च आदर्श को प्रस्तुत करती है। इस शैली का एक उदाहरण दृष्टव्य है —

'यह दुनिया है, यहाँ कौन किसका है लग कर
जीना है तो यहाँ कुछ न कुछ होगा करना,
भीड़-भाड़ यह जगह कहाँ सूने में जगकर
काम नहीं चलता इससे तो केवल मरना
हो सकता है, संकोचों से सागर तरना
शक्य नहीं है अगर चाहते हो तुम जीना
धक्के मारो इसी भीड़ पर इससे डरना
जीवन को विनष्ट करना है।'[1]

जब कवि विचारों की शृंखला में गहराई तक उतर जाता है तब उसका चिन्तन पक्ष प्रबल हो जाता है। अच्छाई क्या है? कैसे आती है? उसका क्या स्वरूप है? इन सब बातों पर

1- अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ0 14

विचार करता हुआ कवि अच्छाई को परिभाषित करता है –

'अच्छे विचारों से/ अच्छाई नहीं आती /
अच्छे आचार ही / अच्छाई लाते हैं /
अच्छाई की उन्हार / कोई नहीं जानता / फिर भी /
अच्छाई को सभी जान जाते हैं / जिसको सब चाहे /
सब सीजें / सब अपनाएं / वही अच्छाई है"[1]

कवि जिस विषय को लेता है, यदि उसका चिन्तन करने लगता है वह चाहे दृश्य हो या अदृश्य उसकी विशेषताओं को आंकने में नहीं चूकता। ममता के विषय में कवि का सूक्ष्म चिन्तन उसकी विवेचनात्मक शैली का एक सूक्ष्म प्रमाण है।

'ममता दुर्लभ न हो, कहीं की थोड़ी सी भी
ममता अकुलाये प्राणों का बड़ा सहारा
बन जाती है, दुनिया में इकलाया जी भी
लहरों में टोहा करता है कहीं किनारा
बाट ठीक हो और जरा अच्छा सा दिन हो
तो वर्षों की लम्बाई आंखों को छिन हो।'[2]

प्रेम के विषय में भी कवि का अपना एक अलग विचार है। भले ही वह प्रगतिशीलता के दृष्टिकोण से कहता हो, अथवा यथार्थ को अंकित करने का प्रयास करता हो किन्तु बात तो पते की कहता है –

'प्रेम कुछ नहीं है, पैसा है, पैसे वाला
प्रेमी है, उदार है, सुंदर है, दानी है,
प्रेम हृदय का धन है कोई पीने वाला

1- चैती, पृ0 30
2- तुम्हें सौंपता हूं, पृ0 69

हो ऐसा कह सकता है यह नादानी है,
ऐसी जिसका अंत नहीं है, लासानी है
इस दुनिया में कुछ मनोरंजन की बातें
और बहुत सी है अब तो जन जन जानी है
प्रेम पुराना पागलपन है, इसकी घातें
नहीं दिखाई देती हैं। '[1]

भावाभिव्यंजक शैली :—

इस शैली में कवि के भावुक हृदय में अपनी सरस भावुकता का परिचय दिया है। उसके भावों का क्षेत्र विस्तृत है। चाहे व्यक्ति हो या समाज, प्रकृति हो या विकृति सर्वत्र उसकी दृष्टि है। कवि सृष्टि के व्यापक सौन्दर्य से प्रभावित होकर वह भावों की दुनियाँ में कुछ खोया-खोया सा इस प्रकार गुनगुनाता है —

'जब देखा सौन्दर्य तुम्हें पथ पर चलते पाया
खिली व्योम में उषा, चाँदनी
बिजली घटा सलोनी,
सूरज, चाँद पथ पर झगकुल
सस्वरता, अनहोनी
कभी कहीं है कभी कहीं है धूप और छाया
सिर के ऊपर झुके पेड़ में
खिल-खिल आई कलियाँ
बिहँसे फूल बस गई धरती
जागी भ्रमरावलियाँ
केवल दो दिन केवल दो दिन की है यह माया। '[2]

1- अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ0 53
2- सबका अपना आकाश, पृ0 5।

उपर्युक्त पंक्तियों में धरती से लेकर आकाश तक प्रकृति की सुख-दुखात्मक स्थिति से कवि की भावुकता सघन बनकर दर्शन के क्षेत्र में किस प्रकार उतर आती है, यह कवि की भावुकता एवं चिन्तन शक्ति का समवेत प्रयास वंदनीय है ।

श्रृंगार के क्षेत्र में कवि की भावुकता दृढ़ता से अपने पैर जमायें रहती है। प्रकृति उसके हृदय को उद्दीप्त करती है और वहां भी कवि संयम से काम लेता है यथा — 'कितना अधी है

तुम्हारे वस्त्र बार-बार खींचता है
और तुम्हें बार-बार आग्रह से
छूता है /यौवन का ऐसा ही प्रभाव है
सभी को यह उद्वेलित करता है
आओ जरा देर और घूमें फिरें
पवन आज उद्धत है
वृक्ष लता-तृण - वीरूध नाचते हैं
चौपाये कुलेल करती हैं
और चिड़ियाँ बोलती हैं
आओ श्यामा थोड़ा और घूमें फिरें।'[1]

दुःख के भयानक वातावरण में भी कवि का चिन्तनशील मन भावुकता के उच्च शिखर पर पहुंच कर मौन सा हो जाता है, किन्तु अभिलाषाओं की जलती हुई चितायें उसे जीवन साथी से कुछ कहने के लिए मुखर कर देती हैं —

'हम दोनों हैं दुखी पास ही नीरव बैठे
बोले नहीं, न हुए समय चुपचाप बिताए
अपने अपने मन में भटक भटक कर पैठे
उस दुख के सागर में जिस के तीर बिताए
अभिलाषाओं की जलती है धू-धू-धू-धू'

1- चैती, पृ0 13-14

मौन शिलाओं के नीचे दफ़ना दिए गये
हम यों जान पड़ेगा।'[1]

कवि द्वितीय विश्वयुद्ध में अपने देश से गये हुए, सैनिकों पर न्योछावर है जब वे युद्ध के पश्चात् लौटते हैं तब कवि सहानुभूति और भावुकता का रूमाल लेकर इन वीरों के शरीर में पड़े हुए रक्त के छींटों को पोंछता हुआ ओजस्वी बनकर हमसे कुछ कह रहा है —

"ये थके हैं क्या न इन पर हाथ अपने फेर देगा
रक्त के छींटे पड़े हैं क्या न इनको पोंछ देगा
देख इनके घाव क्या तू शान समझेगा न अपनी
ये कहाँ, कैसे लड़े थे, क्या न इनसे पूछ लेगा
मत समझ इनको पराया ये लड़े अन्यायियों से
और लड़ने के लिए ही देश अपने आ रहे हैं
आज वे संगीन कन्धों पर रखे घर आ रहे हैं।'[2]

त्रिलोचन उन व्यक्तियों से विशेष अनुराग रखते हैं जो श्रमजीवी या मजदूर है, दुखी या पीड़ित हैं, असहाय या निर्धन हैं, वे भेड़ों के चरवाहों के साथ रहने के लिए, पहाड़ पर जाने के लिए भी उत्सुक हैं —

'मुझे बुलाता है पहाड़ मैं तो जाऊँगा
निर्मल जल के वे झरने कल
बैठ जहाँ आरपालों के दल
देते काट दुपहरी के पल
वहीं उन्हीं के सुख दुख में घुलमिल जाऊँगा
नभ में नीरव चंचल बादल

1- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 40

2- तुम्हें सौंपता हूँ, पृ0 117

रुई के गोले से उज्ज्वल

बिखर रहे होंगे दल के दल

लेता हुआ हवा छाँहों से लक्ष पाऊँगा'[1]

कवि की भावाभिव्यंजक शैली के अनेक स्थल हैं। विस्तार भय से उन सबकी विवेचना करना असम्भव है, किन्तु इतना तो स्पष्ट हो ही गया है कि कवि ने भावुकता के क्षेत्र को प्रेम, प्रकृति व्यक्ति और समाज इन चार क्षेत्रों में विभक्त किया है। इस प्रकार उसकी यह शैली अत्यन्त व्यापक है। इसमें भाषा सौन्दर्य भाव सौन्दर्य, कल्पनासौन्दर्य अलंकृति सौन्दर्य, संगीत सौन्दर्य आदि सभी का समावेश हो गया है। जिसके कारण यह शैली अत्यन्त स्पृहणीय बन गयी है।

व्यंग्यात्मक-शैली :—

अद्यतन कविता में बिम्ब की भाँति व्यंग्य को भी विशेष महत्व दिया जा रहा है। त्रिलोचन का व्यंग्य समाज पर, शासन पर और स्वयं अपने पर भी अंकुश रखता है। उनके व्यंग्य-बाणों से बचकर निकल जाने की शक्ति मनुष्य में तो क्या ईश्वर में भी नहीं है। 'ईश्वर की मृत्यु' शीर्षक कविता ही इसका प्रमाण है, जहाँ पर कवि ने आज के पूँजीपतियों द्वारा उस ईश्वर को मार डालने का आरोप लगाया है। यहाँ पर त्रिलोचन की इस व्यंग्यात्मक शैली के कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं।

"पारिजात जीवन का तुम तो भुजा धर्म की

लिए लिए फिरते हो, तुमको ग्लानि नहीं है

कोई भी मर जाए तुम्हारी हानि नहीं है

बहुत हुआ, दिख गयी तुम्हारी कला कर्म की।'[2]

यहाँ पर मानवतावाद की दृष्टि से कवि ने हिन्दू-मुस्लिम और ईसाई को नाम से एक

1- सबका अपना आकाश, पृ0 42

2- अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ0 19

दूसरे को पृथक करने वाले धर्म नेताओं की निन्दा करते हुए कहा है कि तुम्हें धर्म के नाम पर मानवता को पृथक करके भी लज्जा नहीं आती, ग्लानि नहीं होती ? क्या किसी की मृत्यु से तुम्हारी हानि नहीं होती? क्या यही तुम्हारा धर्म कर्म है ? अर्थात् नहीं। इस कथ्य को कवि ने बड़ी शक्तिमत्ता के साथ प्रश्न के रूप में प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार परदे की ओट से अनैतिकता का आचरण करने वाले व्यक्तियों के लिए कवि का यह व्यंग्य कितना सटीक है –

'परदा अपनों से होता है और पराये
चाहे नंगा देखें, इससे क्या जाता है,
यदि यों ही कुछ किए बिना गौरव आता है
तो हलोर लेना अच्छा है, फिर करार।'[1]

आज साहित्य के क्षेत्र में हंसवाहिनी सरस्वती पर भी कवि व्यंग्यबाण चलाने से नहीं चूकता। क्योंकि इस समय तो गधे ही सरस्वती के वाहन बन गये हैं। सरस्वती के पुत्र कहलाने वाले तथाकथित साहित्यकारों पर भी उनका व्यंग्य निर्ममता से प्रहार करता है –

'इधर गधों को तुमने वाहन
बना लिया है। उपयोगितावाद की जय हो।
अब चिन्ता की बात कौन? यह है निर्वाहन
स्वयं चढ़ो, साहित्य लाद लो यथा समय हो।
दुनिया ही जब बदल गयी है तब क्या कहना
जीवन का है अर्थ सदैव बदलते रहना।'[2]

त्रिलोचन व्यंग्य करने में बड़े पैने हैं। आज के अनुकरण प्रधान समाज में मौलिकता के अभाव और दूसरों के अनुकरण की प्रवृत्ति के कारण हमारा समाज किस तरह ?

1- अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ0 18

2- तुम्हें सौंपता हूँ, पृ0 59

बिगड़ रहा है इसका उन्हें खेद है। चाहे वह बालिकायें हों, चाहे हमारे किशोर हों सभी किस तरह दूसरों के अनुकरण से बिगड़ रहे हैं —

'कुल कन्याओं की आँखों में आज इशारा
अभिनेत्री की आँखों का है, नव किशोर भी
अभिनेताओं के चेले हैं, नेताओं के
कदम सिधार चलते हैं, स्वर जेताओं के
छंद ताल बिलकुल नवीन हैं, इधर शौक भी
यहाँ देसावर से आया है, कौन कहेगा
यहाँ का नहीं है।'[1]

यहाँ पर कवि ने समाज में हमारे होनहार बालक-बालिकाओं के आचरण पर कवि ने कठोर व्यंग्य किया है।

इसी प्रकार कुंभ-नगर में जहाँ एक ओर विनाश का दृश्य था, दूसरी-ओर अधिकारियों की साज-सज्जा, उनकी अकड़न, इधर धूल-धूसरित जनता, इस दृश्य को कवि व्यंग्यात्मक ढंग से देखता, सुनता और समझता है। तथा उसकी कटु अभिव्यक्ति भी इन शब्दों में करता है —

'इन्द्र वरूण कुबेर से अधिकारी छाए थे,
शिविर सजे थे, धूलि कहाँ उनको लगती थी
जुट आए थे, अपनी ऐंठ अकड़ लाए थे
कुंभ नगर में श्री इनके कारण जगती थी
तीर्थराज की रेणु जाहिलों को ठगती थी
इनके स्पर्शों से पल-पल पवित्र होती थी
होता था छिड़काव, बात रस में पगती थी
इन लोगों की बेचारी जनता सोती थी।'[2]

1- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 112
2- अरधान, पृ0 62

उद्बोधन-शैली :—

त्रिलोचन के काव्य ग्रन्थों में उद्बोधन शैली के विविध रूप प्राप्त होते हैं। कभी अपने को, कभी समाज को और कभी मानवता को अपने उद्बोधनों से जागृति का सन्देश देते हैं। उनके ये उद्बोधन निराशा में आशा का सन्चार करते हैं, निरुत्साह को उत्साह की गति देते हैं। और सुप्त प्राणों में नवचेतना का रंग भरते हैं। वे चाहते हैं कि संसार सबको अपना समझे, किसी में कोई भेद न रह जाय, सबमें नया उत्साह हो, नयी चेतना हो और नवोत्थान के लिए नया उत्साह हो —

'सबमें अपने-पन की माया
अपनेपन में जीवन आया
चंचल पवन प्राणमय बंधन
व्योम सभ के ऊपर छाया
रुप चांदनी का मधु लेकर
एक उषा में जगो जगाओ'[1]

आज का मनुष्य ऊपर से तो मानवतावाद का पुजारि है और जनता में मानवता को पहुचानने के लिए ऊपरी उत्साह प्रदर्शित करता है किन्तु वास्तविकता कुछ और है। इस लिए ऐसे लोगों के ऊपर जनता में अविश्वास है, भय है। अतः नेताओं को चाहिए कि वे जनता में मानवतावाद के प्रति विश्वास उत्पन्न करें और छलना के भय से त्रस्त जन-जीवन को उक्त भय से उन्मुक्त करे —

'मानवता की बातें करते हो
कितना उत्साह दिखा जाते हो
उनको अब पहचानो / मानव जानो / मानो
आँको विश्वास की नयी छवि
उन आँखों में /जिनमें अविश्वास और भय
अब तक छाया है।'[2]

1- तुम्हें सौंपता हूं, पृ0 40   2— वही, पृ0 83

सबका अपना आकाश' शीर्षक गीत संग्रह में तो कवि ने उद्बोधनों की झड़ी लगा दी है। यथा —

'रात में मन-मन अलग थे
स्वप्न रचना में विलग थे
ताल- लय में नव उदय था
भिन्न भाषा भिन्न जग थे
अब उषा की स्निग्ध स्मृति में
एक श्रुति में एक स्थिति में
एक भूपर भिन्न कृति में एक सरिता है बहानी।'[1]

उक्त पंक्तियों में कवि वर्तमान से अतीत को जोड़ता है। कहता है कि जब हम अज्ञान में थे तब अपनी-अपनी कल्पना में एवं अपने-अपने उत्थान के विषय में अलग-अलग सोचते थे। हमारे सुख भी अलग-अलग थे भाषायें भिन्न-भिन्न थीं किन्तु आज जागृति की बेला है, अब हम सबकी गति में एकता होनी चाहिए और भिन्नता में अभिन्नता की धारा प्रवाहित करनी चाहिए। निश्चित रू से कवि का यह अखण्ड मानवता का स्वर जीवन को उद्बुद्ध करता हुआ मानवता के लिए कितनी सुखद और उत्साहवर्धक प्रेरणा देता है।

कवि विश्रान्त जीवन को सहारा देने के लिए समाज से आग्रह करता है। क्योंकि समाज भी उसका अपना ही है। वह विश्राम के बाद अध्यवसाय करने का अपना निश्चय भी प्रकट करता है —

चेष्टा तज दो, मुझे भीड़ की ओर न ठेलो
पाँव लड़खड़ाते हैं दे दो तनिक सहारा
अपनों से लज्जा कैसी, देखो, मैं हारा,
हुआ तुम्हारे पास आ गया हूँ, अब ले लो
अपनी बाँहों में, छाती धुक-धुक चलती है

1- सबका अपना आकाश, पृ0 32

नहीं साँस में संयम है विश्राम मुझे दो,
थोड़ा सा विश्राम मुझे दो, पुनः काम दो,
ज्योति प्राण की अध्यवसायों से जलती है।'[1]

त्रिलोचन जीवन में श्रम को महत्व देते हैं और यह कहते हैं कि जो काम करे उसी को खाने का अधिकार है। वे नहीं चाहते कि कवि और लेखक जो उच्च वर्ग की स्तुति में चारण बनकर गीत गाते हैं, वे अब ऐसा नहीं करेंगे। वे वर्गहीन समाज की स्थापना की कल्पना करते हैं। दिवंगत महात्मा गाँधी जी की भी यही धारणा थी इसलिए कवि गाँधी जी के उक्त प्रेरणाप्रद विचारों की आवृत्ति करताहुआ उनके प्रति श्रद्धा व्यक्त करता है —

'आगामी मानव का उसका यह नारा है
कामकरे सो खाए, जग में परोपजीवी
जमींदार पूँजी को सबको ललकारा है
चारण नहीं बनेंगे आगामी मसि जीवी
उच्च वर्ग के, वर्गहीन होगा समाज
पूज्य रहोगे उस समाज मेंपर तुम अहरह।'[2]

आत्मपरक शैली :—

उक्त प्रमुख शैलियों के अतिरिक्त त्रिलोचन की कुछ अन्य शैलियाँ भी हैं। जिनमें कवि की चेतना आनन्द का अनुभव करती रहती है। उस जनपद का कवि हूँ' शीर्षक कविता संग्रह में कवि की आत्मपरक शैली, अत्यधिक मात्रा में विकसित हुई है। प्रायः सभी कविताएँ इस आत्मपरक शैली में ही लिखी गयी हैं। यथा — प्रगतिशील कवियों की नयी लिस्ट' 'हम दोनों हैं दुखी''वही त्रिलोचन है''चीर भरा पाजामा' 'भीख माँगते इधर त्रिलोचन ने गीतमयी हो तुम' जबसे देखा तुम्हें, तुम्हें याद है'हँसी

1- अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ0 95 2- उस जनपद का कवि हूँ, पृ077

तुम्हारे मुख पर, थोड़े दिन का संग हुआ है' क्या तुमको यह याद रहेगा' 'सखि तुम आज समीप नहीं हो' गया तुम्हारे द्वार' गहा तुम्हारा हाथ' आदि रचनायें मुख्यरूप में कवि के व्यक्तिगत सुख दुख एवं परिस्थितियों के चित्र प्रस्तुत करती है, किन्तु इनमें कवि की वैयक्तिकता के साथ ही साथ सामाजिक प्रतिबिम्ब की भी झलक मिल जाती है

यथा — 'उस जनपद का कवि हूँ जो भूखा-दूखा है,
नंगा है, अंजान है, कला- नहीं जानता
कैसी होता है क्या है वह नहीं मानता
कविता कुछ भी दे सकती है, कब सूखा है
उसके जीवन का सोता ...। '[1]

यहाँ पर कवि ने कविता तो व्यक्तिगत लिखी है किन्तु उसमें जनता जनार्दन की विमुखा दुख, अज्ञानता, नग्नता, कला शून्यता और नीरसता का स्पष्ट चित्रण किया है। इसी प्रकार उसकी प्रेम परक कवितायें भी भले ही वैयक्तिक हों किन्तु वे भी किसी न किसी प्रकार समाज से जुड़ जाती हैं।

संगीतात्मक शैली : —

इस शैली में कवि के वे भावात्मक गीत आते हैं जो सबका अपना आकाश' शीर्षक संग्रह में संगृहीत हैं। इनमें छायावादी गीतों की भांति प्रेम, प्रकृति, अवसाद आदि के विभिन्न दृश्य अंकित हैं। कवि अपनी गठरी में आंसू बांधे हुए गा रहा है तो कभी दीप जलाने की बात कहता है, कभी किसी मनोहर गीत को गाने की प्रेरणा देता है, तो कभी वीणा बजाने की बात कहता है। कभी उसको बुलाता हुआ प्रतीत होता है तो कभी-कभी पुरवैया के धीरे-धीरे लहराने की बात कहता है, कभी उसे उषा बुलाती है तो कभी चांदनी रात और नीरव तारों के दृश्य उससे कुछ कहते हैं। तभी तो वह

1- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 17

अपने स्नेह को सर्वत्र लुटाता है, तो कभी बार-बार पुकारने पर भी प्रियतमा के न बोलने पर उलाहने देता है। उसने प्रकृति में उसी भूमा के सौन्दर्य को व्याप्त पाया है, कभी उसे अपने हृदय में प्रियतम की पदचाप सुनाई देती है। वह एकान्त में खिले फूल को देखकर प्रियतमा को याद करता है कभी पूरे समाज के लिए आगे बढ़ने की चेतना प्रदान करता है, तो कभी चरवाहों के मस्त जीवन के साथ मिलजुल कर रहने की कामना व्यक्त करता है। वह जीवन के भी गीत गाता है, जिसमें स्वतंत्रता की ध्वजा को न झुकने देने के लिए प्रेरणा देता है उसके गीत आज की युद्ध विभीषिका के लिए भी चिन्तित है वह चाहता है कि मानव की मधु मुस्कान संसार में एकता की सृष्टि करके सुख का संचार करे। इस प्रकार संगीतात्मक शैली में कवि ने सभी प्रकार के गीत लिखे हैं। उनमें छायावादी शैली का विशेष प्रभाव दिखलाई पड़ता है। यथा —

'कब कटी है आँसुओं से राह जीवन की
लोटता है धूल में मन
यदि कहीं हारा
तन झुके चाहे न कुछ भी
है यही धारा
दीप सा विश्वास ही है चाह जीवन की।'[1]

इसके अतिरिक्त जहाँ पर कवि मानवता पर अत्याचार या अन्याय देखता है वहाँ पर उसके चित्त में दुखित मानवता के प्रति सहानुभूति जागृत हो जाती है और वह संवे - दनात्मक शैली में उन पीड़ितों के प्रति अपने भाव व्यक्त करने केलिए बाध्य हो जाता है। यथा — कहीं नहीं है इन्हें नहीं, मैं उन्हें बुलाता
हूँ जो घूम रहे हैं व्याकुल प्यासे-प्यासे
यह मानस है उन्हीं के लिए, मंद हवा से
लहराना बस नहीं कुछ नहीं इस से आता

1- सबका अपना आकाश, पृ0 28

मेरे स्वर मन में सोए विश्वास जगाएँ
सुस्ताए हैं जो पग उन को राह लगाएँ।'[1]

जिस प्रकार रेखाचित्र में वाह्य आकृति का चित्र प्रस्तुत किया जाता है, उसी प्रकार साहित्य में भी शब्दों के माध्यम से जब किसी का चित्र प्रस्तुत कर दिया जाता है, तब उसे चित्रात्मक शैली या रेखा चित्रात्मक शैली का अभिधान दिया जाता है। त्रिलोचन इस शैली में भी कुशल हैं। इस शैली की यह विशेषता होती है कि इसमें वाक्य लघु होते हैं और अल्प विरामों की सहायता से एक पूर्ण वाक्य इस प्रकार से प्रस्तुत किया जाता है जिससे किसी व्यक्ति, वस्तु या स्थान का पूरा रूप खड़ा हो जाता है, कवि ने पैसठ वर्ष के रामचन्द्र दुबे का एक चित्र इसी रेखाचित्रात्मक शैली में प्रस्तुत किया है—

'राम चन्द्र दुबे पैसठ से कुछ ऊपर ही
होंगे गोरा रंग सफेदी सिर पर मुँह पर
बाल रखा लेने से छाई, माथा भर कर
सल दिखती थी रूप सुन्दरों में सुन्दर ही
भिला हुआ था छाती और हाथ के रोएँ
भी सपेद थे नख भी उनके बढ़े हुए थे
पण्डिताव करते थे, थोड़ा पढ़े हुए थे
व्याज कमाते थे ऋण देकर, धन क्यों खोएँ?'[2]

शैली के प्रमुख गुण :—

(क) गुणात्मकता :— त्रिलोचन की शैली की विशेषता है कि वे प्रसंगानुकूल शब्द चयन करते हैं। ओज के स्थलों में भाषा ओजस्विनी बन जाती है, मधुर स्थलों में इसका माधुर्य देखते ही बनता है और प्रसादात्मक स्थलों में सरल, कोमल शब्दावली से निर्मित ऐसी जनभाषा का प्रयोग करते हैं जो प्रायः सर्वसाधारण के लिए बोधगम्य हो जाती

1- अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ0 94
2- तुम्हें सौंपता हूँ, पृ0 55

है। यहाँ पर शैली के इन तीनों गुणों के एक-एक उदाहरण देना समीचीन होगा।

'दीवारें दीवारें दीवारें दीवारें
चारों ओर खड़ी है तुम चुपचाप खड़े हो
हाथ धरे छाती पर मानो वहीं गड़े हो,
मुक्ति चाहते हो तो आओ धक्के मारें
और ढहा दें उद्यम करते कभी न हारें
ऐसे वैसे आघातों से स्तब्ध पड़े हो
किस दुविधा में झिझक छोड़ दो जरा कड़े हो
आओ, अलगाने वाले अवरोध निवारें।'[1]

यहाँ पर ओज गुण के उपयुक्त शब्दावली सराहनीय है। इसी प्रकार अनेक स्थलों पर कवि का ओज बड़ी निर्भीकता के साथ व्यक्त हुआ है। द्वितीय विश्व महायुद्ध के समय जब भारतीय सेना सहायता देकर लौटती है उस समय उनके स्वागत में 'वे घर आ रहे हैं' शीर्षक एक विस्तृत कविता में कवि का ओज अपने पूर्ण वैभव के साथ व्यक्त हुआ है। यथा —

जानते हैं ये कि आजादी नहीं है चीज सस्ती
जानते हैं प्राण देना, प्राण लेना और मस्ती
बात ये सीधी समझते हैं बिना पालिश अमर हो
जानते हैं ये कि मरने पर कहाँ बेखौफ हस्ती
देख आये ये स्वतंत्रों को उमँड़ कर युद्ध करते
आज ये आजाद होने के लिए घर आ रहे हैं
आज ये संगीन कन्धों पर रखे घर आ रहे हैं।'[2]

गीतों में कवि त्रिलोचन माधुर्य गुण को विशेष महत्व देते हैं। यथा —

1- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 97

2- तुम्हें सौंपता हूँ, पृ0 113

'अनोखी यह परिचित मुस्कान
जगा देती है मन में गान
जग चला नीड़ खगों का मौन
कहीं से चुपके चुपके कौन
पहुँच सोई कलियों के पास
सिखा जाता है हास विलास
मुझे केवल इस का है ध्यान
जगाता है समीर जब भोर
बदल जाता है चारों ओर
दृश्य जग का पहला शृंगार
नया संसार सुरभि संचार
कुतूहल कर जाता है दान।"[1]

यहाँ पर शब्दों की कोमलता और मधुरता भावों की कोमलता और मधुरता से मिलकर एक हो गयी है। ऐसा लगता है कि कविवर पन्त की सुप्रसिद्ध कविता 'मौन - निमन्त्रण' की सुगन्ध कानों में गूंज रही है। वैसा ही शब्द चयन, वैसी ही तान और लय, वैसी ही गति और वैसा ही छन्द प्रस्तुत हो गया है, जिसको सुनकर हृत्तंत्री का तार तार झंकृत हो उठता है इसी सन्दर्भ में कवि के माधुर्य गुण का एक अन्य उदाहरण प्रस्तुत है जिसमें 'निर्झर' का नादात्मक सौन्दर्य साकार हो उठा है -

'अविरल झर रहा निर्झर
पर पसीजो ना शिला
यह मिला जीवन शेष
निज पल गिन रहा हँस-रो
'नहीं' या 'हाँ' सदैव अशेष
तरू दल बोलता मर्-मर्।'[2]

1- सबका अपना आकाश, पृ0 18

2- तुम्हें सौंपता हूँ, पृ0 17

जब कभी कवि अपनी बात करता है या समाज की बात करता है तब सीधे सरल शब्दों में प्रसाद गुणात्मक शैली में बोलता है — यथा —

'मनुष्य की बात मनुष्य कानों
कभी सुनेगा कि नहीं सुनेगा
उपेक्षिता है अब प्राण पीड़ा
कराह का सागर ज्वार में है

सभी दिशाएँ दुख से भरी हैं
चले कहाँ प्राण डरे डरे हैं,

न भावना है, न विकल्पना है,
न राह ही है, न उछाह ही है।'[1]

यहाँ पर सरल शब्दावली के द्वारा कवि अपनी बात अपनों से कहता है। उसके इस कथन में भले ही विशेष चमत्कार न हो लेकिन उसका कथ्य तो चमत्कार पूर्ण है ही। कवि की शैली की यही विशेषता है कि वह मानवता को अथवा जीवन को जो सन्देश देना चाहता है, उसे खुले और स्पष्ट शब्दों में, न उसमें कोई घुमाव-फिराव है और न शब्द जाल की समस्या है। न तो अलंकारों का आवरण है और न किसी चमत्कार की चकाचौंध। सीधी बात सीधे शब्दों में सीधी सादी शैली में कहना त्रिलोचन की आत्मा का गुण है। इसीलिए कुछ लोग इन्हें सीधी-सपाट बयानी के कवि कहते हैं। यह बात दूसरी है कि ये अभिधा के ही नहीं अपितु लक्षणा-व्यंजना के भी समर्थ कवि हैं। इसका प्रमाण विगत पृष्ठों में दिया जा चुका है।

छन्द - लय : —

त्रिलोचन के काव्य-ग्रन्थों में जहाँ छन्दों के नए प्रयोगों का बाहुल्य है, वहाँ वे परम्परित छन्दों का भी अविकल प्रयोग करते हैं। 'अमोला' नामक संग्रह में अवधी के 'बरवै छन्द' का तो एक-छत्र-राज्य है, जिसमें कवि ने बैसवाड़े की कृषक—

1- अरघान, पृ0 13

बोली के माध्यम से दो हजार छः सौ पचासी 'बरवै' लिखे हैं, जो किसी भी हिन्दी-कवि के लिए एक चुनौती है। इस परम्परित छन्द के अतिरिक्त कवि ने शिखरिणी, द्रुत-विलम्बित, वंशस्थ जैसे संस्कृत के वर्णवृत्तों का भी सफल प्रयोग किया है —

त्रिलोचन ने छायावादी शैली के भी छन्दों का प्रयोग किया है। विशेषरूप से सबका अपना आकाश संग्रह में उनकी छायावादी गीत शैली दर्शनीय है। उन्होंने लोकगीतों की शैली पर भी अनेक गीत लिखे हैं जो अपनी ध्वन्यात्मकता एवं लयात्मकता के कारण विशेष महत्व रखते हैं। यथा —

'मंजर गये आम / कोइलिया न बोली
बाटों के अपने / हाथ उठाए
धरती / बसन्त सखी को बुलाए

पड़े हैं सब काम
कोइलिया न बोली।'[1]

त्रिलोचन अपनी गद्य कविता में भी लयात्मकता का ध्यान रखते हैं। इसमें उनका गद्य स्थिर एवं गम्भीर लगता है। उदाहरणार्थ 'चैती' शीर्षक संग्रह में 'सारनाथ' शीर्षक गद्य कविता देखी जा सकती है जिसमें विरामों के माध्यम से कवि ने लयात्मकता की रक्षा की है।

'फूले हैं पलाश, वैजयंती, कचनार, आम- चिलबिल अब छीड़ हैं,
पीपल, शिरीष, नीम का भी यही हाल है
बांसों की पत्तियां हरियाली तज रही हैं? जल्दी ही
उन्हें अलग होना है।'[2]

त्रिलोचन जिस सफलता के साथ हिन्दी और संस्कृत के परम्परित छन्दों को अपनी रच - नाओं में, प्रयुक्त करते हैं, उसी सफलता के साथ वे विदेशी छन्दों के भी प्रयोग करने में

1- तुम्हें सौंपता हूं, पृ0 18 2- चैती, पृ0 48

सफलता प्राप्त करते हैं। 'गुलाब और बुलबुल' में तो उर्दू के शेरों और गजलों का ही प्रयोग मिलता है। विशेषता यह है कि त्रिलोचन ने इनमें हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल रंग भर दिया है। जिससे उनका विदेशीपन समाप्त हो गया है। यथा –

'मान जीवन का इत्र है अगर जीवन है फूल
बास में उसकी त्रिलोचन को तू बसाये जावे।'[1]

उपर्युक्त उद्धरण में एक भी शब्द उर्दू का नहीं है। ऐसा नहीं कि इन छन्दों में उर्दू के शब्द न आए हों। या उनका बहिष्कार किया गया हो। वे आए हैं और बड़े आदर के साथ बैठाये गये हैं किन्तु वे हिन्दी के घर में आये हैं अतः हिन्दी जनता के होकर आए हैं। अर्थात् उर्दू-फारसी के वे ही शब्द प्रयुक्त हुए हैं जो जनता जनार्दन के लोक मानस में घुल चुके हैं।

हिन्दी में त्रिलोचन ही एक ऐसे समर्थ कवि हुए हैं जिन्होंने अंग्रेजी के 'सॉनेट' छन्द का बहुत अधिक प्रयोग किया है। यहाँ तक कि हिन्दी के क्षेत्र में सानेट का नाम लेते ही त्रिलोचन स्वतः याद आ जाते हैं। ऐसा लगता है कि मानों हिन्दी के क्षेत्र में त्रिलोचन सानेट के पर्याय बन गये हैं। इन छन्दों में एक प्रकार का लचीलापन है, जो उनमें सौन्दर्य भरता है। जिस प्रकार तुलसी चौपाइयों के लिए प्रसिद्ध हैं, बिहारी दोहों के लिए और मैथिलीशरण गुप्त हरिगीतिका छन्द के लिए, घनानन्द कवित्त के लिए, रसखान सवैया छन्द के लिए, गिरधर कुण्डलियों के लिए, दीनदयाल अन्योक्तियों के लिए उसी प्रकार त्रिलोचन अपने सॉनेटों के लिए प्रसिद्ध हैं। यद्यपि हरिवंश राय 'बच्चन' और प्रभाकर माचवे ने भी सॉनेटों का प्रयोग किया है किन्तु सानेट पर एकाधिकार के कारण हिन्दी में यह छन्द त्रिलोचन का ही छन्द कहलाने लगा। इस सम्बन्ध में

1- गुलाब और बुलबुल, पृ0 87

फणीश्वर नाथ रेणु का कहना है —

"त्रिलोचन के सानेट के लिए ही मैं उसे शब्दयोगी कहता हूँ। उसके कुछ सानेट, हद-अनहद की सीमा को लांघ कर साखी, सबद, रमैनी कोटि के हो गये हैं।"[1]

यह छन्द चौदह पंक्तियों का होता है, प्रथम आठ पंक्तियाँ अष्टपदी और अन्तिम छः पंक्तियाँ षट्पदी कहलाती है/ त्रिलोचन के सॉनेट शेक्सपियर की परम्परा में आते हैं, जिनमें अन्त की दो पंक्तियाँ पृथक् न होते हुए भी पृथक् सी लगती हैं. क्योंकि इनमें पूरी कविता का उपसंहार सा सन्निहित रहता है। त्रिलोचन ने सानेट को हिन्दी के 'रोला' छन्द के मात्रिक संगीत में ढालकर .हिन्दी की लयात्मकता से मिला दिया है। इसलिए वे हिन्दी में इस छन्द के शिल्पी बन गये हैं, क्योंकि उसमें जहाँ एक ओर लयात्मकता तथा आन्तरिक तुक-सौन्दर्य है, वहीं वाक्य की भी लयात्मकता और अखण्डता बनी रहती है। यह एक ऐसा कठिन कार्य था, जिसे त्रिलोचन ने बखूबी निभाया है। यथा — "हाँ अभिमान मुझे है, किसका है, पीड़ा का,

पीड़ा की गंगा मेरे ऊपर जब आई,

असावधान नहीं था, उद्यत था, दिखलाई

दी तो झेल लिया सिर पर मैंने क्रीड़ा का

मुख देखा है दूर-दूर से।'[2]

इस छन्द के अंश में त्रिलोचन के सानेट का उपर्युक्त वैशिष्ट्य स्पष्ट है।

विम्बविधान :—

आधुनिक कविता में बिम्ब-विधान को विशेष महत्व दिया जाता है। पाश्चात्य जगत् से बिम्ब योजना का महत्व हिन्दी के क्षेत्र में आया है। बिम्ब-विधान

1- त्रिलोचन के काव्य — राजू एम0फिलिप, पृष्ठ 142

2- उस जनपद का कवि हूँ-पृ0 85

क्या है? यह एक प्रश्न है जिसके उत्तर में कहा गया है —' बिम्ब संवेदात्मक शब्द चित्र है। जो कुछ अर्थों में रूपात्मक होता है और अपने सन्दर्भ में मानवीय अनुभूतियों से सम्बन्धित होता है परन्तु साथ ही साथ पाठक में विशिष्ट काव्यात्मक भावना या आवेग को समाविष्ट करता है। यह सी0डी0 लेविस के अनुसार कहा गया है।'[1]

हिन्दी कविता में भी शुक्ल जी ने अपने ग्रन्थ 'चिन्तामणि' में बिम्बविधान पर अति बल दिया है। अतः इन्द्रियबोध के आधार पर शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध इन पांच विषयों के आधार पर पांच प्रकार के बिम्ब माने जाते हैं —

(1) श्रव्यबिम्ब

(2) दृश्य बिम्ब

(3) स्पृश्यबिम्ब

(4) आस्वाद्य बिम्ब

(5) घ्रातव्य बिम्ब

उक्त बिम्बों में त्रिलोचन ने श्रव्यबिम्ब और दृश्य बिम्ब इन दो का अधिक प्रयोग किया है। इनके उदाहरण प्रस्तुत हैं —

वर्षा

फुहार, कभी झींसी, कभी झिर्री, कभी रिमझिम
और कभी झर झर झर झर
बिजली चमकती है
चिर्री गिरती है
पेड़ पातों सभी कांपते हैं।'[2]

यहाँ पर कवि ने श्रव्य बिम्ब का अति उत्तम उदाहरण प्रस्तुत किया है। वर्षा की फुहार में जब बूंदें विरल होती है, तब झींसी की ध्वनि होती है, जब फुहार तेज

1- त्रिलोचन के काव्य — राजू एम0पिल्लेप, पृ0 15।
2- वैती, पृ0 20

होती है तब ध्वनि बढ़ जाती है, उसमें कर्कशता आ जाती है औ झिरीं की ध्वनि होती है, जब फुहार मन्द गति से लगातार पड़ती रहती है और उसमें संगीतात्मक नाद सौन्दर्य का अनुभव होने लगता है जैसे नूपुर की ध्वनि हो रही हो तब उसे रिमझिम कहते हैं और जब वर्षा का वेग बढ़कर ओज प्रधान बन जाता है तब उसे झरझर झरझर कहते हैं। जैसे झरने की झंकार होती है। फुहार की इतनी सूक्ष्मता का नाद सौन्दर्य या श्रव्य बिम्ब कितना सूक्ष्म तथा अनुभूतिमय है, इसे कहते हैं प्रकृति के प्रति कवि का एकीकृत सम्बन्ध जहाँ कवि उसकी प्रत्येक गति को ध्यान से देखता - सुनता और अनुभव करता है। इसी प्रकार चिर्रीं" शब्द ध्यान देने योग्य है। जब आकाश से बिजलीगिरने वाली होती है उसके पूर्व बाँबी के आसपास की पृथ्वी से चिर्रचिर्र शब्द करती हुई एक ध्वनि सुनायी पड़ती है जोऊपर को उठती है उसी को चिर्रीं कहते हैं। उसी की प्रतिक्रिया में आकाश से बिजली गिरती है। यहाँ पर कवि ने इस सूक्ष्म ध्वनि का कितनी बारीकी सी अनुभव किया है और उसका श्रव्य बिम्ब प्रस्तुत करके प्रकृति के प्रति अपनी सजगता सिद्ध की है।

कुकडूँ कूँ
 उठो जल्दी उठो,
महुर बीन लो ....।
चिड़िया बोली —/(सुनो सुनो)
'ठाकुर जी'।'[1]

यहाँ पर क्रमशः कोकिल और पारावत की ध्वनियों का चित्र प्रस्तुत किया गया है जो ग्रामिण जीवन से सम्बद्ध है श्रव्य बिम्ब का सुन्दर उदाहरण है —

1- अरघान, पृ0 24

दृश्य बिम्ब :—"आँख मूँदे पेट पर सिर टेक

गाय करती है पमोनी बँधी जड़ से

पेड़ की छाया खड़ी दीवार पर है।'[1]

यहाँ पर धूप में पेड़ की जड़ से बँधी हुई गाय का पूर्ण चित्र प्रस्तुत किया गया है। जैसे – कोई चित्रकार चित्र उतारता है यह कवि की चित्रात्मक शैली और दृश्य बिंब का सुन्दर उदाहरण है। कवि के दृश्य बिम्ब बड़े ही सजीव हैं। यथा —

'घोर घाम है, हवा रुकी है

सिर पर आ कर सूर्य खड़ा है

सिमट पैर पर छाँह झुकी है

भला दैव से कौन लड़ा है।'[2]

यहाँ पर धूप की तीव्रता, हवा का सन्नाटा, मध्य आकाश का सूर्य और छाँह का पैरों की सीमा में सिमट जाना यह सभी दृश्य बिम्ब के उदाहरण हैं।

'गंगा तट सूना है

गिने चुने स्नानार्थी यहाँ आते हैं

जो यहाँ सदा आते हैं

फल वाले, पटरी के दुकानदार, भाजी वाले

आज अनुपस्थित हैं

चिड़ियाँ समेटे पंख जहाँ तहाँ खड़ी हैं।[3]

यहाँ पर गंगा तट के सुनसान वातावरण का दृश्य बिम्ब अपने ढंग का अनूठा है। जिसमें सन्नाटे का शब्द चित्र उतारा गया है।

'कल देखी / बरसाती नदी /

1- अरघान, पृ0 25 2— सबका अपना आकाश, पृ0 49

3- चैती, पृ0 21

वह पेटी में सिकुड़-सिकुड़ गयी थी

वह प्रवाह कहाँ था / जिस से भय लगता था

अब जल को घेरकर पौधे उग आए थे

कहीं कहीं घास और कहीं कहीं काई थी।'[1]

यहाँ पर नदी का दृश्यबिम्ब कवि की चित्रात्मक शैली की सफलता का प्रमाण देता है।

स्पृश्य बिम्ब :— इस बिम्ब के भी अनेक उदाहरण मिल जाते हैं। यथा —

धीरे धीरे पुरवइया लहराने लगी

आज क्या तरंग आयी

घनघोर घटा छायी

तपी दुनियाँ ने आज

छाँह ठण्डी ठण्डी पायी।'[2]

"स्निग्ध श्यामघन की छाया है- ग्रीष्म पथ पर याद तुम्हारी

दूर क्लान्त यह निर्जन यात्रा

भूमि मूक उत्ताप भरी है।'[3]

"सूने राजमार्ग पर परस मिला मुझे

जरा गीला।'[4]

आस्वाद्य बिम्ब :—

'नीम के फूलों की / भरी-भरी सुगन्ध पिये

रात / मौन रहती है /

बाँसुरी की तान सुना करती है।'[5]

यहाँ पर एक ही साथ दृश्य बिम्ब आस्वाद्य बिम्ब एवं घ्रातव्य बिम्ब है।

1- नैती, पृ0 51 2— सबका अपना आकाश, पृ0 63

3- सबका अपना आकाश, पृ0 49 4— ताप के ताए दिन, पृ0 19

5- अरघान, पृ0 35

घ्रातव्य बिम्ब :—

यद्यपि इस बिम्ब का विरल ही प्रयोग हुआ है फिर भी कहीं-कहीं पर उनका भी अस्तित्व है। यथा —

' मन, लगा कल्पना की उधेड़बुन में नीरव,
रजनीगन्धा से वातावरण गमकता है।'[1]

इसी प्रकार घ्रातव्य बिम्ब का एक रूप यह भी दृष्टव्य है —

'कलियाँ जगी हैं / रस में पगी हैं /
धारा सुरभि की / बहाने लगी हैं।/
हम भी सुरभि से,/ बसा दें दिशाएँ।'[2]

इस प्रकार बिम्ब विधान की दृष्टि से भी त्रिलोचन सफल कवि है। उन्होंने सर्वाधिक मात्रा में श्रव्य बिम्ब लिखे हैं। जिन्हें नाद बिम्ब या ध्वनि चित्र भी कह सकते हैं। अंग्रेजी का ('आनोमेटोपोइया')ध्वन्यर्थ-व्यंजना अलंकार भी इन्हीं ध्वनि बिम्बों में होती है। ध्वनियों में साँ-साँ (सन्नाटे की ध्वनि) मरमर(पत्तों की ध्वनि)झरझर(झरनों की ध्वनि) हहास (अट्टहास) टर्र-टर्र (मेढक की ध्वनि)टरटों टरटों (मेढक की ध्वनि) गुन-गुन-गुन-गुन (भ्रमर की ध्वनि) रिमझिम-रिमझिम(फुहारों की ध्वनि)हा-हा-हीही (हँसी की ध्वनि) कल-कल-कल-कल(नदी की धारा की ध्वनि) हड़-हड़-भड़-भड़(ट्रेन की ध्वनि) धू-धू-धू-धू (चिताओं के जलने की ध्वनि) सन्-सन् (वायु की ध्वनि)झाँय-झाँय(दोपहर की गर्म हवा की ध्वनि) आदि ध्वनियाँ अनेक कविताओं में व्यक्त होकर कवि के ध्वनिबिम्बों का व्यापक रूप प्रस्तुत करती हैं।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि त्रिलोचन भाषा के जादूगर हैं, इन्होंने लोक-भाषा को जनभाषा समझकर उसे महत्व दियाहै,क्योंकि साहित्य में उसकी आशा की जाती है। यथा —

1- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 47
2- सबका अपना आकाश, पृ0 64

'रस जीवन का जीवन से सींचा
दिये हृदय के भाव, उपेक्षित थी जो भाषा
उसको आदर दिया मरुस्थल मन का सींचा'[1]

त्रिलोचन जन भाषा के कवि हैं अतः वे वर्तमान समय मेंजनभाषा को भी विशेष महत्व देते हैं क्यों कि शब्द कोषों की भाषा में कृत्रिमता है, भले ही उसमें सौन्दर्य अधिक हो। लेकिन हम उसे मौलिक नहीं कह सकते। मौलिक भाषा तो वह है, जो किसानों, मजदूरों और कल कारखानों में रहने वाले तथा काम करने वाले श्रमिकों के मुख से फूटती है।

यथा – 'जिनकी रह आयी है समझ बूझ से लिपटी
है घर, बाहर, खेतों और कारखानों में
जीवन के लम्बे लम्बे के पैमानों में
नपी तुली है, कटी बराबी है यों लिपटी
भाषा ले लो सजी-सजीयी बनी बनायी
मत बेवक्त बजाओ कोषों की शहनाई,'[2]

यहीं पर कवि ने लिखा है कि यदि आप की बोली कोई नहीं समझ पाता तो इसका तात्पर्य क्या है? भाषा का तो जीवन के साथ चोली-दामन का सम्बन्ध है, अतः भाषा को पहेली बनाकर नहीं रखा जा सकता और उसके साथ बहुत दिनों तक खिलवाड़ नहीं किया जा सकता। अब तो ऐसी भाषा की आवश्यकता है, जो हमारी आशा के अनुकूल हो। जो भाषा दिन-रात हमारी सहेली बनकर रहती है, हम उसका आदर क्यों न करें। वह तो क्षण-क्षण में हमारे जीवन के साथ रहती है। इस कथन से यही निष्कर्ष निकलता है कि त्रिलोचन-साहित्य में भी जनजीवन की भाषा को महत्वपूर्ण स्थान देना चाहते हैं। यही कारण है कि उनके साहित्यिक ग्रन्थों में भी लोकभाषा के शब्दों को उचित स्थान दिया गया है और 'अमोला' संग्रह तो उन्होंने अपने उपर्युक्त वक्तव्य को सिद्ध

1- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 116
2- अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ0 78

कर दिया है, और यह बता दिया है कि लोकभाषा में भी अनुभूति-प्रधान उत्तम काव्य की रचना हो सकती है। वे भाषा के विषय में उदार दृष्टिकोण रखते हैं, जहाँ संस्कृत से उनका नैष्ठिक सम्बन्ध है, वहीं लोकभाषा से उनका मातृक-सम्बन्ध है। इसी प्रकार उर्दू-फारसी, उनकी प्रगतिशीलता और अध्ययनशीलता का आश्रय पाकर उनके काव्य में उतर आयी है। अंग्रेजी के चलते-फिरते प्रयोग, जिन्हें हिन्दी लोकभाषा ने अपने अंचल में स्थान दे दिया है, उन्हें भी कवि ने यथास्थान बैठाया है। इसप्रकार की उदार - वादी दृष्टि से कवि ने भाषा में प्रगतिशीलता अपनाकर लक्ष्य की प्राप्ति की है।

उनकी शैली विविध प्रकार की है। किन्तु मुख्यतया वे वर्णनात्मक-शैली के कवि हैं। वर्ण्य विषय के चित्र उतारने में वे एक सफल चित्रकार हैं। जब गीतों में उतरते हैं, तब छायावादी-गीत धरातल में उतरते प्रतीत होते हैं। जब छन्दों का छोर छूते हैं, तब परम्परित संस्कृत छन्दों से लेकर अद्यतन छन्दों तक दौड़ लगाते हैं। उनकी इस दौड़ में 'सॉनिट' जैसा विदेशी छन्द तो उनकी लेखनी से लिपटा हुआ प्रतीत होता है। ध्वन्यात्मकता, नाद-सौन्दर्य, बिम्ब योजना, गुणात्मकता, संगीतात्मकता, आदि शैली से सम्बद्ध सभी गुण उनकी रचनाओं में स्वतः समाविष्ट हो गये हैं। अतः भाषा-शैली की दृष्टि से हम 'त्रिलोचन' को प्रगतिशील काव्यधारा की प्रथम-पंक्ति का कवि कहने में कोई संकोच नहीं कर सकते।

षष्ठ अध्याय

त्रिलोचन के काव्य में बिम्ब् तत्व

त्रिलोचन के काव्य में शिवम् तत्व

काव्य में सत्य शिव और सुन्दर इन तीनों का अस्तित्व आवश्यक होता है। सत्य के दो रूप होते हैं —(1) आवृत सत्य और (2) अनावृत सत्य। आवृत-सत्य वह है जो सुन्दर से आवेष्टित रहता है। इसलिए उसका रूप सुहावना होता है और जन-जन के आकर्षण का केन्द्र-बिन्दु बन जाता है। वह विज्ञान के सत्य की भांति रूक्ष एवं नग्न नहीं होता। जबकि अनावृत-सत्य कोरा सत्य होता है, जिसका रूप आकर्षक न होकर यथार्थ होता है। इसी यथार्थ को मधुर बनाकर प्रस्तुत करना कवि का उत्तर - दायित्व होता है।

हिन्दी-साहित्य के आदिकाल और मध्यकाल में काव्य लोकमंगल की भावना से प्रभावित रहा है और आधुनिक काल में भी लोकमंगल की भावना का समादर किया जाता है। व्यक्तिवादी रचनाओं में भले ही कवि अन्तर्मुखी हो जाये और वह केवल अपने दुःख-सुख के गीत गाने लगें या अपनी कुण्ठाओं का विस्फोट करने लगें, किन्तु जहाँ उसे ध्यान आता है कि मैं अपनी यह कविता समाज के लिए लिख रहा हूँ, वहाँ उसे यथार्थ-वादी होने पर भी लोक-पक्ष का कुछ आश्रय लेना ही पड़ता है। क्योंकि कवि स्वयं - समाज का एक प्रबुद्ध-प्राणी होता है। अतः उसे विवश होकर समाज के कष्टों, आपत्तियों और विसंगतियों से होकर गुजरना पड़ता है। और वह उनसे प्रभावित हुए बिना रह नहीं सकता। इसी प्रकार वह अपनी विवेचन शक्ति द्वारा समाज को भी प्रभावित करता है।"

अर्थात् कवि और समाज दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते हैं।"[1]

1- भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र, डा0के0डी0अवस्थी, डा0यतीन्द्र तिवारी

जहाँ तक हिन्दी के प्रगतिशील कवियों का प्रश्न है वे तो जन-जीवन को लेकर ही चलते हैं। विशेषकर त्रिलोचन तो 'धरती' के ही कवि हैं। इसलिए जन-जीवन की समस्यायें उनके हृदय में गूँजती हैं। वे वर्तमान समाज-व्यवस्था से क्षुब्ध हैं। क्योंकि पूँजीपतियों, सेठ साहूकारों, जमींदारों एवं सामन्तों के अत्याचारों से आज भी जन-जीवन प्रपीड़ित है। किसान, मजदूर तथा श्रमजीवी-वर्ग जब तक सुखी एवं समर्थ न होगा, तब तक समाज का कल्याण कैसे हो सकता है। इसी प्रकार जहाँ शासन दुःशासन बना हुआ है, वहाँ जन-जीवन को सुखी बनाने का उत्तरदायित्व कौन निभायेगा? जिस समाज में प्रजातंत्र के कारण वोटों की दुनिया में तहलका मचा दिया हो, वर्ग विद्वेष की खाई को चौड़ी कर दिया हो, त्रिलोचन उसके विरुद्ध क्रान्ति का आह्वान क्यों न करें? उनके बागी गीत अत्याचारियों और शोषकों के विरुद्ध जनता को एक जुट होने का सन्देश क्यों न दें। यही कारण है कि त्रिलोचन के काव्य में मानवता की इस भीषण दुर्दशा पर कठोर व्यंग्य किया गया है और वह अत्याचार पर विजय पाने के लिए कृत-संकल्प है। इनकी वाणी में ओज है, और बाहुओं में पुरुषार्थ है, हृदय में संकल्पशक्ति। इसलिए यह समाजवाद के स्वप्न को साकार करने के लिए उद्यत है। यही कारण है कि इनकी प्रत्येक रचना में जनजीवन बोलता है। समाज की एक-एक धड़कन अपने ही अस्तित्व का राग सुनाती है और गुनाहों के देवताओं का जबरदस्त विरोध करती हुई उन्हें समूल नष्ट करने का व्रत लेती हुई दिखलाई पड़ती है।

आइये, इस प्रकरण में त्रिलोचन के इस दुःखदर्द को समझने की चेष्टा की जाये। उनकी यथार्थवादी दृष्टि की समीक्षा की जाये और नये समाज की संरचना के लिए उनके दृढ़-संकल्प की सराहना की जाये। उन्हें इतने बड़े समाज से जूझने के लिए प्रोत्साहित किया जाये और यह देखा जाये कि उनके इन सामाजिक विचारों में कितना बल है। कितनी क्षमता है, और कितनी सत्यता।

(क) सामाजिक विचार :—

त्रिलोचन मुख्यतया प्रगतिशील कवि है। इसलिए इनके विचारों में साम्यवादी जीवन दर्शन का प्रभाव पर्याप्त मात्रा मेंविद्यमान है। वे इसी सन्दर्भ में सर्वोदय के सिद्धान्तों को भी सम्मिलित कर लेते हैं। किन्तु उनकी दृष्टि किसी वाद से बंधी हुई नहीं है। इसलिए उनका समाजवाद विदेशी नहीं अपितु भारतीय है। इसलिए उनके इन विचारों में भारतीय समाजवाद का दृश्य है। वे समाज के प्रेरक बनकर समाज को दिशा देना चाहते हैं। उसे अपना अनुकरण करने के लिए बाध्य नहीं करते —

"जो करूँ मैं वह करे संसार, यह मंशा नहीं,
काम है अपने सभी के प्रेरणा देता हूँ मैं।
जितने बाजे हैं सभी में कुछ न कुछ स्वर आयेगा,
अपनी सारंगी जो लेता हूँ बजा देता हूँ मैं।"[1]

कवि कहता है कि अभी तुम्हारी शिराओंमें रक्त का प्रवाह है। बुद्धि में ज्ञान है, तुम निर्बल नहीं हो इसलिए आलस्य का परित्याग कर के सामने आओ तुम्हें युग पुकार रहा है —

"अभी रक्त रग-रग में चलता
अभी ज्ञान का परिचय मिलता
अभी न मरण प्रिया निर्बलता
मत अलसाओ मत चुप बैठो
तुम्हें पुकार रहा है कोई।"[2]

कवि रूढ़िवादी तथा आधुनिक विकास को न मानने वाले काशी निवासी कूप-मण्डूक पंडित के विषय में व्यंग्य करता हुआ कहता है —

1- गुलाब और बुलबुल, पृ० 12
2- तुम्हें सौंपता हूँ, पृ० 33

"टर्र-टर्र कर कथी-कूप निवासी बोला
नया क्या हुआ है, कुछ हो तो नहीं, हुआ है
कौन साधना है यह धोखा और जुआ है
बोला जब मुह तथ्योद्घाटनार्थ ही खोला है।'[1]

यहाँ पर एक प्रकार से रूढ़िवादी व्यक्तियों पर ही अपना आक्रोश व्यक्त करता है क्योंकि वे समाज के नूतन विकास को स्वीकार नहीं कर पाते।

त्रिलोचन यह समझते हैं कि हमारे समाज में हम एक दूसरे के पास अवश्य है लेकिन कोई किसी की बात सुनने के लिए तैयार नहीं है क्योंकि हर व्यक्ति अपने स्वार्थ के दायरे में बन्द है –

"अपना जमाना जरा और है
कोई किसी को नहीं सुनता
तो भी हर कोई हर किसी के पास खड़ा है
हर कोई अपना आधिकता है।'[2]

त्रिलोचन जीवन के कवि हैं उस पर उनकी आस्था है इसीलिए वे सदैव जीवन के गीत गाते हैं और महाकुम्भ की भीड़ को देखकर वे उसमें भारत के मानचित्र का रूप देखकर उल्लसित होते हैं –

"जहाँ जहाँ जीवन को देखा वहाँ गा लिया,
मेरे स्वर जीवन की परिक्रमा करते हैं,
गाता जाऊँगा, गाता हूँ, अल्प गा लिया,
भूल चूक छोड़ो भी, गीत क्षमा करते हैं
महाकुम्भ में देखा मैंने मानव-कानन
मानचित्र था भारत का रेखांकित आनन।'[3]

1- अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ0 58

2- चैती, पृ0 54 3- अरधान, पृ0 42

त्रिलोचन मानव को प्यार करते हैं किन्तु शर्त यह है कि वह सही अर्थों में मानव हो मानवता को तृप्त करने वाले लोगों को वे मानव के क्षेत्र से बाहर कर देना चाहते हैं। वे फसली-ज्वर जिसे मलेरिया भी कह लें, उससे दुखित मानवता को बचाना चाहते हैं। यह फसली ज्वर सामयिक समाज व्यवस्था का विकृत रूप है। इसे ही तो बदलना है। अतः यह इससे असन्तुष्ट हैं और तब तक असन्तुष्ट रहेंगे जब तक यह भीषण समाज व्यवस्था समाप्त नहीं होगी ।

"मानव असली
मुझको प्रिय है, खड़ा खेत में है जो मोथा,
मैं उसको उखाड़ डालूँगा- ज्वर है फसली
विषम समाज व्यवस्था सम जब दिखलाएगा
तभी तभी संतोष इस हृदय में आएगा।"[1]

त्रिलोचन को साधारण मनुष्यों से बहुत प्यार है, सहानुभूति है और आत्मीयता है। वे उनकी दीन हीन दशा से बड़ी सहानुभूति रखते हैं। वे उनके अन्धविश्वासों पर कोई आक्षेप नहीं करते अपितु उनका एक अंग बनकर उन्हीं में सम्मिलित हो जाते हैं। इस तथ्य का सहज रूप देखिए —

"सतुआ और पिसान बाँधकर कुंभ नहाने
नर नारी घर पुर तज कर प्रयाग आए थे
संगम की धारा में अपने पाप बहाने
की इच्छा रखने वालों का दल लाए थे
तितली के भी पेड़ तले अगणित छाये थे
गीत नारियाँ गंगा की मइया के गाती थीं
और नरों के योग यज्ञ के फल पाए थे
× × ×

1- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 93

देखा कोटि संख्या जनता सामने पड़ी है,
गंगा यमुना की धारा के साथ अड़ी है।'[1]

हमारे समाज मेंजीवन का मूल्य ही क्या है। परिश्रम करना अपने उत्तरदायित्व की पूर्ति करना और समाज के संघर्षों से जूझना यही तो सामान्य जन जीवन की नियति बन गयी है। कवि ने सुकनी नामक एक बुढ़िया के जीवन की दुर्दशा का चित्रण करते हुए लिखा है कि —

"कोई उसके पास न पहुँचा, जा कर ताली
बजा बजा कर लड़के नित्य चिढ़ाया करते,
सिला बीनती थी, करती थी कहीं पिसौनी
तब गड्ढा भरता था, छह छह बेटे भरते
गये छोड़ते गये उसे, रह गयी पिसौनी
कम था जैसे जो कुछ दीर्घ काल तक देखा,
कैसा उसे देखना था जीवन का लेखा।"[2]

ऊपर केवल एक बुढ़िया का ही चित्र समझना चाहिए हमारे समाज में न जाने कितनी ऐसी वृद्धा मातायें हैं जो सीला बीनकर पेट भरती है। कहीं दूसरे का आटा पीसती हैं और असहाय जीवन व्यतीत करने के लिए अपने जीवन को तिल तिल कर काटती हैं। त्रिलोचन ने समाज की ऐसी ही निराश्रित तथा असहाय वृद्धा नारियों का यह दुखद चित्रण प्रस्तुत किया है।

त्रिलोचन को मानव जीवन पर आस्था है। मनुष्य ने आज जो प्रगति की है उसके पुरूषार्थ से कवि संतुष्ट है क्योंकि आज के मानव ने सर्वत्र अपनी पहुँच कर ली है। वह जहाँ पृथ्वी तल में गहरी से गहरी खानों को खोदकर मानवता की

1- अरधान, पृ0 40
2- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 95

विजय का शंखनाद करता है वहीं उसने दुर्गम से भी दुर्गम पर्वत श्रृंखलाओं पर आ आरूढ़ होकर अपने पुरुषार्थ का परिचय दिया। यहाँ तक कि असीमित आकाश भी उसके लिए दुर्गम नहीं है क्योंकि अब ग्रह नक्षत्रों की यात्रा भी उसके लिए सरल बन गयी है। अतः ऐसे संघर्षशील एवं पुरुषार्थी मानव को कहीं भी रोकना ठीक नहीं है। यदि कुंभ स्नान से उसके मन में कुछ परिवर्तन आता है तो उसको रोको मत —

"कहाँ मनुष्य नहीं पहुँचा है, पृथ्वी तल में
खान खोद कर जा पैठा दुर्गम पहाड़ियाँ
उसे सुगम हैं सारा व्योम नाप दे पल में
आने दो, यदि महाकुंभ में जन आता है,
कुछ तो अपने मन का परिवर्तन पाता है।"[1]

आज का युग अपना अपना पेट भरने का है। जिसे देखिए वही कबंध की भाँति बाँहें फैलाकर अपना पेट भरने में लगा हुआ है। इस सामाजिक व्यवस्था से कवि के चित्त में बड़ी कुढ़न है और वह व्यंग्य प्रधान यथार्थ के बाण छोड़ता हुआ समाज पर इस प्रकार बरस पड़ता है।

"यह कबंध युग है— सिर सब का पेट में धँसा
है, बाँहें आहार खोजने को जाती हैं
इधर-उधर, यों जब भी वे जो कुछ पाती हैं
उसे जकड़ जाती हैं, लीला देखकर हँसा
मैं मन ही मन, कौन नहीं इस जाल में फँसा
कहाँ मनोवांछित सुख की घड़ियाँ आती है,
अनदेखी विपदाएँ नये कहर ढाती हैं।"[2]

1- अरघान, पृ0 43

2- उस जनपद का कवि हूँ-पृ0 105

कवि ने मानव जीवन को कर्मपथ में चलते रहने का उपदेश दिया है। उनका विचार है कि इस अवसर को हाथ से नहीं जाने देना चाहिए। हाथ बाँधकर जीवन सागर को पार नहीं किया जा सकता —

'साथ चाँदी है, न सोना,
कर्म से ही बीज बोना,
खेत काया है, बना है,
और यह अवसर न खोना
हाथ बाँधे यह लहर कोई तरेगा क्या?'[1]

कवि चोट खाये हुए मानव को साहस दिलाता है और पथ में आयी हुई चोट को हल्की करके फिर आगे बढ़ने की सलाह देता है। इस प्रकार दुर्गम जीवन पथ को लाँघने के लिए कवि का यह अदम्य साहस पथिक को गहरी सहानुभूति देकर उसे चलने के लिए उसे सहानुभूतिमय बातें करता है —

"पहले देखा नहीं इसी से ठोकर खायी
तूने और गिरा मुँह के बल उठ हियाव कर
अभी सामने सारा रास्ता पड़ा हुआ है,
चमड़ा छिला, चोट काफी घुटनों को आयी
मलकर पाँव झटक दे, चल फिर नये भाव भर
मानव है तू अपने पैरों खड़ा हुआ है।'[2]

इस प्रकार जीवन पथ में चोट खाए हुए पथिक को कवि केवल सान्त्वना ही नहीं देता अपितु चोट की वेदना को दूर करने का उपाय भी सुझाता है उसे प्रोत्साहित करता है और उसको मानव होने के गौरव की याद दिलाता है।

1- तुम्हें सौंपता हूँ, पृ0 87

2- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 104

आज की सामाजिक स्थिति कितनी विषम है जिसे देखिए वही अनुकरण में लगा हुआ है। कुलीन कन्यायें भी अभिनेत्रियों की तरह आँखे चलाती हुई देखी जाती हैं और हमारे किशोर बालक अभिनेताओं के शिष्य बनते जाते हैं। इस भयंकर सामाजिक व्यवस्था से हम कहाँ पहुँचेंगे कवि इसी चिन्ता में डूबा हुआ है --

> "अनुकृति, अनुकृति, अनुकृति, स्वस्थ कृतित्व हमारा
> अनुकृति में खोया है, कहाँ नहीं छाया है,
> वस्तु सत्य किस तरह उभर कर आ पाया है
> कुल कन्याओं की आँखों में आज हमारा
> अभिनेत्री की आँखों का है, नव किशोर भी
> अभिनेताओं के चले हैं, नेताओं के
> कदम सिखाए चलते हैं, स्वर जेताओं के।"[1]

हमारे समाज में इतना वैषम्य है कि साधु-महात्मा तो माल खाते हैं और मेहनत करने वाले मजदूर बोझा ढोने पर भी मजदूरी पाने के लिए धक्के खाते-फिरते हैं साधु सन्त पैर फैलाकर सोते हैं और अनेक पूंजीपति उनके चरण-स्पर्श करते हैं। जैसे ये साधु सीधे स्वर्ग लोक से चले आ रहे हों --

> "देख कुली मजदूर वस्तु ढोकर लाते हैं
> मजदूरी के पैसे पर धक्के पाते हैं
> साधु संत सोते हैं सुखी पाँव फैलाए
> कितने ही लखपती पास उनके आते हैं
> चरण धूलि लेते हैं यही स्वर्ग से आए।"[2]

त्रिलोचन कृषक जीवन से बड़ी सहानुभूति रखते हैं क्योंकि वह आँधियों और ओलों की कब परवाह करता है। अपने खेतों में रहता है और उसकी निरायी करने में लगा रहता है। उसे रूँधता है। जिससे जंगली जानवर भी उसकी खेती को नहीं उजाड़ पाते।

1- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 112   2-- अरधान पृ0-47

"जो वह आँधी, झंझा ओलों से कब भागा
अपनी बारी में रहता है, और निरायी
करता है राढ़े, काँटोंकी कच्चा धागा
नहीं, बाढ़ काँटों की पाकर घिरी घिरायी
रख सकते हैं बेघर से भी बेघर करके।'[1]

कवि नारी जीवन पर गहरी सहानुभूति रखता है। उसने सोना नामक एक असहाय नारी का चित्र प्रस्तुत किया है जिसके सास-ससुर का देहान्त हो गया था उसके दुखी जीवन से किसी को सहानुभूति नहीं थी। हमारे जीवन में इसी प्रकार की अनेक सोनायें घुट-घुट कर जीवन ढो रही हैं इसी ओर कवि का संकेत है —

"कहाँ कि चलता हुआ पसीना थमता, पीछे
काल ने ससुर बाप और नाना के सारे
डाल-पात, जड़-मूल और यह टूटी पत्ती
लगती कहाँ काटती किस के भला सहारे
दिन के दुख, अँधेरे में पा सकी न बत्ती
धन-दौलत पर सभी दौड़ते हैं पर किस के
जी में दुखिया पर ममता है, देखा जिसके।'[2]

कवि ने देखा है कि भीषण अकाल पड़ा हुआ है किसान बेचैन है किन्तु नागरिक युवकों को इसकी क्या चिन्ता। बाप-दादों की पूँजी पर मौज उड़ाना, प्रेम और विरह के गीत गाना यही उनका काम है। खेती हो या न हो जब उनका काम चल जाता है तब खेतों में पसीना कौन बहाये? इस स्थिति पर कवि दुखी होता है और व्यंग्य बाणों की बौछार करता हुआ कहता है —

1- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 63

2- वही, पृ0 73

"जब तक ससि बाप दादों की
चलती है तब तक उसको क्या करना धरना
है क्यों मौज न करे विरह में आहें भरना
हाथ कलेजे पर रखना, मन में यादों की
माला जपते रहना खेतों की हरियाली
रहे न रहे उसे क्या उसका खाना-पीना
चल जाता है, फिर क्या, मारे कौन पसीना
अभी चैन की वंशी बजती है मतवाली।'[1]

सामाजिक दैन्य ने मनुष्यता को घर लिया है। मृत्यु होने पर भी गरीबों को लकड़ी तक नहीं प्राप्त होती। ऊपर से लोग कह देते हैं कि इसे प्रेत योनि प्राप्त हो गयी है। एक बुढ़िया की इसी दुर्दशा का चित्रण करता हुआ कवि कहता है — "बुढ़िया जब मर गयी उसे ले जाकर फेंका
अंधे कुएँ में चमारों ने थोड़ी लकड़ी
नहीं किसी ने दी उसको, वह रास्ता छेंका
लड़कों का परेत के भय ने, छकड़ा छकड़ी
आया जाया करते थे, हो गए महीनों
सुना कि बुढ़िया है अब तक जैसी की तैसी
पड़ी कुएँ में जाकर आँखों देखा, तीनों
की दुर्दशा दिखाई दी, कल्पना न वैसी
मुझको थी कि गीध, कौवे भी पास न आए
सड़ी गली भी नहीं, पड़ी थी लाश भी खुली।'[2]

कवि त्रिलोचन जीवन के शान के कवि हैं। वह हमें बताते हैं कि जो गर्व से तने रहते हैं उनसे झुको मत। जहाँ सम्मान सुरक्षित नहीं है वहाँ स्नेह बढ़ाने से लाभ

1- अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ0 75
2- वही,उस जनपद का कवि हूँ, पृ0

क्या? ईश्वर ने जिनको फूलने-फलने का अवसर दिया है अकारण उनका संहार न करो जो तुम्हारा अपकार नहीं करते तुम उनका भी अपकार न करो। यदि तुम में धरती की भाँति सहनशक्ति नहीं है तो अच्छा होगा कि तुम घर-बार का झंझट न पालो। मनुष्य के प्राण बहुमूल्य हैं इसलिए ऐसा कोई काम मत करो जिससे उनकी प्रतिष्ठा में आँच आए। जिस आचरण से नाम में धब्बा लगे, अयश हो ऐसे काम को भूलकर भी न करो। इस समाज में प्राय, सभी लोग अधिकार से डरते और बचते हैं। इसलिए लाभ प्राप्त करने के लिए अधिकार का आतंक मत फैलाओ।[1]

कवि द्वितीय विश्वयुद्ध में भाग लेकर लौटने वाले उन स्वदेशी सैनिकों के प्रति सहानुभूति रखता है किन्तु वे अल्प शिक्षित होने पर भी समाज के रोगों से परिचित हैं। वे जनता जनार्दन के सूर्य हैं और जनता के शत्रुओं का संहार कर घर लौट रहे हैं —

"हाँ अशिक्षित, अल्पशिक्षित हैं अधिक ये किंतु क्या है,
जानते हैं ये मनुष्य महान किस कारण हुआ है
ये समाज-प्रविष्ट रोगों से नहीं अनजान हैं अब
जानते हैं ये कि इनके देश इनका नाम क्या है
सूर्य है जनता उसे कोई न धोखा दे सकेगा
शत्रु जनता के मिटाने ये चले घर आ रहे हैं
आज वे संगीन कन्धों पर रखे घर आ रहे हैं।'[2]

1- जो तने रहते हैं, अच्छा है तना रह उनसे
मान हो ही न जहाँ तू वहाँ मनुहार न कर
लोग अधिकार से डरते हैं और बचते हैं
लाभ लेने के लिए तू कभी अधिकार न कर — गुलाब और बुलबुल, पृ0 39

2- तुम्हें सौंपता हूँ, पृ0 115

हमारा समाज चिन्ता ग्रस्त है उसे सुख की नींद कहाँ आती है। कवि को इस वर्तमान अशान्ति की बड़ी चिन्ता है और स्वयं ही इस सामाजिक अशान्ति में सुख की निद्रा के लिए बेचैन है।

"नींद कहाँ है, नींद कहाँ है, नींद कहाँ है,
नींद कहाँ है चिन्ताओं को हरने वाली
जीवन -ज्वर में चंदन चर्चित करने वाली
क्षिप्त- जागरण की विभीषिका खड़ी यहाँ है,
दृष्टि उठी जिस ओर उदासी पड़ी वहाँ है,
नींद कहाँ है निखिल शून्यता भरने वाली।'[1]

नींद की इसी चिन्ता में उषा का शुभागमन होने लगा है कवि के चित्त में आशा की नयी किरण निहित हो गयी है।इसलिए वह प्रभाती के गीत इस प्रकार गाने लगा —

"उषा आ रही है'
जगत जग चला है / निशा घुल चली है
घिरी दृष्टि तम से / सहज खुल चली है
नई जिन्दगी पाश मेंबंधनों से
नई चाल में आज अँगड़ा रही है।'[2]

कवि जड़ता की चार दीवारी से निकले के लिए जनता का आह्वान् करता है। वह कहता है कि तुम अवरोधों को पार करो संसार स्वागत करेगा।

'किस दुविधा में झिझक छोड़ दो, जरा कड़े हो,
आओ, अलगाने वाले अवरोध निवारें
बाहर सारा विश्व खुला है वह अगवानी
करने को तैयार खड़ा है पर यह कारा

1- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 99

2- सबका अपना आकाश, पृ0 60

तुमको रोक रही है क्या तुम रुक जाओगे
नहीं करोगे ऊँची क्या गरदन अभिमानी
बाँधोगे गंगोत्री में गंगा की धारा
क्या इन दीवारों के आगे झुक जाओगे।'[1]

त्रिलोचन जी अंधकार पर प्रकाश की विजय चाहते हैं। वे देखते हैं कि यह संसार इस समय गहन अंधकार में फंस गया है केवल अंधकार ही अंधकार दिखता है। ऐसे समय में साधारण प्रकाश क्या करेगा? ऐसे में तो चिता के प्रकाश की आवश्यकता है क्योंकि जब काली करतूत करने वाले ध्वस्त हो जायेंगे तब उनकी मृत्यु से जो प्रकाश फैलेगा वह समाज को चेतना देगा कि अत्याचारियों का एक दिन इसी प्रकार विनाश होता है। अतः इस समय चिता के प्रकाश की आवश्यकता है –

'मैं चिता का चाहता हूँ अब उजाला
बूँद जितना तिमिर सागर बन गया है,
बस उसी की लहर में जग फंस गया है
देखने को नेत्र कुछ पाते नहीं हैं
बस तिमिर है तिमिर इतना बढ़ गया है
शून्यता ने है अमित अवसाद डाला।'[2]

कवि बार-बार मानव को सजग करता है उसे सांत्वना देता है। बहाये हुए आंसुओं को पोछने के लिए सान्त्वना देता है और निरंतर कर्मपथ पर चलने का उपदेश देता है।

"यह निर्मम आघात सहो, फिर उठो संभल कर
आगे बढ़ो, तुम्हारा पथ वह देख रहा है।

1- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 97
2- तुम्हें सौंपता हूँ, पृ0 30

तुम को एकाकी आँसू आए जो बह कर

उन्हें पोंछ दो, तुम्हें दैव ललकार रहा है,

उत्तर दो, अपनी अदम्यतम तत्परता से

नीरव कर्ममयी गाथा में, इस जीवन में

एककर्म ही इन श्वासों की सस्वरता से

है अभिन्नतम शेष भिन्न है भरे भुवन में। '[1]

यद्यपि त्रिलोचन मानवतावादी कवि है। उन्हें वर्ण व्यवस्था और जाति व्यवस्था पर आस्था नहीं है। फिर भी हिन्दू समाज में रहते हैं इसलिए कबीर की भांति वे उसकी कटु आलोचना भी करते हैं क्योंकि आज का हिन्दू अपने कर्म-पथ से हट गया है — "तुम हिंदू हो? कैसे हिंदू हो? क्या जाने,

धर्म कर्म हिंदू का सब कुछ छोड़ दिया है,

पुरखों की मर्यादाओं को तोड़ दिया है,

चोटी और जनेऊ तज दी अब मनमाने

काम किया करते हो, सब भरभंड कर दिया

कुछ भी तो अपनापन होता, फरक चाहिए

हिंदू किरिस्तान में, दुश्मन को सराहिये

यदि उस में कुछ अच्छाई हो, यहाँ भर दिया। '[2]

त्रिलोचन सुल्तानपुर जनपद के कवि हैं जो आर्थिक दृष्टि से बहुत पिछड़ा हुआ है। शिक्षा और कला से स्वल्प परिचित है। कविता के विषयमें भी वह नीरस है। दुखी और असहाय जीवन उदासीनता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ है। आज की आधुनिक उन्नति से भी वह अपरिचित है। वह धर्म के नाम पर तुलसीकृत रामायण को जानता है और नारायण का जाप करना जानता है। उसका यह कथन केवल अपने जनपद के लिए नहीं अपितु भारतीय ग्रामीणों का चित्रण कहा जा

1- उस जनपद का कवि हूँ, पृ० 19

2- अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ० 81

सकता है। कवि ग्रामीण जीवन की इस दुर्दशा से क्षुब्ध है और अव्यक्त रूप से इस पिछड़े समाज को विकसित करने की इच्छा करता है। कुछ पंक्तियों में उसका यह अवसाद दर्शनीय है —

'उस जनपद का कवि हूँ जो भूखा दूखा है,
नंगा है, अनजान है, कला- नहीं जानता
कैसी होती है क्या है, वह नहीं मानता
कविता कुछ भी दे सकती है कब सूखा है
उसके जीवन का सोता, इतिहास ही बता
सकता है, वह उदासीन बिल्कुल अपने से
अपने समाज से है, दुनिया को सपने से
अलग नहीं मानता उसे कुछ भी नहीं पता।"[1]

आज की पढ़ाई पर भी कवि ने व्यंग्य किया है। यथा —

'नई पढ़ाई अजी पढ़ाई है, कुछ तोखा
नहीं कि दौड़े लूट लिया यों अनन फानन
काम हो गया, सचमुच तुम भी मियाँ त्रिलोचन
ऐसे हो कि क्या कहें, बस, जब सिर पर बोझा।"[2]

कवि ने बार-बार मनुष्यता के आदर्श को लेकर संसार के पथिक को चलते रहने के लिए प्रेरणा दी है और यह ध्यान दिलाया है कि जो तुमने लक्ष्य निर्धारित किया है उसे अन्तिम क्षण तक प्राप्त करने की चेष्टा करना है।

'बाधाओं के सम्मुख थक कर बैठ न जाना
तुम मनुष्य हो, मनुष्यता का यह बाना है,
करते ही जाएगी उसको जो ठाना है,
अंतिम क्षण तक तुमने भी तो सीना ताना।'[3]

1- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 17
2- अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ0 88
3- वही, पृ0 39

त्रिलोचन के सामाजिक विचार उदात्त से परिचालित हैं। परोपकार उनके जीवन का आदर्श है इसलिए वह ऐसे ही व्यक्तियों पर श्रद्धा रखते हैं जो लोक कल्याण के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देते हैं और जिनका प्रत्येक पग मानवता के कल्याण के लिए ही चलता है। वे ऐसे लोगों के प्रति श्रद्धावनत हैं और ऐसे ही आदर्श महामानवों के गुण गाने में उनकी वाणी उल्लसित होकर गर्व का अनुभव करती है।

'जो अपनी धुन पर न्यौछावर अपना सब कुछ कर देते हैं।
जग जीवन के लिए स्वयं को निर्भय होकर बलि कर देते हैं
जिसका कदम-कदम जीवन की जय यात्रा का प्रिय प्रतीक है
मैं सगर्व सोल्लास निरन्तर उन लोगों का गुण गाता हूँ।'[1]

कवि देखता है कि विधाता ने हमारे समाज में जिन जीवों का निर्माण किया है वे सभी नश्वर है। इसी नश्वरता के कारण संसार में निरन्तर दुख ही दुख दिखलायी पड़ता है। यदि कहीं ऐसा न होता तो विश्व सुख और सम्पत्ति से भरा-पूरा रहता। भूतल में कभी व्यथाओं की व्यापकता न होती। इस विचार को कवि ने इस प्रकार व्यक्त किया है —

'मूर्तिकार हो दक्ष विधाता किंतु तुम्हारी
गढ़ी मूर्तियाँ सब क्षयिष्णु हैं, अच्छा होता
तुमने ऐसा किया न होता, तब तो सारी
कथा और कुछ होती दुख का अक्षय सोता
नहीं दिखाई देता, विश्व कदापि न खोता
एक बार उपलब्ध सम्पदा और रंग ही
रहता कष्ट व्यथाकुल जीवन कभी न होता
भूतल, तुमने इसे न सोचा ----।'[2]

1- धरती, पृ० 108 2- अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ० 9

कवि पुराने समाज के पुराने ढाँचे को आज की परिस्थितियों के अनुकूल नहीं समझता इसलिए वह लोकहित की दृष्टि से नए संसार की रचना और विकास को आवश्यक समझता है क्योंकि पुराने संसार की पुरानी कार्यप्रणाली आज इस युग के लिए अनुपयुक्त लगती है और उसकी पृष्ठभूमि पर नया निर्माण असम्भव है इसलिए हमें ऐसा प्रयत्न करना है कि जीवन की विभीषिका समाप्त हो और विश्व के नए-नए अन्वेषक हमारे नये भारत की खोज में ढूढते हुए यहाँ आये और अपने को कृतार्थ समझे। वस्तुतः समाज को आगे ले आने का और उसे विश्व के समक्ष गौरवान्वित करने का यही लक्ष्य हमारा मुख्य लक्ष्य होना चाहिए। कवि के शब्दों में —

'नये विश्व की रचना हमको ही करनी है
इस पुराने विश्व के पुराने पाप
जीवन के पुण्य खाए जा रहे हैं
जीवन का त्रास हटे ऐसी जुगत करनी है
फिर अपने भारत की खोज में
अपना बेड़ा लेकर पहुँचेंगे किसी जगह नए लोग
कोलम्बस वही है।'[1]

त्रिलोचन ने मानवता के लिए भेद-दृष्टि का परित्याग आवश्यक समझा है। मानव-मानव को प्रेम से अपनाए। ममत्व की भावना में जीवन को विकसित करे। सबमें एक ही प्राण है और सबके ऊपर एक ही तो आकाश है। इसलिए सबको चन्द्र-ज्योत्स्ना का आनन्द लेने का अधिकार है। इसलिए सबको आज के नये विकास में आनन्द लेने के लिए जगना-जगाना चाहिए। जैसा कि मैथिलीशरण गुप्त ने भी कहा है —

1- तुम्हें सौंपता हूँ, पृ० 42

परस्परावलम्बन से उठो तथा बढ़ो सभी
मरो परन्तु यूं मरो कि याद जो करें सभी
हुई न यों सुमृत्यु तो वृथा मरे वृथा जिये
मनुष्य है वही कि जो मनुष्य के लिए मरे।'[1]

त्रिलोचन ने हमें उपाय सुझाया कि नये युग के नये विकास के लिए पहले अपनी झिझक को छोड़ो, तत्पश्चात् जो बन्धन तुम्हारे विकास में बाधक हो उनके विकट जाल को तोड़ दो और अपने मन की दुश्चिन्ताओं का परित्याग करके सम्पूर्ण समाज या मानवता के मन से अपने मन को जोड़ो जीवन से जीवन को मिला दो। कच्ची कल्पनाओं को नष्ट करो। इस प्रकार जब मनुष्य, मनुष्य से मिल जायेगा। एक की सधि दूसरे दूसरे की सधि होगी, एक का विचार दूसरे का विचार होगा, तब मानवता आलोकित हो उठेगी। कवि अपने इस समाजवाद या मानवतावाद के लक्ष्य को इस प्रकार गाता है —

'सबमें अपनेपन की माया
अपनेपन में जीवन आया
चंचल पवन प्राणमय बन्धन
व्योम सभी के ऊपर छाया
एक चांदनी का मधुलेकर
एक उषा में जगो जगाओ
झिझक छोड़ दो, जाल तोड़ दो
तज मन का जंजाल जोड़ दो
मन से मन जीवन से जीवन
कच्चे कल्पित पाश फोड़ दो

1-

सांस-सांस से लहर लहर से

और पास आओ लहराओ।'[1]

कवि दुखों का भी स्वागत करता है। दुखों की परवाह नहीं करता वह न तो आहें भर-भर कर दिन काटता है और न निराशावादी होकर घुटने टेकता है न कभी पश्चात्ताप करता है। न कभी हाय-हाय करके पलायनवादी बनता है। अपने इसी जीवन के आदर्श को वह समाज का आदर्श बनाना चाहता है इसलिए वह दर्प से कहता है कि हे चिरन्तन मित्र — तुम मेरी कितनी ही कठिन परीक्षायें क्यों न लो किन्तु मुझे ऐसा मानव बनाओ, जिससे मेरा मन भयंकर कष्टों में भी पराजित न हो —

'दुख, जब जब जब तुम आए तब मैंने स्वागत
किया तुम्हारा, नहीं निहारा मुड़ कर सुख को
छूट गया था जो पीछे उसके ही रुख को
नहीं ताकने बैठ गया था, हे अभ्यागत,
× × ×
कठिन परीक्षाएँ ले ले कर मित्र चिरंतन
मुझे मनुष्य बना दो विजित न हो मेरा मन।-[2]

समाज में हमारा एक गुरूतर उत्तरदायित्व यह है कि हम कर्मठ बनें। समाज में जो व्यक्ति किसी भी प्रकार के बोझ से दब रहा हो उसके समीप जाकर कन्धे से कन्धा लगायें और जो लोग गफलत की नींद में सोये हुए पड़े हों उन्हें जगायें और बतायें कि समय गतिशील है। तुम्हारा इस प्रकार सोना उचित नहीं है —

'देखा कहीं जो बोझ से दबते किसी को भी,
नजदीक जाके कंधे लगाया यहाँ-वहाँ

1- तुम्हें सौंपता हूँ, पृ0 40
2- अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ0 42

निश्चित पड़ के सोर किसी को कहीं देखा
जाते समय को देख जगाया यहाँ-वहाँ।'[1]

कवि कहता है कि मैं समाज में जो ध्वनियाँ उत्पन्न होती है उनको ग्रहण कर लेता हूँ और समाज के संघर्षों से बराबर लोहा लेता हूँ। समाज के निर्माण के लिए नई आशा और अभिलाषा को लेकर नवीन भाषा के माध्यम से नये-नये चित्र उभारता हूँ —'

"ध्वनिग्राहक हूँ मैं, समाज में उठने वाली
ध्वनियाँ पकड़ लिया करता हूँ। इस पर कोई
अगर चिढ़े तो उसकी बुद्धि कहीं है खोई
कहना यही पड़ेगा।
× × ×
लड़ता हुआ समाज, नई आशा अभिलाषा
नये चित्र के साथ नई देता हूँ भाषा।'[2]

कवि आधुनिक विज्ञान के चमत्कार से मानवता के विकास की आशा करता है। वह समझता है कि विज्ञान जितना जो कुछ भी कर रहा है वह मानवता की विजय यात्रा के चरण है और एक दिन ऐसा भी आयेगा जब सौरमण्डल भी मनुष्य की इस विजय यात्रा का गुणगान करेगा।

"विकल व्योम गंगा के ग्रहान्तरों में, भूतल
जैसे अब तक वायुमण्डलों में अपने ही
रूद्ध बद्ध रहता आया है फिर वैसे ही
नहीं रहेगा, मुक्त बनेगा, सारी हलचल
मानव की जो आज दृश्य है नहीं रहेगी
पृथ्वी की जयकथा सौरमण्डली कहेगी।'[3]

आज मानवता ने बड़ी उन्नति कर ली है लेकिन वह मशीनों पर कितना निर्भर

1- गुलाब और बुलबुल, पृ0 54
2- दिगन्त, पृ0 22
3- अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ0 24

होता जा रहा है यह समाज के लिए उचित नहीं क्योंकि इससे समाज में आलस्य पनपेगा और पराधीनता बढ़ जायेगी, श्रम का महत्व घट जायेगा। इसी चिन्ता से चिन्तित कवि कहता है कि सिकन्दर आदि विदेशी लुटेरे आये और हमारा बहुत कुछ लूटकर चले गये। इस समय तो शांति स्थापित करने के लिए अनेक युद्ध होते हैं। इस व्यवस्था से कवि समाज के प्रति आशंकित है कि आखिर इसका होगा क्या —

> 'समुन्नति मनु के बेटों ने बहुत की इस में क्या कहना
> मगर यह यंत्र पर ही और निर्भर होता जाता है
> सिकंदर गजनवी तैमूर तो केवल लुटेरे थे
> इधर अब शांति की इच्छा से समर होता जाता है।'[1]

कवि वर्तमान समय के नव जीवन से आश्वस्त है। वह देखता है कि नये ताल, नये स्वर, नये कण्ठों से फूटते हैं और समाज इसके लिए तैयार हो रहा है और जमाने की इसी रफ्तार को गायक लोग भी गाते हैं और स्वयं कवि भी इस नवीनता का स्वागत करता है।

> 'नये सुर ताल जीवन के चलेंगे चलते जायेंगे
> नये कण्ठों से पूरा मेल खाने वाला साज आया।'[2]

कवि देखता है कि मानव जीवन कितना संकुचित होता जाता है। एक समय था जब मानवीय प्रेम आकाश की तरह विस्तृत था। धीरे धीरे वह धरती तक सिमट गया और फिर इतना संकुचित हुआ कि वह घर की सीमा में ही बन्द हो गया। यह सोच सोच कर कवि का हृदय दर्द से भर जाता है। मन में एक विचित्र उदासी छा जाती है और वह सोचने लगता है कि मनुष्य का प्यार कितना संकुचित हो गया है। आज मानवता की यह बिगड़ती हुई स्थिति कहाँ से कहाँ तक पहुँच

1- गुलाब और बुलबुल, पृ० 102   2- वही, पृ० 104

गयी है। संवेदना के इन सुरों में कवि अपने अन्तःकरण की तलाशी लेता हुआ कहता है कि —

'कैसे, कैसे प्यार तुम्हारा इतना छोटा
हो आया, पहले पाया आकाश यही है
फिर समझा आकाश नहीं यह तो धरती है
फिर देखा यह अपना घर है जिसमें टोटा
ही टोटा है, काम चला कर कितना खोटा
लगता है हिसाब तो लेने वाला जी है
खालीपन का दर्द हो गया मन का मोटा।'[1]

समाज की दीन दशा कवि से देखी नहीं जाती वह असहाय नारी जीवन से गहरी सहानुभूति रखता है। सोना नाम की एक नारी की इसी विवशता का उसकी व्यथा का चित्रण करता हुआ कवि कहता है —

'जैसे दीवारों को खा जाती है नोना
व्यथा धैर्य को खा जाती है इससे बचना
कठिन दिखाई देता है बेचारी सोना
सोने जैसा पाक साफ थी तो भी लखना
पड़ा उसे जिससे उस का लेना देना।'[2]

कवि गरीबों, मजदूरों और निरक्षरों की विजय की आशा करता है और यह कल्पना करता है कि वे क्रान्ति का स्वर छेड़ रहे हैं। ऐसे ही लोगों की वाणी में शक्ति होती है और दुख के अन्धकार में जीवन की ज्योति प्रकाशित हुआ करती है।

'नये युग के उद्गाता
वे हैं जो निपट निरक्षर लेकिन जिनकी

1- तुम्हें सौंपता हूँ, पृ0 39

2- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 73

प्राणों की ललकार जानती कभी न रुकना
क्रान्ति उन्हीं लोगों के पास पला करती है,
दुख के तम में जीवन ज्योति जला करती है।'[1]

कवि बन्दी जीवन से ऊब चुका है वह मुक्ति के लिए छटपटाता है और सोचता है कि जनता का यह संकट इतना गम्भीर है कि उसके लिए कोई उपाय नहीं दिखता यद्यपि समाज में कुछ लोग सुखी भी है लेकिन जब तक सबको सुख न मिले तब तक मानवता की पराजय मानी जायेगी। इसी भाव को कवि के शब्दों में देखें --

'पंख फड़फड़ाती है मन में मुक्ति बिचारी
तन के बन्धन में जन-जन निरुपाय पड़ा है
भवरों में बहुजन हैं, कोई आनन्दी है,
हो आनन्द न सबका तो मानवता हारी
कोकिल का तम के गढ़ में सन्देश बढ़ाहै।'[2]

त्रिलोचन देखते हैं कि जिसे देखिये वहीं अपनी विपत्ति का रोना रोता है। जब व्यक्ति अपनी ही चिन्ता में डूबा हो तब समाज का उद्धार कैसे हो सकता है? जिसे देखिये वही नून-तेल, लकड़ी की समस्या में उलझा हुआ है तब फिर ऐसी परिस्थिति में कलाओं का विकास कैसे हो सकता है। जब सभी लोग अपनी-अपनी राह में, अपनी अपनी धुन में मस्त होकर चले जा रहे हैं तब किसके पास समय है कि दीन दुखियों की करुण पुकारों को सुने और जब कोई उत्साह दिलाने वाला व्यक्ति नहीं है तब अकेले एक व्यक्ति अपने बल पर समस्याओं के समुद्र को कैसे पार कर सकता है। इन्हीं सामाजिक चिन्ताओं से ग्रस्त होकर कवि ने लिखा है--

'बाढ़ आई है विपद की, सभीडूब रहे हैं
चिंता में अपनी फिर उबार कोई क्या करे

1- दिगन्त, पृ0 23

2- वही, पृ0 39

जब नून तेल लकड़ी समस्या हो तब हुआ
लेकर कला को कुछ निखार कोई क्या करे?
सब अपनी अपनी धुन में हैं दुनिया की राह में
करुणा की यहाँ फिर पुकार कोई क्या करे?
उत्साह बढ़ाए किसे इसका ख्याल है,
अपने ही दम से सिंधु पार कोई क्या करे?'[1]

वर्तमान समय में ऊपर से तो सब लोग समाज में शान्ति व्यवस्था करना चाहते हैं किन्तु समाज में राजनीति, कुछ दूसरी ही बात कहती है –

'लड़ने वाले या रण का संचालन करने
वाले कहा करेंगे हमें शान्ति ही प्रिय है,
कोई नहीं करेगा भूले भी हम मरने
और मारने को हैं, यों ही रण सक्रिय है
शांति कहा है यह तो केवल मुहावरा है,
परेशान क्यों हो इस में क्या अर्थ धरा है।'[2]

आज का मानव अपनी उपलब्धियों से अतृप्त है। उसके मन की कामनाएँ उत्तरोत्तर बढ़ती जाती हैं। इसी कारण अशान्ति फैली हुई है –

कितना अच्छा होता यह होता, वह होता,
लोगों की कल्पना कहाँ थकने पाती है
पर भर को भ चिर अतृप्ति जो आती है,
नहीं सूखने पाता उसका अक्षय सोता।'[3]

त्रिलोचन मानवता की रक्षा करना मानव का प्रथम कर्तव्य मानते हैं किन्तु इसके साथ ही साथ वे चाहते हैं कि मनुष्य पृथ्वी की रक्षा करें उसके उगी हुई वनस्पतियों

1- गुलाब और बुलबुल, पृ0 92
2- अरधान, पृ0 67, भोपाल 7-1-1977
3- अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ0 31

की रक्षा करें। इतना ही नहीं चिड़ियों औ जीव-जन्तुओं की रक्षा करना भी उसका कर्तव्य है। मनुष्य का यह भी कर्तव्य है कि वह जलवायु की रक्षा करें और समस्त आकाश की भी रक्षा करे क्योंकि आकाश का भी प्रदूषण बढ़ रहा है। इस प्रकार धरती से लेकर आकाश तक की रक्षा का उत्तरदायित्व इसी मानव का है।

'इस पृथ्वी की रक्षा मानव का अपना कर्तव्य है
इसकी वनस्पतियाँ, चिड़ियाँ और जीव-जन्तु
उसके सहयात्री हैं इसी तरह जलवायु और सारा आकाश
अपनी अपनी रक्षा मानव से चाहते हैं
उनकी इसी रक्षा में मानवता की भी तो रक्षा है।'[1]

कवि कहता है कि हम परतंत्रता से दुखी थे किन्तु समय आया और हम उसके जाल से बाहर निकल आये। लेकिन यदि हमें दो समय का खाना भी प्राप्त नहीं होता तो फिर स्वतंत्रता का अर्थ ही क्या? कोरी स्वतंत्रता से तो पेट नहीं भरता। जहाँ देखिए वहीं लाउडस्पीकर से नेता लोग लम्बे, चौड़े भाषणों से भोली-भाली जनता का मन भर देते हैं किन्तु वास्तव में इस शब्द-जाल से जनता को क्या लाभ? इसी गम्भीर सामाजिक-समस्या के प्रति दुखित होकर कवि कहता है —

('जिस के मारे सब दुखी थे सब के मन पर भार था
आज उस परतंत्रता से भी निकल आ ही गया
हम स्वतंत्र कहाँ अगर खाने को भी मोहताज हैं
एक जठरानल में सबको सब का काल ही आ गया
ध्वनि प्रसारण यंत्र से कितने ही स्वर बरसे हैं आज
भोले भालों के लिए शब्दों का जाल आ ही गया।'[2]

कवि सोचता है कि वह दलित मानव समाज जिसे हम बौना कहते हैं वही असन्तुष्ट

1- ताप के ताये हुए दिन, पृ0 62

2- गुलाब और बुलबुल, पृ0 98

होकर हुंकार करने लगा तो विश्व का क्रम क्या ऐसे ही चलता जायेगा? क्या सांस्कृतिक मर्यादायें परिवर्तन से बची रहेगी। सबको नयी तपस्यायें तपनी होगी इसलिए इस शोषित मानव समाज को अधिक चिढ़ाना ठीक नहीं है।

'क्या मालूम, निहाई में कितना दृढ़ता
भूमि गर्भ में जो कसमसा रही है ज्वाला,
चल घाम अकिंच हों या पर्वत माला,
कभी किसी को कब गिनती है, यदि चिढ़ता है।'
क्षुद्र मनुष्य अहंकृति हुंकृति में अपनी तो
क्या कर लेगा, विश्व यथाक्रम चला जा रहा,
संस्कृति-स्रोत इसी छाया में ढला जा रहा
सब को ही है नई तपस्यायें तपनी तो।'[1]

लोक कल्याण की सहज प्रवृत्ति में रमा हुआ कवि त्रिलोचन मानव समाज के लिए इस प्रकार सोचता है कि मैं चाहता हूँ कि मानवता का शून्य हृदय भर जाए, उसका ताप दूर कर सकूं और निःसंकोच भाव से निर्भीकता के साथ सन्मार्ग पर चलता हुआ कार्यरत रहूँ। यद्यपि संसार नश्वर है फिर भी लोक कल्याण करते हुए मर सकूँ तो अधिक अच्छा हो। संसार सागर में एक दिन अच्छे या बुरे सभी तैराक डूब जाते हैं। मुझमें इतना धैर्य हो कि मैं निर्भीकता के साथ तैर सकूँ। यद्यपि संसार नित नये सुख प्राप्त करता है फिर भी मेरी कामना है कि मैं शांति पूर्वक दूसरे के दुःख को दूर कर सकूँ। मुझमें इतनी शक्ति हो कि मैं फूल की भांति सौरभ को लुटाकर शांति से मृत्यु का वरण कर सकूँ। मेरी कामना है कि मैं न्याय के पथ पर अग्रसर रहूँ और न्याय से ही डरता हुआ न्याय को धारण किये रहूँ।

1- अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ0 100

'चाहता हूँ मैं मनुज के ताप को कुछ हर सकूँ
शून्यता उसके हृदय की हो सके तो भर सकूँ।'
× × × ×
चाहता हूँ मैं त्रिलोचन न्याय के पथ पर रहूँ
न्याय को धारण करूँ फिर न्याय से ही डर सकूँ।'[1]

त्रिलोचन नवयुग के नव-मानव का स्वागत करते हैं। वे समझते हैं यह नव-मानव दुखादि को नष्ट करने के लिए आया हुआ है। अतः बहुत दिनों तक समाज का यह उत्पीड़न और अन्याय नहीं चल सकता। मानव मात्र में मैत्री के पुष्प खिल गये हैं। इसकी सुगन्ध ने लोक में उल्लास भर दिया है —

'दुख को दंभ को, ईर्ष्या को युद्धलिप्सा को
नष्ट करने के लिए नव मनुष्य आयाहै
अब अधिक दिन नहीं अन्याय न यह उत्पीड़न
वर्ष के अंत में अंत इनका भी तो आया है
फूल मैत्री के खिले हैं सुगंध छाई है,
आज उल्लास मनुज ने नवीन पाया है।'[2]

त्रिलोचन जिस समाज में रहते हैं उसमें वे चाहते हैं कि मानव का जीवन मानवीय आदर्शों से परिपूर्ण होना चाहिए जो व्यक्ति असहाय हो उसे सहायता देना, डूबते को उबारना हमारा कर्तव्य होना चाहिए। जो व्यक्ति एकाकी हो और साथ रहकर अपनी मैत्री का परिचय दे। वास्तव में अपने सुख से तो सभी लोग सुखी होते हैं किन्तु दूसरों को सुख देखकर सुखी होने का आनन्द ही कुछ दूसरा होता है। अकेले हम कितने ही बड़े क्यों न हो जाएँ किंतु यदि समाज हमारे साथ नहीं है तो हमारा वह अस्तित्व बेकार है जैसे एकान्त में खड़ी हुई एक लम्बी बेल

1- गुलाब और बुलबुल, पृ0 124
2- वही, पृ0

मीनार किसी दिन ढह जाती है उसी प्रकार समाज के अस्तित्व को नकार कर एकाकी व्यक्ति कितना ही बड़ा क्यों न हो एक दिन वह ढह जायेगा।

'डूबता है जो बेसहारा है,
हाथ उसका नहीं गहोगे क्या
जो अकेला है संग का भूखा
साथ उसके कभी रहोगे क्या
सुख जो औरों को दे सुखी वो है,
इस का आनंद भी लहोगे क्या
व्यर्थ मीनार से बड़े बन के
तुम भी एकांत में ढहोगे क्या?'[1]

त्रिलोचन को भविष्य के प्रति चिन्ता है वह चाहते हैं कि हमारे समाज में जो भेद - भाव है वह समाप्त हो और मानवता में एकता का राग गूंज उठे। यथा —

'गाओ वही गीत कल के
प्राणों में छलके
× × ×
सुर की तरंग में, अनेक रंग, बह जाये
एक रंग रह जायें, यहाँ वहाँ चल के।'[2]

आज का मानव-मानव के लिए ही भयदायक बना हुआ है। आपस में प्रेम नहीं करता। यदि वह अपना भयावह रूपत्याग दे तो मानव मात्र में मैत्री स्थापित हो सकती है । जो लोग मानवता का पक्ष लेकर समाज में होंगे और छल के माध्यम से समाज सेवा का व्रत लिए फिरते हैं उनसे भी त्रिलोचन की प्रार्थना है कि हे - मानवता के वैद्य, ऐसा न हो आपकी दवा करते-करते कहीं रोगी ही समाप्त हो जाये और रोग बना रहे। अच्छा है कि आप रुग्ण मानवता की दवा करना

1- गुलाब और बुलबुल, पृ0 37

2- सबका अपना आकाश, पृ0 73

बन्द कर दें। इसी प्रकार परोपकारकताका ढोंग करने वाले व्यक्तियों से भी कवि निवेदन करता है कि आपके अपकार से तो संसार के प्राण खतरे में पड़ गये इसलिए अब आप अपना उपकार करें, संसार का नहीं। वे कर्तव्य पालन को विशेष महत्व देते हैं। अधिकार और कर्तव्य का अन्योन्याश्रय संबंध है यदि मनुष्य कर्तव्य नहीं निभा पाता तो उसे अधिकारों पर भी अधिकार नहीं रखना चाहिए।

'भय से मानव का हृदय प्रीति नहीं करता है
प्रीति हो जायेगी, भय का कभी संचार न कर
रोग रह जाय कहीं रोगी ही न छुट्टी ले
वैद्य मानवता के वश कर, अधिक उपचार न कर
× × × ×
अपना कर्तव्य अगर तू निभा नहीं पाता
तो यही ठीक है कोई कहीं अधिकार न कर।'[1]

हमारी समाज व्यवस्था में कुछ ऐसी कमी है जिससे समाज का ढाँचा चरमराने लगा है और स्थिति अब ऐसी आ गयी है कि धीरे-धीरे अगर यही हालत रही तो कहीं देश ही न खो जाये। आज पहले की अपेक्षा कलंकों की कालिमा अधिक बढ़ गयी है इसलिए हमारा कर्तव्य होता है कि समाज के उन धब्बों को धो डालें जो इसे मलिन बना रहे हैं —

'लोनी लगलग के कट चली दीवार
सूरत आई है घर के खोने की
कालिमा आज और ज्यादा है
अभी चेता कर इसे धोने की।'[2]

कवि चाहता है कि हमारे चारों ओर उन्नति को रोकने वाली बड़ी-बड़ी दीवारें खड़ी हैं। हम में इतना साहस नहीं कि हम मुक्ति के लिए उन्हें तोड़कर बाहर

1- गुलाब और बुलबुल, पृ0 40

2- वही, पृ0 41।

आये। हम में जड़ता के कारण ही साहस नहीं होता। आओ इन दीवारों को तोड़े —

"दीवारें, दीवारें, दीवारें, दीवारें
चारों ओर खड़ी हैं, तुम चुपचाप खड़े हो
हाथ धरे धरती पर मानो नहीं गड़े हो
मुक्ति चाहते हो तो आओ धक्के मारें
और बहा दें।'[1]

विश्व बन्धुत्व की भावना से प्रेरित होकर त्रिलोचन कहते हैं कि घरेलू बंधनों का मोह त्याग कर विश्व बन्धुत्व का नाता अपनाना चाहिए क्योंकि यह अधिक श्रेयस्कर है। यदि हमारा मन इन बंधनों से दुखित होता है तो अच्छा होगा हम उस रास्ते का ही परित्याग कर दें।

'बंधनों का मोह जल्दी छोड़ देना चाहिए,
विश्व से संबंध अपना जोड़ देना चाहिए
मन जिधर जा जा के हो जाता हो बिल्कुल निस्सहाय,
मार्ग अपना बस उधर से मोड़ देना चाहिए।'[2]

त्रिलोचन जनता के दुख दर्दों से भली भांति परिचित हैं। वे देखते हैं कि जिस प्रकार नशे में व्यस्त व्यक्ति कुछ देर के लिए अपनी पीड़ा को भूल जाता है उसी प्रकार धर्म का नशा भी व्यक्ति में क्षण भर के लिए उमंग भर लाते हैं। वह अपनी निराशा में आशा का रंग चढ़ा लेते हैं। अपनी भुखमरी और लाचारी को भुलाकर बीन बजाते हुए महाकुम्भ में स्नान करने के लिए जाते हैं —

'पावन हुआ है
अभिषेचन के लिए उमंग से भरे बीनों

1- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 97
2- गुलाब और बुलबुल, पृ0 72

के दल पर दल आते हैं। अवमानित दीनों
के जीवन प्रसून खिलते हैं। सब नर नारी
भूले हुए चले आते हैं, पथ पर दीनों
को छेड़ कर गा रहे हैं, बिसरी लाचारी।'[1]

हमारे समाज में अधिकारी जनता की कब परवाह करते हैं। महाकुंभ में यही तो स्थिति थी। पुलिस वाले अपने बड़े अधिकारियों का चापलूसी करें कि भीड़ को सभालें। यह है हमारे समाज की दुर्व्यवस्था और लाचारी, जिसे त्रिलोचन ने उजागर किया है।

'जनता का क्या, यह तो मर-मर कर जीती है
अधिकारी की ठोकर से पक्के घर ढहते हैं,
जनता रहती है कौन अमृत पाती है।
प्रभुओं की भौहें ताके या भीड़ सम्हाले
दुर्घटनाओं रोके पुलिस क्या क्या कर डाले।'[2]

कवि दीनों और असहायों के प्रति अत्यन्त संवेदनात्मक है। हमारे समाज में ऐसे भी दीन और असहाय व्यक्ति हैं कि जिनके पास रहने के लिए मकान नहीं है। ऐसे व्यक्तियों को संगीत सुनाने से क्या लाभ। उन बेचारों को तो दिन-रात का भोजन भी कठिन है –

वे भी जीते हैं जिन्हें ठौर ठिकाना भी नहीं
राह चलते हैं कहीं पांव ठिकाना भी नहीं
गीत संगीत उन्हें किसलिए सुनाते हो?
जिनको दो जून कभी मिलता है खाना भी नहीं।'[3]

समाज की इस अव्यवस्था से चिन्तित होकर कवि कहता है कि इस प्रकार के संतप्त

1- अरघान, पृ0 52
2- वही, पृ0 60
3- गुलाब और बुलबुल, पृ0 73

और पीड़ित मनुष्यों के लिए दो ही वस्तुयें उपयुक्त हैं। एक तो पवित्र प्रेम और दूसरी शीतल गोद, इससे उन्हें शांति मिलेगी। क्योंकि सच्चे प्रेम से व्यक्ति के हृदय का ताप शांत हो जाता है और शीतल बोध अर्थात् आत्मीयता से मन की जलन शीतलता में परिणत हो जाती है —

'जो जले तप-ताप से अपने त्रिलोचन उनको तो
प्रेम पावन और शीतल क्रोड़ देना चाहिए।'[1]

त्रिलोचन की दृष्टि मुख्य रूप से मानव समाज पर केन्द्रित है। वे दुखी जनता के दुख दर्द की कहानी कहते हैं। इसीलिए किसानों औ र मजदूरों पर बार-बार उनका हृदय संवेदना का लेप लगाने लगता है —

'कला रिझाने की अब तक उसने नहीं चुनी
कभी किसी दिन, सदा धूल धक्कड़ में खेला,
गया जहाँ मजदूर किसानों का मेला था।'[2]

कवि मनुष्यों को बार-बार चेतावनी देता है कि अपने स्वार्थ को अधिक न बढ़ाओ दूसरों के दुख को देखो। केवल आश्वासनों से मानव का दुख दूर होने वाला नहीं —

और जैसा कर रहे हैं, तू न कर
स्वार्थ के शीशे से भारी भू न कर
दुख नहीं है भूत कोई जान ले
और अब से मंत्र पढ़के छू न कर।'[3]

इतना ही नहीं वह कहता है कि मनुष्य वही है जिसमें मनुष्यता हो इसलिए मनुष्य को मनुष्य से नहीं चिढ़ना चाहिए उसे तो मनुष्य का सहारा बनना चाहिए।

1- गुलाब और बुलबुल, पृ0 72
2- उस जनपद का कवि हूँ, पृ0 107
3- गुलाब और बुलबुल, पृ0 76

यदि मानव-मानव के लिए फूल की तरह सौरभ दे दे फल की तरह तृप्ति दे दे मलयज की तरह आह्लाद दे दे और प्रकाश की भांति पथ प्रदर्शक बन जाय तो कहना ही क्या है? चाहिए तो यह कि बातों के कोरे आश्वासन से जनता को धोखा नहीं देना — "आदमी वह आदमीयत जिस में हो,

आदमी को देखकर थू थू न कर
बन जा संबल, फूल फल मलयज, प्रकाश,
पथिक से तूफान सा हूँ हूँ बककर
हम त्रिलोचन तुम से कहने वाले थे,
और कुछ कर बात का जादू न कर।'[1]

अपनी प्रगतिशीलता के आधार पर त्रिलोचन सामाजिक यथार्थ को विभिन्न क्षेत्रों से लेकर अपने काव्य में स्थान देते हैं। पत्थर की एक देव प्रतिमा को देखकर कवि व्यंग्य करता हुआ कहता है कि —

'हृदय हृदय भाव वसन से सजने वाले
प्रिय पाषाण, सीढ़ियाँ चढ़कर पास तुम्हारे
आया हूँ मैं / फिर भी तुमको अन्तर्यामी/
कह-कह कर गा जाते होंगे, गाने वाली
भीड़-भीड़ में क्या क्या कैसे-कैसे भोगा
भोग रहे हैं, दुख निवृत करो आगामी।'[2]

यहाँ पर मूर्ति पर आस्था रखने वाले व्यक्तियों के लिए संकेत रूप में कवि का यही कथन है कि रूढ़िवाद के कारण तुम पत्थर के देवता के पास जाते हो, व्यर्थ में उसे अन्तर्यामी कहते हैं और अन्धविश्वास करते हो कि वह तुम्हारे आगामी दुख को दूर कर सकेगा? अर्थात् इस प्रकार अन्धविश्वास मानव समाज के लिए बहुत

1- गुलाब और बुलबुल, पृ0 76

2- शब्द पृष्ठ 117

बड़ा अभिशाप है। इन्हीं रूढ़ियों के कारण ही हमारा समाज नये युग की ओर देख नहीं पाता।

कवि मानवता को आश्वासन देता है कि संसार में अनेक कष्ट हैं। मैं इस तथ्य को स्वीकार करता हूँ किन्तु यह भी कहता हूँ कि सुखों की कमी नहीं है। हम अपनी भूलों से ही दुखों को आमंत्रित करते हैं। यह माना कि परि – स्थितियोंकि विपरीत होने के कारण तुम्हें असफलता मिली किन्तु साहस कर पुनः आगे प्रयास करो। बार-बार विफलता नहीं मिलेगी।

'दुनियाँ में ताप भी है, मगर छाँह कम नहीं
क्यों ताप से अपने को हम दहते हैं बार-बार
ढहने दो उठा लेना, बना लेना फिर नया
घर भी कहीं देखा है क्या ढहते हैं बार-बार।'[1]

त्रिलोचन सबको प्रसन्न देखना चाहते हैं उनका कहना है कि तुम प्रसन्न रहोऔर दूसरों को भी प्रसन्न करो। क्योंकि स्वार्थों के सीमित दायरे में रहकर तो मनुष्यता ने पर्याप्त रूदन किया है इस लिए समय को देखते हुए दूसरों के दोषों को मत देखो। भविष्य की चिन्ता नहीं करके वर्तमान जीवन की हरियाली को देखो–

'त्रिलोचन हँस के और को हँसाओ तब तो हम मानें
यह दुनियाँ घर के घेरे में बहुत बंध-बंध के रोली है
भूल भी जाओ जमाने को भी जरा देखो
एक के दोष को दुनियाँ में भरा क्यों देखो
कल की चिन्ता न करो आज का जीवन जी लो
आँखों के आगे है उपवन अभी हरा देखो।'[2]

1- गुलाब और बुलबुल, पृ0 86

2- वही, पृ0 88-89

कवि त्रिलोचन आशावादी हैं वे संसार रूपी सरिता में तैर रहे हैं। पार पा जाने की आशा में आश्वस्त हैं। इसीलिए ये रोटी की तलाश में भूखी दुनियाँ की भूख को देखते हैं।

'दुनियाँ की नदी को मैं ढाता हूँ, हर घाट को जाकर देखा है
मन अब भी आशा थामें है, क्या जाने उतारा पा जाए
रोटी ही विजय है जीवन की, यदि भूखा हारा पा जावे'[1]

कवि देखता है कि पेट का यह चक्कर हर मानव को सता रहा है विशेष रूप से उन पूँजीपतियों को देखो वे तो इसी चिन्तन में मस्त रहते हैं कि किस प्रकार संसार की सारी सम्पत्ति मुझे मिले।

'किसी सेठ के दिल में झाँका, उसे कितनी चिन्ता रहती है
कैसे दुनियाँ का माल मटा, सारा का सारा पा जाए।'[2]

कवि मनुष्य को समझाता है कि उत्थान और पतन ये जीवन के अनिवार्य क्रम हैं। कभी सुख है तो कभी दुख, कभी लाभ है तो कभी हानि। किन्तु इनसे घबड़ाकर निराशावादी मत बनो। यदि केवल सुख ही सुख है तब भी ठीक नहीं है और यदि दुख ही दुख है तब तो ठीक है ही नहीं इसलिए दुख सुख दोनों का विनियोग आवश्यक है -

'तुमने पीपल की अपत तो देखी जी भारी हुआ
आज देखों इसकी लाली फिर प्रवाल आ ही गया
न कुछ भी धूलि धक्कड़ हो तो पथ कैसे चढ़ा जायेगा
कहा है चिकने पत्थर पर कदम जाकर फिसलता है।'[3]

1- गुलाब और बुलबुल, पृ0 96

2- वही, पृ096

3- वही, पृ0 98-99

मनुष्य को कितने ही कष्ट क्यों न सहन करने पड़े यदि उसे यहाँ रहना है तो दुर्दिन से असन्तुष्ट होकर दुखी नहीं होना चाहिए। यदि आप दिनों में परिवर्तन चाहते हैं तो आपको संसार ही बदल देना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही नहीं —

'फटकार सहे, मार सहे, जो पड़े सहे,
दुर्दिन से असन्तोष दुखी क्यों किया करें?
दुनियाँ को बदलने से ही, दिन बदलेंगे सबके
पथ दूसरा नहीं है कोई कुछ किया करे।'[1]

कवि समाज को आश्वासन देता है कि अत्याचारियों के अत्याचारों से मत डरो। एक दिन यह भी नहीं रहेगा।

'तू अत्याचारियों के अत्याचार से न डर
किसको न महाकाल सताकर चला गया।'[2]

मनुष्य को मनुष्य का स्नेह चाहिए। इसकेअतिरिक्त उसे सब कुछ प्राप्त है। दुखी व्यक्ति की बात का सुनो और यदि सुनकर नेत्र छलक पड़ते हो तो दुखी व्यक्ति के लिए इतनी ही सहानुभूति बहुत है —

'स्नेह की भूख आदमी कोहै,
स्नेह मिल जाये फिर कमी क्या है?'[3]

'कथा दुख की सुनी और सुनते सुनते आँखें भर आयीं
बहुत है यह भी दुखिया के लिए उपकार क्या होगा।'[4]

कवि का कहना है कि हमेंलक्ष्य प्राप्ति के लिए उनका आह्वाहन करना जरूरी है और यदि जीना है तो कष्ट सहन करने के लिए भी तैयार रहना होगा।

1- गुलाब और बुलबुल, पृ0 100
2- वही, पृ0 103
3- वही, पृ0 106
4- वही, पृ0 108

यदि आप चाहते हैं कि हमारा लक्ष्य प्राप्त हो जाये तो इसके लिए मनोयोग से काम करना होगा—

'लक्ष्य आयेंगे पर आह्वान भी करना होगा,
हमको जीना है तो विषपान भी करना होगा
ध्येय पाने के लिए युक्तियाँ कहाँ कम हैं
उसको पाने के लिए ध्यान भी करना होगा।'[1]

इतना ही नहीं यदि मानव को मानव होना है तो उसे दूसरों को प्यार करके उन्हें भी एहसानमन्द करना होगा। यदि तुम्हें सुख नहीं मिलता तो उसका एक उपाय है कि अपने को चिन्ताओं से मुक्त कर लो —

'बात ईश्वर ने कही यदि मनुष्य होना है
तो तुम्हें औरों से एहसान भी करना होगा
सुख त्रिलोचन तुझे मिले तो किस तरह आखिर
अपनी चिन्ता का तुझे दान भी करना होगा।'[2]

कवि कहता है कि जिसे देखिए वही अपने-अपने दुख का राग गाता है। यह संसार तो मौत का गड्ढा है जो कभी भरा नहीं।

'न पूछो यहाँ ताप की क्या कमी है,
सभी का हृदय उसमें ताया हुआ है
गढ़ा मौत का है नहीं भरने वाला
यहाँ अनगिनत का समाया हुआ है।'[3]

त्रिलोचन मनुष्य के दुख से दुखी हैं। वे कहते हैं कि —

'जो भी है आदमी गम खाएगा सही यह है
रात दिन गम ही उसे आह खाए जाता है।'[4]

1- गुलाब और बुलबुल, पृ० 119
2- वही, पृ० 119
3- वही, पृ० 123
4- वही, पृ० 125

सारांश यह है कि त्रिलोचन मानव जीवन के संत्रास, रूदन, घुटन और दुःख दर्द से सुपरिचित हैं, लेकिन वह हिम्मत नहीं हारते। वह समाज के लिए भी साहस और शौर्य पूर्वक आगे बढ़ने का आग्रह करते हैं। वे बार-बार समझाते हैं कि किसी को दुख ही दुख या सुख ही सुख नहीं मिलता। सुख दुख का एक अनिवार्य क्रम है। जैसे रात के बाद दिन और दिन के बाद रात का क्रम चलता है उसी प्रकार सुख-दुख का क्रम भी चलता रहता है। उन्हें समाज में पिछड़े हुए पीड़ित और असहाय व्यक्तियों से विशेष सहानुभूति है, इसलिए वे अधिकांश उनकी वेदनाओं को लेकर अपनी कविता को स्वर देते हैं और कभी क्रान्ति के लिए शंख - नाद करते हैं। अत्याचारियों और अन्यायी अधिकारियों के प्रति उनका रोष तीव्र हो जाता है और वे इन पर व्यंग्य-बाण की वर्षा करने से कभी नहीं चूकते। उनका सामाजिकयथार्थ जीवन के अति मान्य है, निर्भय और निःसंकोच उनकी वाणी में बल है, विचारों में दृढ़ता है और कर्तव्य के प्रति सच्ची लगन है। वे साम्यवाद पर ही आस्था रखते हैं, जिसमें सर्वोदय का भाव सन्निहित है। वे मानव को मानव ही समझते हैं और उससे प्यार करते हैं। इसीलिए वे देश और जाति के बंधन को अस्वीकार करते हुए अपने प्रगतिशील दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति करते चलते हैं। उन्हें अधिकारियों की चाटुकारिता पसन्द नहीं और न पूंजीपतियों के सामने उन्हें घुटने टेकना आता है। वे स्वाभिमान के कवि हैं और उस पर चट्टान की तरह अडिग हैं। उन्हें किसी प्रकार का भी कोई भी प्रलोभन स्वाभिमान से विचलित नहीं करसकता। वे दुखित मानवता के दुखदर्द के कवि हैं। वे उनकी पीड़ा को सुनते और समझते हैं-और उनके पीड़ित भावों को सहानुभूति के मरहम से शांत करने की चेष्टा करते हैं। यही है त्रिलोचन के काव्य का समाजवाद, जो उनकी रचनाओं में व्यक्त हुआ है। उनका यह समाजवाद पुस्तकों का पारिभाषिक समाजवाद नहीं है, अपितु जीवन के वृहत् एवं खुले हुए ग्रन्थ का अनुभूतिमय बिम्ब है, जो उन्हें आज के प्रगतिशील कवियों में मूर्धन्य स्थान पर प्रतिष्ठित कर सकता है।

—

सप्तम अध्याय

प्रगतिशील कवि एवम् त्रिलोचन

सप्तम अध्याय

प्रगतिशील कवि और त्रिलोचन

प्रगतिशील काव्य और उसका परिचय —(1935 से अब तक)

हिन्दी का प्रगतिशील काव्य कब से प्रारम्भ हुआ, इसमें अनेक विद्वानों में मतभेद है। वैसे तो प्रत्येक युग की कविता अपने पूर्ववर्ती युग की कविता से किन्हीं अर्थों में प्रगतिशील होती है। उदाहरणार्थ — हिन्दी का सन्त-साहित्य जो भक्तिकालीन साहित्य के अन्तर्गत आता है, अपने पूर्ववर्ती आदिकाल के साहित्य से प्रगतिशील है। इसमें साहित्य के अन्तर्गत इन सन्तों ने रूढ़ियों और आडम्बरों का खण्डन किया, जातिप्रथा की संकीर्णता को मिटाया और मन्दिर-मस्जिद-भावना से दूर हटकर उन्होंने अन्तः साधना पर बल दिया। इतना ही नहीं, उन्होंने भाषा के क्षेत्र में भी प्रगतिशीलता दिखलायी। इसी प्रकार रीतिकाल को घोर परम्परावादी युग कहते हैं, किन्तु भक्तिकाल, की तुलना में इसमें भी अधिक प्रगतिशीलता दिखलायी पड़ती है। काम-भावना का नग्न-प्रदर्शन भक्तिकाल की मर्यादावादी प्रवृत्ति के विरुद्ध एक प्रगतिशील दृष्टिकोण ही कहा जायेगा। इसी-प्रकार आधुनिक युग में भारतेन्दु-काल में नवजागरण क्रान्ति का आह्वाहन, स्त्री-सुधार, स्पृश्यता-आन्दोलन आदि तत्व युग की प्रगतिशीलता के ही परिचायक हैं। 'द्विवेदी-युग' में गाँधीवादी विचारधारा का जो प्रभाव काव्य में लक्षित हुआ, उसमें भी प्रगतिशीलता के तत्व विद्यमान हैं। स्त्री-शिक्षा, रूढ़ियों और सती-प्रथा आदि कुप्रथाओं का विरोध, हरिजन-समस्या, कृषक-महत्वआदि तथ्य भी युगीन प्रगति-शीलता का परिचय देते हैं।

हिन्दी के प्रगतिशील साहित्य का एक विस्तृत इतिहास है। किसी भी धारा के प्रारम्भ होने से पहले उसके कुछ पूर्व से ही परिस्थितियाँ तैयार होने

लगती है। सन् 1930 ई0 में जबसे मुंशी प्रेमचन्द के सम्पादकत्व में जागरण और 'हंस' जैसे पत्रों का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ, तभी से हिन्दी के प्रगतिशील काव्य के लिए पृष्ठभूमि तैयार होने लगी। इन पत्रोंमें साम्यवादी-विचारधारा और समाजवादी दृष्टिकोण से प्रभावित विषय-सामग्री प्रकाशित होने लगी। इस प्रकार सन् 1935 तक हिन्दी क्षेत्र में साहित्यिकपरिस्थितियाँ भी प्रगतिशील आन्दोलन के अनुकूल हो गयीं।

डा0नामवर सिंह हिन्दी की प्रगतिशील कविता का आन्दोलन 1930 से मानते हैं। बालकृष्ण शर्मा नवीन, गया प्रसाद शुक्ल सनेही 'त्रिशूल' सुमित्रानन्दन पंत, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' तथा भगवतीचरण वर्मा आदि कवियों ने साम्यवाद के स्वागत में काव्य रचना प्रारम्भ कर दी थी। निराला जी की — 'भिक्षुक' शीर्षक कविता सन् 1924 के आसपास लिखी जा चुकी थी। इसी प्रकार 'दिनकर' ने 'कस्मै देवाय' शीर्षक कविता सन् 1931 में लिखी थी। नवीन जी ने सन् 1930 के आसपास 'विप्लव गायन' शीर्षककविता लिखी थी। सन् 1934 में रामेश्वर 'करूण' ने 'करूण सतसई' शीर्षक प्रगतिशील-काव्य-रचना प्रकाशित की थी। सन् 1935 में फ्रांस के प्रगतिशील लेखक संघ से प्रभावित मुंशी प्रेमचन्द ने भारत में भी सन् 1936 ई0 में 'प्रगतिशील-लेखक-संघ' की स्थापना करवीथी।[1]

इस उल्लेख से हम यह कह सकते हैं कि सन् 1935 के एक-दशक पूर्व ही प्रगतिशील कविता की परिष्कृत पृष्ठभूमि तैयार हो चुकी थी, किन्तु 'एक सशक्त-धारा के रूप में प्रगतिशील कविता की सत्ता सन् 1936 से ही अनुभव की जाने लगी। हिन्दी के ही नहीं अधिकांश भारतीय-भाषाओं के साहित्य में भी प्रगतिशील-आन्दोलन का वास्तविक और विधिवत् आरम्भ सन् 1936 में ही होताहै।

1- हिन्दी की प्रगतिशील कविता, डा0रणजीत, पृष्ठ 148 प्रथमसंस्करण

मेरे विचार से छायावादी कवि पन्त ने सन् 1936 ई0 में 'युगान्त' शीर्षक काव्य-संग्रह लिखकर छायावादी युग का अंत घोषित कर दिया था। अतः तभी से हिन्दी की प्रगतिशीलता का जन्म मानना समीचीन लगता है। और पन्त जी को भी हिन्दी में प्रगतिवाद का जनक होने का गौरव देना चाहिए पन्त जी ने 'युगान्त' के पश्चात् 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' में अपना पूर्ण प्रगतिवादी रूप स्पष्ट किया है। उन्होंने 1938 में रूपाभ' पत्रिका द्वारा प्रगतिवाद का समर्थन और प्रचार भी किया।

डा0शिवकुमार मिश्र ने भी लिखा है कि सन् 1936 हिन्दी का ही नहीं, अन्य देशी भाषाओं की भी साहित्यिक चेतना का समस्त देश के राजनीतिक और सामाजिक जीवन का वह वर्ष है, जिसमें उसने पूर्व की मंजिल से उकता कर अथवा सामाजिक परिवेश को देखते हुए उसी में स्थिर रहना असम्भव और भावी विकास के लिए अहितकर समझकर नवीन मंजिलों की ओर प्रयाण किया है, विकास के नये द्वारों को खटखटाया है।"[1] अजय तिवारी ने भी हिन्दी में प्रगतिशील काव्य का आविर्भाव सन् 1935-36 में माना है।"[2]

प्रगतिशील काव्य का विकास :—

उपर्युक्त पृष्ठभूमि को समझ लेने के पश्चात् प्रगतिशील काव्यान्दोलन के विकास की गतिविधियों का आकलन करने के लिए डा0 रणजीत ने इसके तीन सोपान इस प्रकार माने हैं —

(क) प्रारम्भिक युग — सन् 1936 से 1947 तक
(ख) मध्ययुग — सन् 1947 से 1951 तक

1- नया हिन्दी काव्य, पृ0 3 डा0शिवकुमार मिश्र
2- नागार्जुन की कविता, पृ0 185 डा0अजय तिवारी

(ग) वर्तमान युग— सन् 1951 से अब तक।'[1]

प्रारम्भिक युग —(1936 से 1947 तक)

इस समय तक हमारे देश को औपनिवेशिक-स्वराज्य प्राप्त हो चुका था। और सभी प्रबुद्ध नेता जनता के सहयोग से राष्ट्रीय स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए संघर्षरत थे। अतः युगीन परिस्थिति के प्रभाव से इस युग की प्रगतिशील कविता, साम्राज्यवाद के विरोध में लिखी जा रही थी, जिसमें राष्ट्रीयता का स्वर समाया हुआ था। इनमें अराजकतावाद, कटु यथार्थवाद, विध्वंसवाद और यौनवाद प्रमुख थे। इस समय के कवि मध्यमवर्गीय थे और प्रगतिशीलता में चरण रख रहे थे, अतः उनमें परिपक्वता नहीं आयी थी। वैविध्य अवश्य था किन्तु सधे-हुए कवियों में सुमित्रानन्दन पन्त ही प्रमुख थे।

द्वितीय महायुद्ध के समय अन्तर्राष्ट्रीयता का स्वर प्रबल हो गया। इस समय पन्त ने 'युगान्त' 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' संग्रह प्रकाशित किये, निराला के काव्य संग्रह 'कुकुरमुत्ता' 'अणिमा' 'बेला' और 'नये पत्ते' इसी समय प्रकाशित हुए। राष्ट्रीय प्रगतिशीलता के कवि दिनकर ने भी 'रेणुका' 'हुंकार' 'सामधेनी' और 'कुरुक्षेत्र' का प्रकाशन इसी युग में कराया। 'शिवमंगल सिंह सुमन' की रचनाएँ 'जीवन का गान' और प्रलय सृजन' 'हिल्लोल' रामेश्वर शुक्ल अंचल के 'किरणबेला' और 'करील' तथा नरेन्द्रशर्मा के संग्रह 'लाल निशान' प्रभातफेरी तथा 'हंस माला' आदि रचनाएँ इसी प्रारम्भिक युग की देन हैं। इसी समय सन् 1945 में त्रिलोचन का प्रथम काव्य-संग्रह 'धरती' भी प्रकाश में आया, जो प्रगतिशील रचना का एक सुंदर ग्रन्थ है।

1- हिन्दी का प्रगतिशील कविता, पृ0 150 डा0रणजीत

(ख) मध्ययुग (1947 से 1951)

यह समय स्वतंत्रता प्राप्ति से लेकर भारतीय-गणराज्य की घोषणा तक का काल है। इसी समय 'अखिल-भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ का चतुर्थ अधिवेशन हुआ था। भयंकर आन्दोलन के उथल-पुथल वाले इस वातावरण से हिन्दी-साहित्य भी प्रभावित हुआ। जब शासन ने शोषित वर्ग का दमन किया, तब प्रगतिशील लेखक संघ पर भी दमन चक्र चला। फलतः इस समय की कविता में विद्रोही-वृत्ति प्रधान हो गयी। इसमें सामाजिक-यथार्थ और राजनीतिक-व्यंग्य विशेष लिखे गये जिससे काव्य-कला का ह्रास हुआ। इस युग की देन के रूप में नागार्जुन और रामविलास शर्मा के व्यंग्यों के अतिरिक्त केदरनाथ अग्रवाल की 'युग की गंगा' तथा कविवर शैलेन्द्र की 'न्यौता' और 'चुनौती सीरीज' संग्रह उल्लेखनीय हैं।

वर्तमानयुग (सन् 1951- अब तक)

इस युग में प्रगतिशील-कविता का तृतीय चरण प्रारम्भ होता है। हमारे शासन ने अपनी विदेशी नीति में परिवर्तन कर लिया तथा सोवियत-संघ और चीन के साथ हमारे मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित हो गये। सन् 1953 में प्रगतिशील लेखकों का पांचवां अधिवेशन हुआ, जिसमें संवेदनशील उदारतावादी मानवीय-दृष्टिकोण, विश्वशान्ति आदि उदारतावादी विचारों को लेकर काव्यरचना होने लगी। उ- उनमें शमशेर और नरेश मेहता को विशेष गौरव प्राप्त हुआ। इस युग की प्रगतिशील कविता में स्वच्छन्दतावाद और प्रयोगवाद के चुने हुए महत्वपूर्ण बिन्दु सम्मिलित थे। इसके कारण काव्य में जीवन की समग्रता के साथ ही उसकी जटिलता का चित्रण किया जाने लगा। इस युग की उपलब्धियों में नागार्जुन, केदार, शिवमंगल सिंह 'सुमन' वीरेन्द्र मिश्र, त्रिलोचन, गिरजाकुमार माथुर, मुक्तिबोध, भवानी-प्रसाद मिश्र,

दुष्यन्त कुमार और केदारनाथ सिंह की रचनाएँ विशेष महत्वपूर्ण मानी गयी हैं।

यदि प्रगतिशील काव्य के विकास को पीढ़ियों केआधार पर समझाना चाहें तो पन्त, निराला, दिनकर और नवीन को पहली पीढ़ी के अन्तर्गत ले सकते हैं। दूसरी पीढ़ी के अन्तर्गत नागार्जुन, केदार, सुमन, त्रिलोचन, शैलेन्द्र शील, रांगेयराघव, और डा0 रामविलास शर्मा को ले सकते हैं। तीसरी पीढ़ी में गिरिजाकुमार माथुर, शमशेर, मुक्तिबोध, भवानी प्रसाद मिश्र, नरेश मेहतातथा दुष्यन्त कुमार का नाम लिया जा सकता है। डा0 रणजीत ने वर्ग स्थिति के आधार पर प्रगतिशीलकवियों को चार वर्गों में विभाजित किया है। यथा —

(1) मुख्यतः मजदूर वर्ग के कवि, जैसे नागार्जुन, शैलेन्द्र, शील, सुदर्शन चक्र आदि।
(2) मुख्यत, किसान वर्ग के कवि, जैसे निराला, केदार त्रिलोचन, रामविलास आदि।
(3) निम्न मध्यम वर्ग (पेट्टी बुर्ज्वाजी) के कवि, जैसे शमशेर, नीरज, अंचल, सुमन आदि। ~~और~~
(4) राष्ट्रीय मध्यम वर्ग (नेशनल बुर्ज्वाजी) के कवि, जैसे पन्त, दिनकर और नवीन।[1]

इसी प्रकार इन्होंने सामाजिक चेतना और रूझान के आधार पर भी प्रगतिशील कवियों का वर्गीकरण किया है जो अधिक महत्वपूर्ण नहीं लगता।

सम्प्रति अनेक उदीयमान कवि प्रगतिशीलता की कोटि में आने के लिए प्रयत्नशील हैं। किन्तु जब तक उन्हें स्थायित्व नहीं मिल जाता, तब तक उन्हें शोध-प्रबन्ध की श्रेणी में नहीं लिया जा सकता। डा0 रणजीत ने "प्रगतिशील-कविता के मील पत्थर" शीर्षक संग्रह में जिन कवियों का चयन किया है, उनके नाम इस प्रकार हैं — सूर्य कान्त त्रिपाठी 'निराला', 'सुमित्रानन्दन पन्त' 'बालकृष्ण शर्मा नवीन,

---

1- हिन्दी की प्रगतिशील कविता, पृ0 157 डा0 रणजीत

दिनकर, केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, त्रिलोचन, शैलेन्द्र, शील, शिवमंगल सिंह सुमन, नीरज, वीरेन्द्र मिश्र, गंगाराम पथिक, मुक्तिबोध, गिरिजा कुमार माथुर शमशेर, भवानी प्रसाद मिश्र, नरेश मेहता, उपेन्द्रनाथ अश्क, भारतभूषण अग्रवाल, वीरेन्द्र कुमार जैन, रामदरश मिश्र, दुष्यन्त कुमार, केदारनाथ सिंह, राजीव सक्सेना, रमेशकुन्तल मेघ, शलभ श्री राम सिंह, श्यामसुन्दर घोष 'धूमिल, रणजीत, अजित-शुक्ल, विजय बहादुर सिंह, रमेशरंजक, मृत्युंजय उपाध्याय, वेणुगोपाल।

उपर्युक्त सूची के कवियों का समग्र-साहित्य प्राप्त करने में कठिनाई है। अतः उनके विषय में कुछ अधिक लिखना मेरे लिए सम्भव नहीं। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि प्रगतिशील काव्यधारा के इन उदीयमान कवियों से बहुत कुछ आशा की जा सकती है, कि वे युग-बोध को ध्यान में रखते हुए समाज को ऐसा स्वस्थ-काव्य प्रदान करेंगे जिससे समाज को ही नहीं; अपितु काव्य-जगत को भी गौरव प्राप्त होगा।

प्रगतिशील-काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ और विशेषताएँ :-

हिन्दी के प्रगतिशील काव्य की निम्नलिखित प्रवृत्तियाँ एवं विशेषताएँ मानी जाती हैं -

(1) सामाजिक-विषमता की अभिव्यंजना

(2) मानव-जीवन और प्रकृति का सम्बन्ध

(3) प्रेम का यथार्थवादी रूप

(4) जनजागरण

(5) क्रान्ति का स्वर

(6) राष्ट्रीयता

(7) व्यंग्यात्मकता

(8) संवेदनशीलता

(9) राजनीतिक-अव्यवस्था

(10) रूढ़ियों तथा अंधविश्वासों का विरोध

(11) संकल्पनिष्ठा

(12) शोषितों और उपेक्षितों के प्रति सहानुभूति

(13) समसामयिक चिन्तन

(14) श्रद्धांजलि एवं नमनशीलता

(15) मानवतावाद

(16) स्वस्थ प्रेम का चित्रण

सामाजिक विषमता की अभिव्यंजना :—

इसके अन्तर्गत प्रगतिशील कवियों ने ग्रामीण जीवन की दुर्दशाओं का व्यापक चित्रण किया है। वहाँ का कृषक किस प्रकार शोषण का शिकार है, इसका भी व्यापक उल्लेख किया गया है। इन कवियों ने नागरिक जीवन की विषमताओं की ओर अधिक संकेत किया है। उसकी सुख सुविधाओं की ओर कम। पूँजीपति उनके आक्रोश के सहज विषय रहे हैं। उन लोगों ने भ्रष्टाचार को बढ़ाने में क्या-क्या नहीं किया, इन सभी बातों का चित्रण करने में प्रगतिशील कवि अग्रसर रहे हैं। साम्प्रदायिकता, बेकारी, वर्ग संघर्ष, आर्थिक दैन्य, आंचलिक यथार्थ और लोक संस्कृति के साथ ही देश की स्थिति पर भी विचार किया गया है। इतना ही नहीं इन लोगों ने महत्वपूर्ण राष्ट्रीय एवं अन्तराष्ट्रीय घटनाओं के विषय में भी अपनी लेखनी चलायी है।

(2) मानवजीवन और प्रकृति का सम्बन्ध :—

सभी प्रगतिशील कवियों ने प्रकृति को जीवन से जोड़कर चित्रित करने का प्रयास किया है। उन्होंने ऋतुवर्णन में वर्षा, शरद् और वसन्त पर बड़ी सरसता के साथ अपनी लेखनी चलायी है, किन्तु ~~जीवन~~ जीवन को साथ लेकर। जिससे लगता है कि इन कवियों ने भी प्रकृति को जीवन की चिरसहचरी मानकर उसका चित्रण किया है। उन्होंने ग्रीष्म, हेमन्त और शिशिर की भी उपेक्षा नहीं की।

यह बात दूसरी है कि अपेक्षाकृत इसका चित्रण कम हुआ है। इनकी प्रकृति में लोक संस्कृति बोलती है, कुण्ठा का कहीं नाम नहीं है। नदी, समुद्र, प्रकृति, प्रभात, मध्यान्ह सन्ध्या, वन्यपशु, वन, रंग-बिरंगे पक्षी तथा कृषि के रंगों में रंगकर इन कवियों ने प्रकृति को देखा है और जीवन संघर्षों के परिपार्श्व में भी प्रकृति को अपनाया है।

इस प्रकार प्रगतिशील कविता में प्रकृति ग्राम्य-जीवन से अधिक सम्बद्ध है। वह जीवन संघर्ष की प्रेरका शक्ति है। इन कवियों की दृष्टि प्रकृति के सामान्य धरातल तक गयी है। कभी आम की बौरों पर, कभी महुए के पेड़ पर, कभी सुंदर धूप पर, कभी ईंखों के खेत पर, कभी खेतों के सुनहरे अंचल पर कभी फूली हुई सरसों पर, प्रकृति के विभिन्न रूप देखने को मिलते हैं। डा० रणजीत के शब्दों में —' प्रगतिशील कविता के प्रकृति चित्रण की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि प्रकृति का स्वस्थ कुण्ठानाशक प्रेरक और पवित्र रूप ही उसमें अधिक अंकित हुआ है।'[1]

डा० हरिचरण शर्मा ने ग्राम्य-प्रकृति-चित्रण में प्रथम नाम 'त्रिलोचन' का लिया है। यथा —"ग्राम्य-प्रकृति के चित्र तो प्रायः सभी ने उतारे हैं। त्रिलोचन, केदार, सुमन और नागार्जुन सभी के प्रकृतिचित्र आकर्षक, मादक और मोहक हैं।"[2]

(2) प्रेम का यथार्थवादी रूप :—

प्रकृतिवादी कवियों ने प्रेम के स्वस्थ रूप का उल्लेख किया है, जो प्रणय की परिधि तक पहुंच गया है। यद्यपि वे अंग-सौन्दर्य का भी चित्रण करते हैं किन्तु अभद्रता की श्रेणी तक नहीं जाते। उनके रूप-चित्रण में भी लिप्सा तो है, किन्तु अमर्यादा नहीं। इसमें इन कवियों ने प्रेम के प्रगतिशील रूप को ही संवारा है, जिसके कारण प्रेमी व्यक्ति कर्मठता से विमुख नहीं होने पाया। उसका प्रेम वात्सल्य

1- हिन्दी की प्रगतिशील कविता, पृ० 285 डा० रणजीत
2- नये प्रतिनिधि कवि, पृ० 54 डा० हरिचरण शर्मा

[illegible] आदि भावों की ओर भी दृष्टि रखता है। पारिवारिक प्रेम के अतिरिक्त वह व्यापक होता हुआ देश प्रेम और राष्ट्रीयता को स्पर्श करता है और विश्वप्रेम तक पहुंच कर अखण्ड मानवतावाद पर विश्राम करता है। इस प्रकार प्रगतिशील कविता में प्रेम का बड़ा ही स्वस्थ, सक्षम और उदात्त रूप चित्रित किया गया है। जिसमें संकीर्णता नाम की कोई वस्तु नहीं है। इस प्रकार प्रगतिशील कविता का प्रेम सामाजिक सन्दर्भों से संपृक्त है।

जनजागरण :—

प्रगतिशील कवियों ने अपने काव्य के माध्यम से जनजागरण का उत्तरदायित्व निभाया है। वे अपनी रचनाओं द्वारा सोयी हुई जनता में अन्याय के विरुद्ध जागृत होकर संघर्ष के लिए उन्हें तैयार करते हैं। उनमें आशा और विश्वास का स्वर भरते हुए साहस और शौर्य का संचार करते हैं। वे जनमानस की संकीर्णता को समाप्त करके उन्हें प्रगति करने के लिए उत्प्रेरित करते हैं।

क्रान्ति का स्वर :—

प्रगतिशील कवियों ने वर्तमान समाज की कुरीतियों को दिखला कर नये समाज की संरचना के लिए क्रान्ति का स्वर अलापा है और यह दिखलाया है कि जब तक हम संगठित होकर एक साथ प्रयास नहीं करेंगे, तब तक नये समाज की रचना नहीं हो सकती। यदि वर्गहीन समाज की रचना करनी है तो इसके लिए वैचारिक क्रान्ति आवश्यक है। यही कारण है कि इन सभी कवियों ने छद्मवेशी राजनीतिज्ञों, पाखण्डियों और भ्रष्टाचारियों का डटकर विरोध किया है।

राष्ट्रीयता :— यद्यपि प्रगतिशील कवियों ने मानवतावाद का पक्ष लेते हुए राष्ट्रीयता को भी संकुचित माना है किन्तु यत्र-तत्र भारतीय जनवाद से प्रभावित होकर वे देशप्रेम और राष्ट्रीयता की भी कविताएँ लिखते हैं।

व्यंग्यात्मकता :—

प्रगतिशील कविता की प्रमुख विशेषता उसकी व्यंग्यात्मकता है। इस क्षेत्र में नागार्जुन सर्वाधिक सफल कवि माने जाते हैं। प्रगतिशील कवियों के व्यंग्य बड़े ही सटीक, पैने और धारदार होते हैं। वे कभी स्वार्थी राजनेताओं पर, कभी प्रशासन पर तो कभी पूँजीपतियों पर अथवा सामाजिक रूढ़ियों पर करारा व्यंग्य करते हैं।

संवेदनशीलता :— प्रगतिशील कवि जहाँ पर मानवता की दुर्दशा देखते हैं अन्याय या उत्पीड़न देखते हैं, वहाँ उनकी संवेदनशीलता पूरी तरह सजग हो जाती है। उदाहरणार्थ — कवि त्रिलोचन 'सुकनी' नाम की एक बुढ़िया की दुर्दशा को देखकर अत्यधिक द्रवित हो गये हैं। इसी प्रकार अपने गाँव चिरानीपट्टी में निरीह ग्रामीणों के ऊपर जमींदारों द्वारा किये गये अत्याचार से उनका संवेदनात्मक कवि सजग होकर अत्याचारियों पर क्षुब्ध हो जाता है।

राजनीतिक अव्यवस्था :—

जहाँ पर प्रगतिशील कवि देखता है कि राजनीति के कुचक्र के कारण मानवता का शोषण हो रहा है, वहाँ निर्भीक होकर उसका चित्रण करता है। यही कारण है कि नागार्जुन ने जनता के दुखदर्दों को देखकर लिखा है —

'कहीं बाढ़ भूचाल, कहीं पर कहीं अकाल कहीं बीमारी
महँगाई का क्या नजीर दूँ, मानो द्रुपदसुता की सारी
भूखों मरो चबाओ पत्ती, मगर अन्न का नाम न लेना।
कहीं न तुम भी पकड़े जाओ, कहीं सफाई पड़े न देना।'[1]

इसी प्रकार प्रजातंत्र की दुर्नीति, नेताओं के भोगविलास और राजनीतिक अन्याय के विरुद्ध अनेक कवियों ने अपनी लेखनी चलायी।

रूढ़ियों तथा अंधविश्वासों का विरोध :— सभी प्रगतिशील कवियों ने समाज में प्रचलित धार्मिक आडम्बरों के प्रति विद्रोह व्यक्त किया है। वे ईश्वर जैसी सत्ता को

1- नये प्रतिनिधि कवि, पृ० 21 हरिचरण शर्मा

स्वीकार नहीं करते। साम्प्रदायिकता, से घृणा करते हैं। वे रीतिरिवाज जो मानव मानव के बीच में भेद उत्पन्न करते हैं वे उनका खण्डन करते हैं। वे धर्म और समाज द्वारा खड़ी की गयी उन दीवारों को तोड़ देने के लिए जनजागरण करते हैं। त्रिलोचन के शब्दों में —

'दीवारें दीवारें दीवारें दीवारें —
चारों ओर खड़ी हैं। तुम चुपचाप खड़े हो
हाथ धरे छाती है, मानो वहीं गड़े हो
मुक्ति चाहते हो तो आओ धक्के मारें
और ढहा दें, उद्यम करते कभी न हारें।'[1]

संकल्पनिष्ठा :— प्रगतिशील कवि आस्था और संकल्प के स्वरों में बोलते हैं। उपेक्षितों और पीड़ितों के विश्वास बनकर प्रस्तुत होने वाले इन कवियों में आस्था के साथ संकल्प के स्वर गूंजते दिखलायी पड़ते हैं। यथा —

'लो मशाल, घर-घर को आलोकित कर दो
सन्त बनो, प्रजा, प्रपञ्च के मध्य
शान्ति को सर्व मंगला हो जाने दो।'[2]

नागार्जुन की इन पंक्तियों में आस्था और संकल्प का स्वर कितना स्पष्ट है।

शोषितों और उपेक्षितों के प्रति सहानुभूति :—

सभी प्रगतिशील कवियों में शोषितों और पीड़ितों के दुख दर्द पर गहरी सहानुभूति है। वे उन पर होने वाले अत्याचार को सहन नहीं कर सकते। यथा —

'वे लोहा पीट रहे हैं
तुम मन को पीट रहे हो
वे पत्थर जोड़ रहे हैं
तुम सपने जोड़ रहे हो

1- नये प्रतिनिधि कवि, पृ० 21 हरिचरण शर्मा

2- त्रिलोचन प्रतिनिधि कवितायें पृ० 75 (उस जनपद का कवि हूँ) राजकमलप्रकाशन 1985

उनकी घुटन ठहाकों में घुलती है

और तुम्हारी घुटन?

उनींदी घड़ियों में चुरती है?[1]

<u>समसामयिक चिन्तन :—</u>

प्रगतिशील कवि अपने सामयिक प्रभाव से प्रभावित होते हैं। देश समाज और जाति की परिस्थितियों से वे आंखें नहीं बन्द कर लेते अपितु बड़ी सजगता और तन्मयता के साथ उनका चित्रण करते हैं। सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक राष्ट्रीय औरअन्तर्राष्ट्रीय सभी गतिविधियों से परिचित रहते हैं। उदाहरणार्थ — महंगाई के विषय में नागार्जुन कहते हैं —

'पैटन टैंक उन्होंने तोड़े

महंगाई के टैंक कौन तोड़ेगा।'[2]

इस प्रकार भ्रष्टाचार अवसरवादिता, पुलिस छात्र संघर्ष आदि के चित्रण में येकवि बड़े ही जागरूक हैं। जिस समय चीन नेभारत पर आक्रमण कर दिया उस समय हिन्दी चीनी भाई-भाई' का नारा लगाने वाले व्यक्तियों पर भी कवियों ने आक्रोश व्यक्त किया है।

<u>श्रद्धांजलि एवं नमनशीलता :—</u> प्रगतिशील कवियों ने अनेक महापुरुषों एवं प्रख्यात साहित्यकारों पर श्रद्धांजलि पूर्ण कविताएँ लिखी है। रवीन्द्रनाथ टैगोर, महात्मा गांधी, जयप्रकाश नारायण, कालिदास तुलसी कबीर आदि महापुरुष इनकी श्रद्धा के विषय रहे हैं। कालिदास के विषय में नागार्जुन की कविता सुप्रसिद्ध है। डा० प्रभाकर माचवे द्वारा सम्पादित नागार्जुन शीर्षक ग्रन्थ में कविता संख्या 25 कालिदास के विषय में इसी प्रकार कविता संख्या 33 में गांधी महत्ता, कविता संख्या 37

1- आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि, 14—नागार्जुन(डा०प्रभाकरमाचवे)पृ०66

2- नये प्रतिनिधि कवि, डा०हरिचरण शर्मा, पृ० 3।

लुमुम्बा, कविता संख्या 38 में लाल बहादुर शास्त्री, कविता संख्या 39 में शैलेन्द्र के प्रति लिखी गयी कविताएँ इसी तथ्य का उदाहरण है। इसी प्रकार त्रिलोचन ने गाँधी जी के प्रति, कवि शमशेर बहादुर सिंह के प्रति भावभीनी कविताएँ लिखी हैं। केदारनाथ अग्रवाल पर नागार्जुन की निम्नलिखित कविता में जितनी तन्मयता और भावुकता है सम्भवतः इस प्रकार की अन्य कविताओं में न मिल सके। यथा—

'केन कूल की काली मिट्टी वह भी तुम हो
कालिंजर का चौड़ा सीना वह भी तुम हो
ग्राम-वधू की दबी हुई कजरारी चितवन वह भी तुम हो
कुपित कृषक की टेढ़ी भौंहे वह भी तुम हो
खड़ी सुनहली फसलों की छवि छटा निराली वह भी तुम हो
लाठी लेकर कालरात्रि में करता जो उनकी रखवाली वह भी तुम हो।'[1]

<u>मानवतावाद</u> :— प्रगतिशील कवि मानवतावाद के पुजारी हैं। त्रिलोचन ने तो अनेक संग्रहों में मानवता को प्रधानता दी है। नागार्जुन भी मानव को सर्वाधिक महत्व देते हैं। वे अशान्तिप्रिय देशों से घृणा करते हैं। उनका कहना है कि श्रम से शांति मिलती है और शांति से मानवता पुष्ट होती है। नागार्जुन के शब्दों में —

'युद्धकांक्षी मानवाभास पागल पिशाच दस बीस पचास
जिनके गलितकुष्ट के मारे घुटा जा रहा मानवता का श्वास।'[2]

त्रिलोचन भी संसार में मनुष्य को सर्वोपरि मानते हुए मन्तव्य पथ पर चलने का आदेश देते हुए कहते हैं —

फिर चलो बस अपनी दिशा न चूको जग में
मानुष सब के ऊपर है चाहे जिस मग में।'[3]

1- नये प्रतिनिधि कवि, डा० हरिचरण शर्मा, पृ० 36
2- वही, पृ० 37
3- अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ० 28

स्वस्थ प्रेम का चित्रण :—

प्रगतिशील कवियों ने स्वस्थ प्रेम का सरस चित्रण प्रस्तुत किया है। इन्होंने दाम्पत्य जीवन के प्रेम को विशेष महत्व दिया है। इस क्षेत्र में त्रिलोचन के स्वस्थ प्रेम का चित्रण उल्लेखनीय है —

'मेरी दुर्बलता को हर कर
नयी शक्ति नव साहस भर कर
तुमने फिर उत्साह दिलाया
कर्मक्षेत्र में बढ़ूँ सँभल कर
तब से मैं अविरल बढ़ता हूँ
बल देता है प्यार तुम्हारा।'[1]

इन कवियों का प्रेम निराशा और कुण्ठा के क्षणों में भी स्वस्थ रहता है और जीवन के प्रति आस्था बनाये रखता है। उसमें रहस्यात्मकता का जाल नहीं होता अपितु श्रद्धा और पवित्रता रहती है। उसमें जाति-पाँति का बन्धन नहीं होता और वह एक गम्भीर साहचर्य सेउत्पन्न होता है। छायावादी प्रेम कीभाँति उसमें निराशा और कोरी वेदना नहीं होती। प्रगतिशील प्रेम प्रणय से लेकर मानव प्रेम तक की परिधि पर पहुँचता है।

संक्षेप में हिन्दी के प्रगतिशील काव्य की यही मुख्य प्रवृत्तियाँ है, जिनके आधार पर पाठक प्रगतिशील कविता के प्रतिपाद्य विषय को भलीभाँति समझ सकता है। पन्त से लेकर अद्यतन युग के नागार्जुन, त्रिलोचन, केदार शिवमंगल सिंह सुमन, गिरिजाकुमार माथुर आदि सभी में न्यूनाधिक रूप में उक्त प्रवृत्तियों के दर्शन होते हैं। इतना अवश्य है कि इन मुख्य-प्रवृत्तियों के अतिरिक्त हर कविता का अपना-अपना पृथक् वैशिष्ट्य है। उदाहरणार्थ — नागार्जुन अपनी व्यंग्य परक कविताओं के के लिए सर्वाधिक प्रसिद्ध है, त्रिलोचन ग्राम्य-जीवन की प्रखर-अनुभूतियों के लिए

1- धरती, पृ0 99, त्रिलोचन

विख्यात हैं, शिवमंगल सिंह 'सुमन' में देश-प्रेम का ओजस्वी स्वर विद्यमान है, और प्रकृति-चित्रण के क्षेत्र में त्रिलोचन और केदार सुप्रसिद्ध हैं।

प्रगतिशील कवियों में त्रिलोचन का स्थान

आज हिन्दी के प्रगतिशील कवियों की एक विस्तृत परम्परा दिखलायी देती है, किन्तु प्रगतिशील-चेतना को सच्चे अर्थों में रचनात्मक रूप प्रदान करने वाले कवियों में नागार्जुन, शिवमंगल सिंह सुमन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन शास्त्री, डा0 रामविलास शर्मा, रांगेयराघव और गिरिजाकुमार माथुर का नाम विशेष रूप से लिया जाता है। इसी बात कोएक आलोचक ने इन शब्दों में लिखा है —"आधुनिक काव्य में प्रगतिशील चेतना को सही और रचनात्मक रूप प्रदान करने वाले कवियों में "नागार्जुन' का नाम विशेष गौरव के साथ लिया जा सकता है। वे नवचेतना के वाहक कवि के रूप में विख्यात है, प्रगतिवादी कविता में जो अन्य-कवि उनके समानधर्मा माने जा सकते हैं, उनमें रामविलास शर्मा, केदारनाथ अग्रवाल शिवमंगल सिंह सुमन, रांगेय राघव और त्रिलोचन शास्त्री के नाम विशेषोल्लेख्य हैं।[1]

वस्तुतः प्रगतिशील-काव्य में इन कवियों की महत्वपूर्ण देन है। इन सभी कवियों ने वर्तमान सामाजिक-व्यवस्था पर गहरा असन्तोष ही नहीं व्यक्त किया, अपितु समाज को परिवर्तित करके आधुनिक परिस्थितियों के अनुकूल उसे नये साँचे में ढालने का रचनात्मक संकल्प भी किया है। इन सबने आशा और विश्वास के साथ जीवन जीने की भावना व्यक्त की है तथा आस्था और निर्माण के प्रति अपनी गहरी अभिरुचि व्यक्त की है। केवल समाज पर ही नहीं, अपितु प्रशासन के ऊपर भी इन लोगों की पैनी दृष्टि रही है। इनमें नवीन जीवन-मूल्यों की स्थापना का

1- नये प्रतिनिधि कवि' डा0हरिचरण शर्मा, पृ0 5। स01984

स्वर बोलता है। सभी ने ईश्वर और धर्म के प्रति अपना विरोध व्यक्त करते हुए मानवतावाद की प्रतिष्ठा की है। वे इस दृष्टि से विश्वजनीन मानव को एक ही समझते हैं और देश-प्रेम तथा राष्ट्रीयता पर भी अपनी भावनाएँ व्यक्त करते हैं। सभी कवियों का दृष्टिकोण यथार्थवादी रहा है। सबने किसानों, मजदूरों, श्रमिकों एवं शोषितों के प्रति अपनी गहरी सहानुभूति व्यक्त की है। सबने जन-जागरण के गीत गाये हैं और समसामयिक परिस्थितियों से अपने को जोड़ने का प्रयास किया है। इस प्रकार युग-निरूपण के साथ ही साथ प्रकृति-निरूपण पर भी इनकी सजग दृष्टि रही है।

सामान्यतया यह प्रगतिशील काव्य तीन धाराओं में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम धारा में उन कविताओं को स्थान दिया जा सकता है जो जीवन की विसंगतियों के साथ-साथ सामाजिक विषमता, राजनीतिक अव्यवस्था और धार्मिक-अंधविश्वासों में बंधी हुई जीवन-धारा के यथार्थ-चित्र प्रस्तुत करती है। द्वितीय धारा में वे कविताएँ आती हैं, जिनमें रागात्मक संवेदना मुखर होती हुई सौन्दर्यानुभूति को वाणी देती है। तृतीय धारा में वे रचनाएँ आती हैं जो आशा और विश्वास के स्वरों में सोयी हुई जनशक्ति के जागरण में योग देती हुई प्रचारात्मक भूमिका का निरूपण करती हैं।

हमारे 'त्रिलोचन' के समस्त-काव्य-संग्रहों का गम्भीरता से विवेचन करने पर यह सिद्ध होता है कि उनमें प्रगतिशीलता के उक्त सभी तत्व और विशेषताएँ पर्याप्त-मात्रा में उपलब्ध हैं। इस दृष्टि से वे नागार्जुन के पश्चात् स्थान पाने के अधिकारी हैं। इनके विषयमें सुप्रसिद्ध कवि श्री केदारनाथ सिंह ने अपना मन्तव्य इस प्रकार व्यक्त किया है —

"त्रिलोचन का काव्य-व्यक्तित्व लगभग पचास वर्षों के लम्बे काल-विस्तार में फैला हुआ है। परन्तु यह तथ्य कि वे हमारे समय के एक अत्यन्त महत्वपूर्ण

कवि है — लगभग एक अद्वितीय कवि — अभी पिछले कुछ वर्षों में उभरकर सामने आया है और उनके प्रत्येक नये काव्य संकलन के साथ और गहरा तथा पुष्ट होता गया है। इसका एक बहुत सीधा और स्थूल कारण तो यह है कि उनकी बहुत सी महत्वपूर्ण काव्यकृतियाँ पिछले पाँच-छः वर्षों में ही पाठकों के सामने आयी हैं।"[1]

त्रिलोचन का ग्रामीण-जीवन के प्रति सहज एवं अविभाज्य सम्बन्ध है। ग्रामीण जीवन का ऐसा सजग दृष्टा कवि प्रगतिशील काव्यधारा में कोई नहीं है। यहाँ तक कि केदारनाथ अग्रवाल भी इतनी गहराई के साथ ग्रामीण-जीवन के सुख-दुख का प्रभावपूर्ण चित्र नहीं उपस्थित कर सकते, जितना कि त्रिलोचन ने किया है। यही कारण है कि प्रगतिशील काव्य के सर्वश्रेष्ठ कवि नागार्जुन जी ने उन्हें 'ग्रामात्मा' कहा है।"[2]

इसका तात्पर्य यह है कि नागार्जुन ग्रामीण-जीवन की अनुभूतियों के श्रेष्ठतम कवि त्रिलोचन को मानते हैं, अन्यथा वे यह उपनाम 'केदार' को देते, किन्तु वास्तविकता यही है कि केदार का ग्राम्य-चित्रण सुना-सुनाया है, वहाँ बसकर अनुभूतिजन्य नहीं, जबकि त्रिलोचन ग्राम्य-जीवन के अनुभूतिमय कवि हैं, उन्होंने वहाँ बसकर ग्रामीण-जीवन की पीड़ा, अन्याय, शोषण और प्रपीड़न, को साक्षात् देखा, सुना और अनुभव किया है। वे कृषक-जीवन की सुख-सम्पदा, कृषि-सौन्दर्य से बार-बार अभिभूत हुए हैं और पूरे उत्साह के साथ अपनी उन अनुभूतियों को काव्य में व्यक्त करने में सफल हुए हैं। इसी प्रकार ग्रामीण-जीवन की प्राकृतिक-छटा का अंकन करने में अन्य कवियों की भाँति उन्होंने कोरी कल्पना से ही काम नहीं चलाया बल्कि प्रकृति के विविध रूपों को स्वयं ही अपने अनुभव का विषय बनाया है और उसके प्रत्येक रूप में वर्षों तक रमे रहे, जैसा कि उनके वैयक्तिक-जीवन के अध्ययन से सिद्ध होता

1- त्रिलोचन 'प्रतिनिधि कविताएँ', राजकमल पेपरबैक्स में प्रकाशित, भूमिका, पृ05

2- विवरणिका, मध्यप्रदेश हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, पृ04 जून 1981

है। अतः मेरे विचार से भी त्रिलोचन को 'ग्रामात्मा' कहना सर्वथा समुचित प्रतीत होताहै। सच्ची प्रगतिशीलता की यही तो पहचान है कि जिसमें लोक-जीवन का हर रंग बोलता हो, लोकजीवन की प्रत्येक धड़कन सुनायी पड़ती हो, लोक का कोना-कोना अपने वास्तविक रूप में स्पष्ट दिख रहा हो। इस दृष्टि से त्रिलोचन का काव्यबड़ा ही सुंदर रोचक और आकर्षक लगता है। उनकी अमोला' शीर्षक रचना लोकजीवन का सच्चा दर्पण है। ऐसा कोई समर्थ कवि नहीं है, जिसने लोकजीवन पर आधारित लोक-भाषा में निबद्ध इतना सुन्दर, सहज और व्यापक-ग्रन्थ रचकर अपनी प्रगतिशीलता का प्रमाण दिया हो। एक आलोचक ने प्रगतिशील कविता में त्रिलोचन का स्थान निर्धारित करते हुए कहा है —" हिन्दी की आधुनिक प्रगतिशील-काव्य कविता में त्रिलोचन का स्थान अत्यधिक महत्वपूर्ण है।"[1]

प्रसिद्ध कवि शमशेर बहादुर सिंह भी त्रिलोचन की महत्ता बतलाते हुए लिखते हैं —"त्रिलोचन खड़ी बोली की हिन्दी-भाषा और साहित्यिक-अभिव्यक्ति के आधुनिक इतिहास में एक बड़ी महत्वपूर्ण कड़ी बनकर आते हैं।"[2]

वस्तुतः त्रिलोचन के कवित्व से अनेक प्रगतिशील कवि और लेखक विशेष प्रभावित हैं। डा0 रामविलास के शब्दों में —"त्रिलोचन कवि हैं, बहुत लोक-प्रिय नहींहैं किन्तु कुछ लोग जो विद्वान् और साहित्य-प्रेमी हैं, उनकी कविताएँ बहुत पसन्द करते हैं।"[3]

स्वर्गीय फणीश्वर नाथ 'रेणु' ने त्रिलोचन के विषय में एक विचित्र-बात जनायी है, जो इस प्रकार है —

"वह क्या चीज है जिसे त्रिलोचन में
जोड़ दें तो वह शमशेर हो जाता है
ऐसी क्या चीज है जिसे त्रिलोचन से घटा
दिया जाये तो वह नागार्जुन हो जाता है।"[4]

1- त्रिलोचन 'प्रतिनिधि कविताएँ' आवरण पृष्ठ पर मुद्रित टिप्पणी,
2- स्थापना, पृ0 83 3- वही, पृ085 4- वन तुलसी की गंध, पृ059 फणीश्वर,

इस पहेली को समझने के लिए मेरा मस्तिष्क यह कहता है कि त्रिलोचन में यत्र-तत्र शास्त्रीयता का आवरण है यदि इसको हटा दिया जाये तो वह नागार्जुन के समकक्ष हो सकते हैं, इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि रेणु जी की दृष्टि में नागार्जुन के पश्चात् त्रिलोचन को स्थान मिल सकता है। इसी प्रकार त्रिलोचन ने अत्यन्त सूक्ष्म-इन्द्रिय-बोध की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया। यदि वे इस स्वप्न-लोक की ओर बढ़ जाते तो 'शमशेर' हो सकते थे। जैसा कि एक आलोचक ने शमशेर के विषय में लिखा है —"शमशेर के यहाँ अत्यन्त सूक्ष्म इन्द्रिय-बोध का संसार फैलता हुआ दिखता है। उनकी अनुभूतियों का धरातल ऐसा है, जहाँ शब्द-स्पर्श, रूप, गंध आदि एक दूसरे में रूपान्तरित होते हैं। इससे उनके काव्य का प्रभाव बहुत कुछ स्वप्नलोग या छायालोक जैसा पड़ता है। यहाँ से रहस्यवाद की दुनियाँ अधिक दूर नहीं है। शमशेर इस रहस्यवाद के क्षेत्र में भी थोड़ी दूर विचरण कर आते हैं, लेकिन रमते हैं अपने इसी संसार में ---। इसलिए उनका झुकाव प्रतीकात्मकता की दिशा में है।"[1]

उक्त पहेली की इतनी लम्बी-व्याख्या से यह स्पष्ट हुआ कि त्रिलोचन में सूक्ष्म-इन्द्रियबोध का आधिक्य नहीं है और न वे रहस्यवाद की दिशा में जाना चाहते हैं। सम्भवतः उनके शास्त्रीय मन को इस दिशा तक बढ़ने की इच्छा न रही हो। मेरे विचार से यदि त्रिलोचन 'शमशेर' बन जाते तो कवित्व की दृष्टि से उनमें ह्रास उत्पन्न हो जाता। अतः इस उद्धरण से यह स्पष्ट हुआ कि 'त्रिलोचन' शमशेर से आगे हैं और नागार्जुन से इसलिए पीछे हैं कि उनकी अधिकांश रचनाओं में भाषा का स्तरीय रूप विद्यमान है। यदि वे लोकजीवन की सामान्य भाषा लिखते, तो नागार्जुन हो सकते थे। कुछ भी हो, मेरे विचार से त्रिलोचन का अध्ययन इतना

1- नागार्जुन की कविता, पृ0 15। डा0अजय तिवारी

प्रगाढ़ रहा है कि वे अपनी भाषा के स्तर में जितने सहज हो सकते थे, उतने अवश्य हुए हैं। 'अमोला' में उनका वह सहज रूप विद्यमान है जो सम्भवतः नागार्जुन में भी नहीं है। किन्तु इतनी सहजता उनकी अन्य कृतियोंमें नहीं है। अस्तु रेणु जी की दृष्टि में त्रिलोचन, नागार्जुन के समकक्ष द्वितीय स्थान के अधिकारी सिद्ध होते हैं।

रेणु जी एक अन्य स्थल पर त्रिलोचन के विषय में कहते हैं —
"कवि नहीं हो सका, यह कसक सदा कलेजे को सालती रहेगी और अगर कहीं कवि हो जाता तो 'त्रिलोचन' नहीं हो पाने का मलाल जीवन भर रहता।"[1]

इसका तात्पर्य यह है कि एक उच्चकोटि का उपन्यासकार भी त्रिलोचन के कवित्व से दूर-दूर तक प्रभावित है। उसके हृदय में न तो नागार्जुन बनने की, न केदार बनने की, न सुमन बनने की आकांक्षा रही, अपितु त्रिलोचन न बनने की अतृप्ति बनी रही। इससे यह स्पष्ट है कि रेणु जी त्रिलोचन को किन्हीं क्षेत्रों में नागार्जुन से भी अधिक उत्कृष्ट समझते हैं। वस्तुस्थिति स्पष्ट है कि यदि नागार्जुन में तीव्र व्यंग्यात्मकता न होती, तो 'त्रिलोचन' उनसे आगे बढ़ जाते; क्योंकि भाषा, छन्दविधान आदि साहित्यिक उपादानों में वे नागार्जुन से बहुत आगे बढ़ गये हैं। त्रिलोचन की विशेषताओं की ओर इंगित करते हुए केदारनाथ सिंह कहते हैं —"लगभग यह मान लिया गया है कि त्रिलोचन एक अत्यन्त सहज-सरल-कवि हैं- बहुत कुछ अपने व्यक्तित्व की तरह ही ... वस्तुतः त्रिलोचन एक समग्र-चेतना के कवि हैं, जिनके अनुभव का एक छोर यदि 'चम्पा काले-काले अक्षर नहीं चीन्हती' जैसी कविता की बहुस्तरीय बनावट में है[2]" इस कथन का यही निष्कर्ष निकलता है कि त्रिलोचन में समग्र चेतना व्याप्त है। वह अपनी कविता को सरलतम रूप भी दे सकते हैं और उसे उच्चस्तरीय भी बना सकते हैं। उनके अन्दर ऐसी कवित्वप्रतिभा

1- फणीश्वर नाथ रेणु, अपने त्रिलोचन, स्थापना 7 पृ0 23
2- त्रिलोचन प्रतिनिधि कविताएँ, पृ0 6

है, जिसके द्वारा वे जीवन और कला के विविध आयामोंको एक साथ छू सकते हैं और अपने संस्पर्श से उसमें एक नया प्रकाश भर सकते हैं।'

प्रगतिशील कवियों में त्रिलोचन का स्थान निर्धारित करना कोई विशेष कठिन बात नहीं है। प्रेमचन्द जी ने 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ के अध्यक्ष पद से भाषण करते हुए प्रगतिशीलता कीकसौटी इस प्रकार व्यक्त की थी - "हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा, जिसमें चिन्तन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौन्दर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो - जो हममें गति, संघर्ष और बेचैनी पैदा करे, सुलाये नहीं, क्योंकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है।"[1]

प्रेमचन्द जी की यह कसौटी सच्ची प्रगतिशीलता की पहचान कराती है। इसके आधार पर विचार करने पर त्रिलोचन का स्थान निर्धारितकरने में हमें बड़ी सहायता मिलेगी।

(1) उच्च चिन्तन :- प्रगतिशील कवियों ने उच्च चिन्तन की ऊँचाइयों का अधिक स्पर्श नहीं किया है। नागार्जुन में लोक जीवन की ऊँचाइयाँ हैं किन्तु जीवन बहुत व्यापकहै। उतनी व्यापकता उनमें भी नहीं है किन्तु जीवन के प्रति बौद्धदर्शन के दुखवाद का संस्कार भले ही हो किन्तु जीवन में आशावाद की ओज और उसका चिंतन त्रिलोचन में अपेक्षाकृत अधिक है। मैं मानती हूँ कि नागार्जुन सामाजिक एवं राजनी - तिक व्यंग्य में त्रिलोचन से आगे हैं जैसा कि प्रभाकर माचवे ने लिखा है —" जब नागार्जुन कानाम हिन्दी कविता के इतिहास में लिया जायेगा तब उनकी सामाजिक - राजनैतिक व्यंग्य रचना के लिए वे याद किये जायेंगे।"[2] किन्तु त्रिलोचन में जीवन के विविध पक्षों की प्रबल अनुभूतियाँहैं। जैसा कि उनकी रचनाओं का गहन अनुशीलन

1- हिन्दी साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, पृ0 545-46 डा0कृष्णराय

2- नागार्जुन, पृ0 7 सं0प्रभाकर माचवे।

करने से स्पष्ट होता है। चिन्तन के क्षेत्र में उन्होंने जीवन का कोना-कोना छान डाला है। उनमेंमानव-जीवन का संघर्ष, प्रकृति का भव्य-सौन्दर्य, जीवन के सुख-दुख, भारतीय कृषक का जीवन-दर्शन, इन सभी में उनका चिन्तन गहराइयों तक पहुँच गया है। जैसा कि केदारनाथ सिंह ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है —

"प्रकृति और जीवन के प्रति यह किसान-सुलभ-दृष्टि त्रिलोचन की एक ऐसी विशेषता है जो सिर्फ उनकीअलग पहचान ही नहीं बनाती, बल्कि उनकी विश्व दृष्टि को समझने की कुंजी भी हमें देती है। त्रिलोचन की सहज, सरल सी प्रतीत होने वाली कविताओं को भी यदि ध्यान से देखा जाये तो उनकी तह मेंअनुभव की कई पर्तें खुलती दिखलायी पड़ेगी।"[1]

इसके अतिरिक्त उनका 'शब्द' शीर्षक संग्रह चिन्तन का मानदण्ड है।इसमें काव्यदर्शन की चिन्तन-प्रधान-पंक्तियाँ मिलती हैं। यथा —

'शब्दकार इन शब्दों में जीवन होता है
ये भी चलते फिरते और बात करते हैं
तोष-रोष जब जैसे भावों से भरते हैं
तब वैसे हीअर्थों का व्यंजन होता है
सम्मत शब्द अर्थ से अनुरंजन होता है।'[2]

त्रिलोचन ने चिन्तन किया है कि कोई व्यक्ति कवि क्यों होता है? कवि और काव्य एक कैसेहो जाते हैं। वह अपने ही गीतों में उस गाई जाने वाली सुन्दरता का चिन्तन करता है। वह अनाहतऔर आहत शब्दों में से आहत को लेकर क्यों चलता है। काव्य लक्षणों के बारे में उनका सूक्ष्म चिन्तन इतना गम्भीर है कि इतना चिन्तन अन्य किसी प्रगतिशील कवि ने नहींकिया है। यथा —

1- त्रिलोचन, प्रतिनिधि कविताएँ, पृ0 6-7 राजकमल प्रकाशन, 1985
2- शब्द, पृ0 32 त्रिलोचन

'शब्दों से ही वर्ण गन्ध का काम लिया है
मैंने शब्दों को असहाय नहीं पाया है।'[1]

इस प्रकार चिन्तन के क्षेत्र में नागार्जुन, केदार, सुमन आदि सभी इतनी सूक्ष्मता तक नहीं पहुंच सके। चाहे लोकचिन्तन हो या अध्यात्म चिन्तन, सर्वत्र त्रिलोचन हमें सर्वोपरि दिखते हैं।

स्वाधीनता का भाव :—

स्वाधीनता का भाव त्रिलोचन में कम नहीं है। 'तुम्हें सौंपता हूं' शीर्षक संग्रह में उनके देशप्रेम और राष्ट्रीयता से सम्बन्धित अनेक कविताएं विद्यमान हैं जिनका यथा स्थान उल्लेख किया जा चुका है। इस दृष्टि से डा० शिवमंगल सिंह सुमन कुछ अधिक ऊंचे हैं उनमें राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय गतिविधियों के अतिरिक्त लोक कल्याण की भावना भी विद्यमान है। डा० कृष्णराज हंस के शब्दों में — "डा० शिवमंगल सिंह सुमन का दृष्टिकोण बहुत व्यापक है उन्होंने राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं का सदैव ध्यान रखा है। काव्य रचना करते समय उन्हें सदा लोक कल्याण का ध्यान रहता है।"[2] एक अन्य आलोचक ने भी लिखा है कि — "त्रिलोचन मुक्तिकामना जनित उल्लास से भर उठते हैं।"[3] किन्तु इतना ही नहीं है। उल्लास से आगे बढ़कर यह भी है — वे देश की युवा शक्ति का आह्वाहन करते हैं और क्रान्ति करने का दृढ़ संकल्प लेकर आगे बढ़ते हैं और जब तक वर्तमान व्यवस्था को परिवर्तित नहीकर देते तब तक संघर्षरत रहते हैं। अतः स्वाधीनता के भाव में भी त्रिलोचन किसी प्रगतिशील कवि से कम नहीं लगते।

सौन्दर्य-सृजन :— त्रिलोचन जहां जीवन सौन्दर्य को देखने के लिए उत्साही हैं। वहां उनमें पवित्रता एवं उदात्त भावना का समावेश रहता है। मानव सौन्दर्य से लेकर प्रकृति सौन्दर्य तक उनकी व्यापक दृष्टि है। यद्यपि सौन्दर्य की यह दृष्टि

1- शब्द, पृ0 44 त्रिलोचन, 2- हिन्दी साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, पृ0549

3- नये प्रतिनिधि कवि — डा0 हरिचरण शर्मा, पृ0 52

केदार में भी है किन्तु वे कहीं कहीं अश्लीलता की श्रेणी तक पहुँच गये हैं। एक आलोचक का यह कथन कि -"त्रिलोचन की दृष्टि में प्रेम जीवन का एक सन्दर्भ है, सर्वस्व नहीं।'[1] यह कथन पूर्णतया सत्य नहीं है। इतना अवश्य है कि उनका प्रेम दाम्पत्य जीवन की गहराइयों में अधिक रम गया है।जहाँ स्वस्थ जीवन दृष्टि और आत्म विश्वास का स्रोत उमड़ता है। वे व्यापक सौन्दर्य के पक्षधर हैं किन्तु धरती को छोड़कर नहीं। उनके काव्यों में सौन्दर्य चेतना का विस्तार कल्पित नहीं है अपितु अनुभूतिजन्य है। अतः वे अपने समानधर्मा कवियों में अग्रगण्य हैं। क्योंकि उनमें नागार्जुन के सौन्दर्यबोध की भाँति शालीनता, पवित्रता एवं गुरुता विद्यमान है। इतना अवश्य है कि नागार्जुन का सौन्दर्य जीवन की विषमताओं में उलझ गया है और त्रिलोचन इन विषमताओं से संघर्ष करते हुए उदात्त सौन्दर्य को चित्रित करने में सफल हो गये हैं। जहाँ तक प्राकृतिक सौन्दर्य का प्रश्न है उसमें तो वे केदार, सुमन और नागार्जुन से भी आगे बढ़ गये हैं।

<u>सृजनात्मकता :—</u> वैसे तो सभी प्रगतिशील कवियों में सृजन के प्रतिनया उत्साह, नवीन चेतना और नवगति दिखलायी पड़ती है। इसमें केदार की छटपटाहट, नागार्जुन का प्रबल आक्रोश और सुमन का असंतोष उल्लेखनीय है किन्तु त्रिलोचन में सृजन में अपनी गहरी आस्था व्यक्त की है। वे पराजय से निराश नहीहोते हैं। बार-बार उठकर नये उत्साह और नयी उमंग कोलेकर जन-जीवन के साथ मिलकर अधिक तीव्रता के साथ सृजन का बिगुल बजाते हैं।

<u>जीवन की सच्चाइयों का प्रकाशन :—</u>

सभी प्रगतिशील कवियों ने जीवन की सच्चाइयों को यथार्थपरक दृष्टि से चित्रित किया है। इस क्षेत्र में नागार्जुन सर्वोपरि दिखलायी पड़ते हैं।इनके व्यंग्य की प्रखरता त्रिलोचन से कहीं अधिक है। इतना अवश्य है कि त्रिलोचन जीवन

1- नये प्रतिनिधि कवि —डा0 हरिचरण शर्मा, पृ0 54

की सच्चाइयों का चित्रण करने में केदार और सुमन से कुछ आगे हैं। इसका सबसे बड़ा कारण उनकी अनुभूतियाँ हैं। इनका जीवन संघर्ष और उनकी मायावरी वृत्ति जिससे वे जीवन की सच्चाइयों को विविध आयाम दे सकें अतः इस दृष्टि से मैं उन्हें नागार्जुन के पश्चात् द्वितीय स्थान का अधिकारी समझती हूँ।

इस प्रकार मुंशी प्रेमचन्द की प्रगतिशीलता के मापदण्ड के अनुसार त्रिलोचन को नागार्जुन के पश्चात् द्वितीय स्थान दिया जा सकता है। केदार उनके समकक्ष कई दृष्टियों से पिछड़ जाते हैं। त्रिलोचन के समान न तो इनका चिन्तन पक्ष है और न ही व्यापक अनुभूतिपक्ष। जहाँ तक ग्रामीण जीवन की अभिव्यक्ति का प्रश्न है उसमें भी त्रिलोचन अधिक खरे हैं। त्रिलोचन की तुलना में केदार का ग्रामीण चित्रण कुछ काल्पनिक लगता है उन्होंने त्रिलोचन की भांति ग्राम में बसकर वहाँ के भयंकर संघर्ष को नहीं देखा और न ही प्रकृति के विभिन्न रूपों का स्वयं साक्षात्कार किया है। त्रिलोचन ने तो ग्रामीण जीवन की विषमताओं को स्वयं भोगा है, वहाँ के सुख दुखों का स्वयं अनुभव किया है, इसलिए वे इस क्षेत्र में भी केदार से बहुत आगे हैं।

जहाँ तक शिवमंगल सिंह सुमन का प्रश्न है उन्हें नागरिक जीवन का अनुभव भले ही हो किन्तु ग्राम्य जीवन के अनुभवों से अपरिचित हैं। यही बात रांगेय राघव में भी लागू होती है। अस्तु इतना अवश्य है कि जब त्रिलोचन ने पूँजीपतियों और शोषितों के प्रति अधिक आक्रोश व्यक्त नहीं किया है जबकि नागार्जुन ने अत्यधिक क्षुब्ध होकर पूँजीवाद के प्रति तीव्र आक्रोश व्यक्त किया है। इस क्षेत्र में शिव मंगल सिंह सुमन, डा० रामविलास शर्मा और रांगेय राघव त्रिलोचन से कुछ आगे दिखलायी पड़ते हैं। उनमें निर्भीकता, आक्रोश और क्षोभ सभी प्रगतिशील कवियों से अधिक है। रांगेय राघव दलितों के प्रति सहानुभूति मात्र रखते हैं। डा० रामविलास शर्मा श्रमिकों के मुक्ति की बात कहते हैं।

'त्रिलोचन की काव्य कला के विषय में एक अन्य आलोचक का मत है कि "उसके काव्य की चेतना सही मायने में भारतीय जनता की चेतना है। आरो-

पित क्रान्ति की लफ्फाजी नहीं। यह यथार्थवादी है, हवा में पैंग नहीं भरता। यथार्थ के सही रूप को विविध सामाजिक अन्तर्विरोधों के बावजूद पकड़ने में वह कुशल है।"[1]

त्रिलोचन शास्त्री की कविता के विषय में अवधनारायण त्रिपाठी का यह मत भी अवलोकनीय है —"त्रिलोचन की कविता में व्यक्तिगत अनुभूतियों और वैयक्तिकत चेतना की जो अभिव्यक्ति हुई है वह समग्र दर्शन का परिणाम है और यह विशेषता त्रिलोचन शास्त्री को नयी कविता से उसके स्वस्थ स्तर पर जोड़ता भी है।"[2]

इनकी अपर विशेषता यह है कि वे अपनी कविता के माध्यम से सामाजिक यथार्थ और मानसिक यथार्थ को युगपत अभिव्यक्ति देने में समर्थ है। इस अभिव्यक्ति में लाक्षणिकता के प्रयोग और सामान्य सत्य के विशेषीकरण का प्रयास सहायक सिद्ध हुए हैं। यह विशेषता त्रिलोचन की कविता को एक विशिष्ट कोटि में पहुँचा देती है।

त्रिलोचन के चिन्तन पक्ष के विषय में मैं समझती हूँ कि उन्होंने अपने मानस में जिस आध्यात्मिक जगत् की सृष्टि की है, जिस भावभूमि को संवारा है, जिस नवीन चेतना को उत्पन्न किया है वह आश्चर्यजनक बात है। प्रगतिशील कवियों में इतना सम्पन्न कवि सम्भवतः कोई नहीं। उनके स्वावलम्बी व्यक्तित्व के विषय में आलोचकों का मत है कि वे अनन्त आकाश में अपनी ताकत से ऊँचाई तक ऊपर उठ गये हैं। उन्होंने किसी सीढ़ी का सहारा नहीं लिया।"[3]

1- राष्ट्रीय स्वाधीनता और प्रगतिशील साहित्य, पृ0 124 रामेश्वर शर्मा

2- नई कविताओं में वैयक्तिक चेतना, 1979 अवधनारायण त्रिपाठी

3- त्रिलोचन के काव्य, राजू एम0फिलीप, पृ0 39

त्रिलोचन की काव्य यात्रा के समानान्तर हिन्दी कविता के कई रूप देखने को मिले हैं किन्तु त्रिलोचन का स्वर वाद परम्परा की भूल भुलैया में कभी खोया नहीं और सभी धाराओं के कवियों ने उन्हें अपनाने की चेष्टा की। इसका इ रहस्य यह है कि त्रिलोचन सदैव अद्यतन बने रहते हैं। किसी धारा से चिपकना उनका स्वभाव नहीं है। इनकीइसी विशेषता की ओर इंगित करते हुए एक आलोचक ने लिखा है —"इतनी लम्बी रचना यात्रा में त्रिलोचन सतत समकालीन और आधुनिक बने हुए हैं और एक सम्पूर्ण देशी कविता का वृहत् आकार बनाते रहे हैं एक अबाध अजस्र रचनास्त्रोती की तरह निरन्तर समकालीन बने रहने की क्षमतावाली ये कविताएँ हमसे आश्वासन देकर कहती हैं —

"जीवन जब तक शेष रहेगा, तब तक धारा
इसी तरह निर्बाध बहेगी ......

त्रिलोचन जी की कविताएँ चिरन्तन कविता की हमारी समझ को साफ करती है।"[1] त्रिलोचन के विषय में अजय तिवारी का निम्नलिखित कथन विचारणीय है। "त्रिलोचन की कविता में सुमन जैसा ओज और प्रवाह नहीं है, वे कवि होने के साथ ही शास्त्री भी है।"[2]

इसका तात्पर्य यह है कितिवारी जी ने त्रिलोचन की परवर्ती काव्य रचनाओं का अध्ययन नहीं किया। यदि वे तुम्हें सौंपता हूँ'की ओज प्रधान कविताएँ पढ़ लेते हैं तो सम्भवतः वे अपना दृष्टिकोण बदल देते। उनकी रचनाओं में अनेक कविताएँ ओज गुण से परिपूर्ण हैं। अरधान' संग्रहमें महाकुम्भ(1953) से सम्बन्धित कविताओं में ओज का जैसा प्रवाह मिलता है वह कम महत्वपूर्ण नहीं। यथा —

"पलक मारने में ये भीड़ भड़क्का
बांध के शिखर से सरका, पट गया वह गढ़ा

1- जीवन संघर्ष और जीवन सौन्दर्य के कवि त्रिलोचन,— ओमभारती(इन्दौर में पठित लेख) राजू एम0फिलीप त्रिलोचन के काव्य, पृ0 4।
2- नागार्जुन की कविता, पृ0 196

जो नीचे था और अनवरत धकम धका
निगल गया सैकड़ों को महाकाल था चढ़ा
अपने दल बल से फँसने वाला नहीं कढ़ा।'[1]

सम्भवतः आलोचक को त्रिलोचन के शास्त्री होने से कुछ(इलर्जी) है, यदि कहीं उनकी कविता में उनका शास्त्रीपन आड़े आता तो वे नगई महरा' चित्राजाब्बोरकर, 'भोरई केवट के घर' 'चम्पा काले-काले अक्षर नहीं चीन्हती' 'काशी का जुलाहा' जैसी लोक जीवन की रचनाएँ कैसे लिख पाते और 'अमोला' जैसी सहजतम रचना जो बैसवाड़ी में लिखी गयी है, कैसे लिख पाते। क्या गुलाब और बुलबुल' जैसी रचना करने में उनका शास्त्रीपन आड़े नहीं आता? अस्तु अजय तिवारी का उक्त आक्षेप बचकाना है, अभी उन्हें आलोचक बनने के लिए त्रिलोचन की समस्त रचनाओं का प्रगाढ़ अध्ययन करने की आवश्यकता है। सम्भवतः नागार्जुन और केदार का अन्ध-भक्ति ने त्रिलोचन में सहजता के दर्शन नहीं करने दिये। इसके विपरीत 'अमोला' के विषय में प्रसिद्ध आलोचक डा0 विश्वनाथ त्रिपाठी ने लिखा है कि यह त्रिलोचनकी सहजतम कृति है। इसका तात्पर्य यह है कि उनकी अन्य रचनाओं में भी सहजता विद्यमान है। अजय तिवारी भी विवश होकर त्रिलोचन की प्रशंसा में लिखते हैं — "उनके काव्य में जहाँ किसान जीवन के कर्म और संघर्ष, आशा और पीड़ा तथा शहर के उपेक्षित पीड़ित व्यक्तियों के जीवन की घुटन और उनमें छिपी मानवीयता के चित्र हैं वहाँ उनके संवेदनशील कवि व्यक्तित्व की समर्थझलक मिलती है।"[2]

इस विषय में मेरा कहना यह है कि संवेदनशील होना किसी भी समर्थ कवि का सर्वोच्च गुण माना जाताहै। अतः यह सिद्ध हुआ कि अव्यक्त रूप से ही सही तिवारी जी भी त्रिलोचन को उच्च धरातल का कवि मानते हैं।

1- अरधान, पृ0 45

2- नागार्जुन की कविता, पृ0 194

त्रिलोचन एक स्वस्थ कवि है। उनकी प्रगतिशीलता में भी इसी स्वस्थ रूप के दर्शन होते हैं। उन्हें मानवता से बेहद प्यार है। वे जीवन से न तो हार मानते और न कुण्ठित होकर आँसू बहाते हैं अपितु दुगुने उत्साह के साथ एक कर्म-योगी की भाँति आगे बढ़ते हैं और जन जागृति के गीत गाकर चेतना को उद्बुद्ध करते हैं। उनकी प्रगतिशीलता यथार्थवाद के परिवेश में उत्तरोत्तर विकसित होती गयी। केदार आदि में प्रगतिशीलता का यह क्रमिक विकास देखने को नहीं मिलता। केवल नागार्जुन ही ऐसे कवि हैं जो इस क्षेत्र में त्रिलोचन से आगे हैं। जिस प्रकार नागार्जुन का भौतिकवादी रूझान विकसित हुआ है उसी प्रकार त्रिलोचन की भी भौतिक-वादी विचारधारा उत्तरोत्तर विकसित होती गयी है। इस प्रकार त्रिलोचन प्रगतिशील काव्यधारा के ऐसे समर्थ कवि हैं जोअपनी समग्रता के कारण केदार शमशेर और शिवमंगल सिंह सुमन जैसे कवियों सेअधिक समर्थ प्रतीत होते हैं। यद्यपि प्रगतिशीलता में नागार्जुन उस धारा के सर्वाधिक समर्थ कवि लगते हैं किन्तु भाव, कल्पना, बुद्धि और भाषा-शैली की दृष्टि से विचार करने पर त्रिलोचन नागार्जुन से भी अधिक समर्थ कवि सिद्ध होते हैं। त्रिलोचन की मौलिकता, सहजता और काव्यात्मकता पर गम्भीरता पूर्वक विचार करने से मेरे इस कथ्य की पुष्टि होती है।इसलिएअनेक आलो-चक इस बात से सहमत हैं कि त्रिलोचन जी अपनी कविताओं में बातचीत की सहजता और स्वाभाविकता को कायम रखने के प्रति अत्यन्त सावधान और सतर्क हैं। किसी तरह के शब्द मोह और तुक मोह के वे शिकार नहींहोते और कथन भंगिमा की आसक्तियों से मुक्त रहते हैं। उनका मूल कथ्य पारदर्शी होता है जिसके समक्ष काव्य के अन्य उपादान गौण हो जाते हैं।

इस प्रकार त्रिलोचन जी की कविताओं में पारदर्शिता का अद्वितीय गुण विद्यमान है। वे उसके माध्यम से इस ऐहिक जगत की अचूक अभिव्यक्ति करने में पूर्ण समर्थहैं। उनकी विषयवस्तु जीवन की है, जीवन से ली गयी है और जीवन

केलिए है। प्रगतिशीलता की जितनी भी परिभाषायें हैं उन सभी दृष्टियों से त्रिलोचन का काव्य खरा उतरता है। डा0 नगेन्द्र का मत है कि " जो साहित्य द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी दृष्टि से जीवन कोआगे बढ़ाने में सहायक हो वही प्रगतिशील साहित्य है। कहना न होगा कि त्रिलोचन ने प्रगतिशील यथार्थवादी दृष्टि से जीवन को जिया है और उसी दृष्टि से उसका चित्रण भी किया है। इसलिए राजू एम फिलीप का मत है कि —"छायावाद के बाद जो प्रगतिवादी आन्दोलन हुआ उसको आगे विकसित करने में त्रिलोचन शास्त्री का महत्वपूर्ण योगदान है। प्रगतिशील काव्य की सबसे स्वस्थ परम्परा उनके माध्यम से प्रवहमान होती दिखाई देती है।"[1]

त्रिलोचन की कवितायें न तो दुरूह हैं न तो दुर्बोध उनके अतिरिक्त बुद्धिवाद की प्रखरता भी नहीं है। न तो उनमें कुण्ठाओं का जल है और न कामुकता की अश्लीलता वेकिसी वाद के कटघरे में नहीं आए और न किसी आन्दोलन से पारचारित्त हुए। उन्होंने अपने सामयिक दायित्व को भलीभांति निबाहाहै। उनमें जो समाजोन्मुख संस्कार हैं वे बड़े ही प्रबल और जनजीवन के पक्षधर हैं। डा0शम्भूनाथ मिश्र का कथन है —"कविता की नयी दृष्टि मुझे त्रिलोचन से मिली है।" नयी पीढ़ी के निरन्तर सान्निध्य से त्रिलोचन जी अपना पुरानापन जगह-जगह छोड़ते आये हैं और आज बराबरी के स्तर पर ये नई पीढ़ी से बात कर लेते हैं तथा नयी पीढ़ी भी उन्हें अति की हद तक शिष्टता पूर्वक बरर्दाश्त करलेती है।"[2]

निष्कर्ष रूप में त्रिलोचन में कबीर-तुलसी और निराला के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को सहज समन्वय दिखलायी पड़ता है। वे तुलसी की भांति मानवकल्याण के कवि हैं। तुलसी बाबा भाषा मैंने तुमसे सीखी' उनके इस कथन से यह स्पष्ट है कि वे तुलसी को अपनी भाषा का आदर्श गुरू मानते हैं। उनके विचारों में स्पष्टता

1- त्रिलोचन के काव्य - राजू एम0फिलीप, पृ0 159

2- वही, पृ0 163

ओज, मौलिकता एवं निर्भीकता के जो दर्शन होते हैं उनमें कबीर के प्रभाव से इन्कार नहीं किया जा सकता। कबीर से ही उन्होंने यथार्थवादी दृष्टि अपनाई। जाति-पाँति का खण्डन सीखा और सामाजिक विद्रोह का सबल स्वर पाया है। इसके अतिरिक्त वे निराला की भाँति स्वभाव से अक्खड़ हैं। नवीन छन्दों के निर्माण में सिद्धहस्त हैं। जिस प्रकार निराला ओज और पौरूष के कवि है, उनका यथार्थ एक भुक्त भोगी का यथार्थ है। उनकी चेतना में गम्भीर सत्यता है उसी प्रकार ये समस्त विशेषताएँ त्रिलोचन में भी विद्यमान है।

अतः काव्यात्मक दृष्टि से त्रिलोचन के समग्र साहित्य का मूल्यांकन करने पर वे प्रगतिशील कवियों में मूर्धन्य स्थान केअधिकारी हैं और प्रगतिशीलता की दृष्टि से वे शमशेर केदार, सुमन, गिरिजा कुमार माथुर आदि से भी उच्चतर धरातल पर प्रतिष्ठित होने योग्य हैं। केवल नागार्जुन ही ऐसे समर्थ कवि है, जिन्हें हम इनसे भी अधिक समर्थ प्रगतिशील कवि कह सकते हैं। इस प्रकार त्रिलोचन प्रगतिशील-कवि-परम्परा में अद्वितीय स्थान के अधिकारी है। उनमें उदार-मानवतावादी-दृष्टि, प्रगतिशील चेतना, स्वस्थ प्रेम, सहज व्यंग्य रचनात्मक क्रान्ति, ग्राम्य-जीवन की प्रखर-अनुभूति, आशावाद, दलितवर्ग के प्रति करुण दृष्टि, संघर्ष के प्रति प्रबल उत्साह, देश-प्रेम और मानवीयता, ईश्वर और धर्म का विद्रोह, रूढ़ियों तथा अन्धविश्वासों का विखण्डन, नवीन-जीवन-मूल्यों की स्थापना और अखण्ड मानवतावादी दृष्टि के जीते-जागते चित्र विद्यमान हैं। इन्हीं विशेषताओं के कारण प्रगतिशील-काव्य-चेतना के पक्षधर कवियों में इनका शीर्षस्थ स्थान है।

मेरे विचार से त्रिलोचन में लोक जीवन का सहज अनुराग है। उनकी वाणी में ओज प्रसाद और माधुर्य इन तीनोंगुणों को अद्भुत सामंजस्य है। वे जीवन और प्रकृति को अपने रागात्मक संस्कारों से लिए हुए चलते हैं। वे जीवनपथ के भयंकर संघर्षों से निरन्तर जूझते हुए जो भी लिखते हैं उसमें उनका अनुभव बोलता

रहता है। वे इतने अधिक संवेदनशील हैं कि दुखी, असहाय, प्रपीड़ित और उपेक्षित के प्रति सहज ही में करुण हो जाते हैं और इनके सताने वालों के प्रति अपना प्रबल आक्रोश व्यक्त करते हैं। कर्मपथ का यह असाधारण पथिक दुर्गम्य-पथ में भी साहस करके चलता हुआ निर्भीकता के साथ लक्ष्य प्राप्त करने का संकल्प अक्षुण्ण रखता है। हारकर भी हार न मानना, निराशा के थपेड़ों से भी निराश न होना, झंझा के झकोरों से भी झुंझलाकर पराजय न स्वीकार करना, इनका स्वभाव है; जिसकी सशक्त झलक इनके काव्य में विद्यमान है।

अतः मैं एक वाक्य में कहूँगी कि त्रिलोचन प्रगतिशील-काव्यधारा की प्रथम पंक्ति के समर्थ कवि हैं, जिन्होंने एक ही साथ जीवन-संघर्ष की व्यापक-अनुभूतियों को काव्य-कौशल कीकलात्मक-अभिव्यक्ति देने में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की है। सन् 1945 से 1990 तक की समग्र कृतियों का मूल्यांकन होने पर ही त्रिलोचन के साथ पूर्ण न्याय होना सम्भव है।

अष्टम अध्याय

उपसंहार

अष्टम अध्याय

उपसंहार

प्रगतिशील कवि त्रिलोचन आधुनिक-हिन्दी काव्य-जगत् में प्रथम-श्रेणी के प्रगतिशील कवि हैं। इन्होंने 'सुल्तानपुर' जैसे पिछड़े जनपद में जन्म पाया और आर्थिक-संघर्ष और अशिक्षा के वातावरण में शैशव की साँस लेने के लिए विवश हुए। शिक्षा के क्षेत्र में भी उन्हें पग-पग पर आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा किन्तु अपनी कुशाग्र-बुद्धि और अपने अध्यवसाय, कठोर परिश्रम एवं लगन के कारण यह संस्कृत, अरबी, फ़ारसी, इंग्लिश आदि भाषाओं के उद्भट विद्वान बन गये।

त्रिलोचन में कवित्व का अंकुर कब, किस प्रकार और किस परिस्थिति में उत्पन्न हुआ, इस विषय में विचारकों में पर्याप्त मतभेद हैं। मैंने स्वयं त्रिलोचन जी से मिलकर जो जानकारी प्राप्त की है, उसके अनुसार जब वे अपने ननिहाल में प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त कर रहे थे, तभी उन्हें चरवाहे अहीरों के मुख से 'बिरहे' सुनने का सुअवसर प्राप्त हुआ। उनके संगीतात्मक-प्रवाह ने त्रिलोचन को उसी प्रकार की रचना की प्रेरणा दी। इसके अतिरिक्त ग्रामीण भाटों की संगति में त्रिलोचन को उनसे एक से एक सुन्दर कवित्तों को श्रवण करने का सुअवसर प्राप्त हुआ और उन्हें भी लगा कि मैं भी इसी प्रकार कुछ लिखूँ। फलतः उन दोनों तथ्यों ने त्रिलोचन के हृदय में काव्य सृजन के प्रति प्रेरणा जागृत कर दी। मैंने इनके जीवन का विस्तृत अध्ययन करने पर उनकी काव्य-प्रेरणा का एक अन्य हेतु भी खोज निकाला है — वह है — 'जीवन की पीड़ा' अथवा अनवरत-जीवन-संघर्ष', जिसने इन्हें आन्तरिक एवं बाह्य पीड़ाएँ देकर आत्माभिव्यक्तिके लिए उत्प्रेरित कर दिया है।

त्रिलोचन का पारिवारिक-जीवन अधिक सुखद नहीं कहा जा सकता। इतना अवश्य है कि उनकी धर्मपत्नी का अक्षय अनुराग ही इन्हें जीवन संघर्षों को पार करने में सम्बल देता रहा। खेद है कि वह सम्बल भी समाप्त हो चुका है और

दो पुत्रों के पिता का गौरव भले ही इन्हें प्राप्त हो किन्तु उनपुत्रों से इन्हें वह आत्मीयता प्राप्त नहीं है, जो एक वृद्ध पिता के लिए प्राप्तव्य है।

सम्प्रति त्रिलोचन का साहित्यिक सम्पर्क व्यापक है। शमशेर बहादुर-सिंह, केदारनाथ सिंह, केदारनाथ अग्रवाल, वी0एन0शाही, नागार्जुन आदि साहित्यकारों के अतिरिक्त प्रो0 विश्वनाथ त्रिपाठी, प्रो0परमानन्द श्रीवास्तव, फणीश्वर-नाथ रेणु, डा0रामविलास शर्मा, डा0कृष्णलाल हंस, विश्वनाथ मुखर्जी, डा0शिव-प्रसाद सिंह जैसे विद्वान् आलोचकों के बीच शास्त्री जी का निकटतम सम्पर्क है।

उन्होंने जीविका के लिए अनेक क्षेत्रों का चयन और परिवर्तन किया है। इसका कारण उनके स्वभाव का अक्खड़पन है और स्वाभिमानी प्रकृति ही है। इन्हें मार्क्सवादी विचारधारा से हार्दिक लगाव है और वह मानवतावाद के प्रबल-पक्षधर हैं। इन्हें अन्याय और उत्पीड़न सहन नहीं होता, इसलिए ये नये-समाज की संरचना के लिए आकुल हैं, क्रान्ति के गीत गाते हैं, और नये प्रभात का स्वागत करने के लिए जागरण की भैरवी सुनाते हैं। अपने अध्ययन, लगन, सृजन और बहुमुखी व्यक्तित्व के कारण ही आप सागर विश्वविद्यालय के अन्तर्गत "मुक्तिबोध-सृजन पीठ" के अध्यक्ष पद पर प्रतिष्ठित रहे हैं।

शास्त्री जी का कृतित्व असाधारण है। उनका प्रथम-काव्य-संग्रह 'धरती' के नाम से सन् 1945 में प्रकाशित हुआ। तब से 1990 तक 14 ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। उनकी बहुत कुछ अप्रकाशित रचनाएं भी हैं। अनेक खण्डकाव्य दो सौ से अधिक कहानियाँ, पाँच नाटक, पाँच एकांकी और बाल-साहित्य आदि इसी प्रकार की रचनाएं हैं। इस प्रकार इन्होंने अपनी काव्य-यात्रा के चार दशक पूर्ण कर लिये हैं और अभी इनसे अनेक सम्भावनाएं हैं। इनकी रचनाओं की विशेषता यह है कि इन्होंने अंग्रेजी के 'सॉनेट' छन्द को हिन्दी में उतार कर अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। इसी प्रकार 'गुलाब और बुलबुल' एक ऐसा संग्रह है, जिसमें रूबाइयाँ एवं गजलें संगृहीत हैं। इसकी विशेषता यह है कि इसमें हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल ही रचना-

कौशल प्रदर्शित किया गया है। 'अमोला' नामक काव्य संग्रह तो बैसवाड़ा जनपद की कृषक भाषा में ही लिखा गया है, जो इनकी लोकभाषा रूचि का द्योतक है। इसमें ढाई हजार बरवै छन्दों का प्रणयन करके कवि ने अपने को बरवै छन्द का सम्राट् ही सिद्ध कर दिया है।

यद्यपि त्रिलोचन जीवन के आशावादी कवि हैं, उन्हें अखण्ड-मानवता से असीम प्यार है, किन्तु वे काव्य की परम्परित रसात्मकता की भी रक्षा करते हैं। उनकी रचनाओं में श्रृंगार आदि विभिन्न रसों का सुंदर परिपाक हुआ है। उनकी अनेक रचनाओं में श्रृंगार के संयोग-पक्ष और वियोग-पक्ष, दोनों का यथार्थ-परक चित्रण मिलता है। उन्होंने प्रेम का स्वस्थ एवं कर्मठ रूप प्रस्तुत किया है, जिसमें स्पष्टवादिता, गम्भीरता और आशावादी स्वर की प्रधानता है। वे कृषक, मजदूर, शोषित, पीड़ित और असहाय के प्रतिगहरी सहानुभूति व्यक्त करते हैं। ऐसे प्रसंगों में कभी करूण और कभी रौद्र होकर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं और कभी वीर रस के आवेश में आकर क्रान्ति का आह्वान करते हैं। वे आर्थिक-वैषम्य से तिलमिलाते तो हैं किन्तु घबराते नहीं। गिर-गिर कर उठते हैं और पराजय में भी विजय के गीत गाते हैं। वे ग्राम के हैं और ग्राम उनके हैं। इसलिए ग्राम्य-जीवन उनकी कविता का ही नहीं, अपितु उनके हृदय का एक अभिन्न अंग बन गया है। वैसे तो वे नागरिक जीवन की भी अच्छाइयों और बुराइयों का परिचय देते हैं। उनका व्यंग्य बड़ा सशक्त होता है। कभी प्रशासन पर, कभी प्रजातंत्र पर और कभी समाज के शोषक पूंजीपतियों पर वे निर्मम होकर प्रहार करते है और यथार्थचित्रण में तो उस समाज को ही नहीं, अपितु भगवान् को भी कोसते हैं और इस परम्परा में वे अपने को भी नहीं छोड़ते।

त्रिलोचन का प्रकृति केप्रति असाधारण अनुराग है। प्रकृति उनकी चिर-सहचरी है। वे सहज भाव से उससे मिलते-जुलते हैं। हिलमिल कर बातेंकरते

हैं- और उसे विभिन्न रूपों में देखने का प्रयासकरते हैं। कभी उसका मादक रूप, कभी भव्य रूप, कहीं कोमल रूप, कहीं भीषण रूप और कहीं अद्भुत रूप इन्हें बार-बार लुभा लेता है और वे बड़ी ही तत्परता के साथअपने हृदय के कैमरे से उसके इन सभी चित्रों को सावधानी से उतार कर अपने पाठकों के लिए दे देते हैं। इसी प्रकार सूक्ष्म-दृष्टि से देखने पर ज्ञात होता है कि उन्हें प्रकृति का आलम्बन रूप अधिक प्रिय है। विशेष रूप से गीतिकाव्य के सृजन में प्रकृति का यह आलम्बन रूप इतना सुन्दर और सफल बन जाता है कि हमें छायावादी गीतों की प्रकृति का स्मरण हो आता है। उनके प्रकृति-चित्रण की यह अपर विशेषता है कि उसमें कवि की प्रगतिशील दृष्टि बराबर नियन्त्रण बनाये रखती है, जिससे उसके पैर धरती की सीमा का अतिक्रमण नहीं कर पाते और वह जीवन के कन्धा से कन्धा मिलाकर प्रगतिशील बनी रहती है।

त्रिलोचन का काव्य, जीवन के लिए है। जीवन की विसंगतियों से लोहा लेने के लिए है और जीवन को नयी दिशा देने के लिए है। वे अपने काव्य में काव्य-सौन्दर्य का अनावश्यक प्रदर्शन नहीं करना चाहते। इसलिए वे काव्यमें अलंकार-सौन्दर्य की ओर विशेष ध्यान नहीं दे पाते किन्तु जब हम शोध-परक-दृष्टिसे उनके काव्य की समीक्षा करते हैं तब हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि उनकी काव्य-कृतियों में अलंकार,-सौन्दर्य का सहज रूप विद्यमान है। वे शब्दालंकारों में 'वीप्सा' का प्रयोग अधिक मात्रा में करते हैं और अर्थालंकारों में साम्यमूलक अलंकारों की ओर उनका ध्यान सहज रूप में आकृष्ट हो जाता है। उनकी उपमायें अनूठी हैं, रूपकों का तो कहना ही क्या है और उत्प्रेक्षाओं के तो उद्यान ही लगा दिये हैं। उनकी उपमाओं में प्रगतिशीलता, नवीनता एवं उदात्त कौशल के दर्शन होते हैं। उनका चयन प्रकृति अथवा जीवन के क्षेत्र से किया गया है। मानवीकरण, विशेषण-विपर्यय और ध्वन्यर्थ-व्यंजना, जैसे नवीन अलंकार अपने स्वाभाविक रूप में उपस्थित हुए हैं और कल्पना

सौन्दर्य के अनेक उदाहरण त्रिलोचन के काव्य को समलंकृत कर देते हैं, जिनसे काव्य में प्रवाह, सरसता और नवीनता का सम्पुट उसे सरस बना देता है।

त्रिलोचन का काव्य बुद्धितत्व की दृष्टि से भी सराहनीय है। उसमें भावुकता तथा बुद्धिमत्ता इन दोनों में ऐसा सामंजस्य मिलता है, जो सभी प्रगतिशील कवियों में नहीं मिल सकता। न तो भावुकता का इतना ज्वार उमड़ जाता है कि बौद्धिक चेतना किंकर्तव्यविमूढ़ होकर कराहने लगे और न बुद्धिपक्ष ही इतना प्रबल हो पाता है कि भावुकता को साँस लेने का अवसर ही न मिले। त्रिलोचन ने यह असाधारण उत्तरदायित्व अद्वितीय क्षमता के साथ निभाने का सफल प्रयास किया है। वे साम्यवादी जीवन दर्शन से प्रभावित हैं, इसलिए उनकी रचनाओं में मार्क्सवादी-विचारधारा का स्पष्ट प्रभाव दिखलायी पड़ता है। वे मानव के अखण्ड-रूप के पक्षधर हैं। इसलिए देश और जाति की सीमायें स्वतः टूट जाती है और वे मानवतावाद के सफल पुजारी के रूप में हमारे सामने आते हैं। कृषक-जीवन के प्रति उनका असाधारण-अनुराग है। वे श्रम को जीवन की परिभाषा मानते हैं। कभी खेतों में, कभी खलिहानों में, कभी मजदूरों की बस्तियों में जा-जाकर बैठते हैं। उनका दुखदर्द उनकी हँसी-खुशी उनके रूदन और गान को सुनते और समझते हैं। उनकी पंचायतों में सम्मिलित होते हैं और शोषण के विरूद्ध क्रान्ति करने के लिए जनता-जनार्दन को जगाते हैं। इतना ही नहीं, जब वे हरी-भरी मटर को खिलखिलाती देखते हैं, तब प्रसन्नता से झूम उठते हैं। कभी खेतिहरों के साथ मिलकर घुघनी खाने का आनंद लेते हुए जन-जीवन के साथ तन्मय हो जाते हैं। ऐसे स्वरों में कवि की कविता कृतार्थ हो जाती है और कवि उनसे तादात्म्य स्थापित करके उन्हीं से भाषा लेकर आँखों देखी घटनाओं और दृश्यों का जो चित्रण कर देता है, वह काव्य की अक्षयनिधि बन जाती है।

त्रिलोचन का प्रगतिशील-साहित्य किसी घेरे में बन्द नहीं है, वह उन्मुक्त है। वह अन्य प्रगतिशील कवियों की भांति देशप्रेम और राष्ट्रीयता को संकुचित नहीं मानता, अपितु अपने देश भारत के प्रति अत्यन्त सहृदय होकर उससे आत्मीयता रखता है और उसकी प्रगति के गीत गाताहै। वह उस संस्कृति का विरोधी है जो हमें प्रगतिशीलता के मार्ग पर रोकती है। अतः रूढ़िवाद, वर्गवाद, ईश्वर-वाद जैसे परम्परित रूढ़िग्रस्त जीवन मूल्यों का वह विरोध करता है। राजनीति के राक्षसों से सतर्क होकर वह जनता को भी सतर्क करता है। पूर्णनिर्भीकता के साथ राजनीतिज्ञों की कटु आलोचना करता है, जो जनता को लूटने-खसोटने और धोखा देने में ही संलग्न हैं और उसी में अपने नेतृत्व की सफलता मानते हैं। वे समाज - वाद का पोषण करते हैं, नये समाज की रचना का दृढ़ संकल्प करते हैं और वर्ग-हीन-समाज की स्थापना का व्रत लेते हैं। वे चाहते हैं कि यदि कोईजाति हो, तो वह मानव-जाति। अन्य किसी भी जाति को मानना उनका स्वभाव नहीं है। वे समाज के ठेकेदारों और गद्दारों के प्रति अत्यन्त कटु हैं, जो किसानों और मजदूरों का शोषण करते हुए समाज के कोढ़ बने हुए हैं। उनका अत्याचारकवि को बर्दाश्त नहीं होता। भले ही उनकी जन्मभूमि चिरानापट्टी(सुल्तानपुर) ही क्यों न हो, उन्हें ऐसे विषाक्त वातावरण में रहना तक पसन्द नहीं है।

उक्त विचारों के अतिरिक्त त्रिलोचन ने अपने जीवन के अनुभवों को विचार बनाकर अपनी रचनाओं में व्यक्त करने का एक अद्भुत-कौशल अपनाया है। वह यह हैकि वे अपने प्रत्येक सॉनेट की अन्तिम दो पंक्तियों में कोई न कोई ऐसा गम्भीर विचार व्यक्त करते हैं, जो हमें जीवन की दिशा देता है, हमारा सम्बल बनता है और हमें भविष्य के प्रति सावधान करता है। ये सभी विचार केवल अध्ययन के आधार परही नहीं अपितुअनुभव के आधार पर व्यक्त किये गये हैं।

त्रिलोचन का भाषा पर असाधारण अधिकार है। वे एक भी शब्द व्यर्थ नहीं प्रयुक्त करते। भाषा के सम्बन्ध में उनका दृष्टिकोण अत्यन्त उदार है। खड़ी–

बोली के शब्दों के मध्य वे अपने आंचलिक शब्दों का ऐसा सटीक प्रयोग करते हैं, जिससे वाक्य में एक अद्भुत चमत्कार आ जाता है और अभिव्यंजना-शक्ति विकसित हो जाती है। वे लोकभाषा के परमभक्त हैं। उन्हें आंचलिक भाषा से स्वाभाविक लगाव है, इसलिए उन्होंने 'अमोला' शीर्षक ग्रन्थ में बैसवाड़े की कृषक बोली में सम्पूर्ण-ग्रन्थ की रचना की है, जो अपने में साहित्यिक गरिमा और अर्थ व्यंजना की क्षमता से परिपूर्ण है। उनका भाषा-पाण्डित्य अगाध है, इसलिए यदि उन्हें भाषा का 'डिक्टेटर' कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। वे जिस प्रसंग में जैसी भाषा चाहते हैं, वैसी ही शब्दावली अनायास उनकी लेखनी से निकल पड़ती है। यद्यपि त्रिलोचन के काव्य में प्रगतिशील-यथार्थ का प्राधान्य है किन्तु वे भाषा के स्तर को गिरने नहीं देते। इतना अवश्य है कि संस्कृत के अधिकृत विद्वान् होने पर भी उन्होंने तत्सम शब्दावली का अधिक प्रयोग नहीं किया। यह बात दूसरी है कि संस्कृत के तत्सम शब्दों का बहिष्कार भी नहीं कर सके। भाषा में प्रवाह और स्वाभाविकता लाने के लिए इन्होंने उर्दू और फारसी के शब्दों का भी प्रयोग किया है किन्तु यहाँ यह उल्लेखनीय है कि उनके काव्यों में उर्दू, फारसी के वही शब्द प्रयुक्त हुए हैं, जो लोक-व्यवहार में हिन्दी के साथ घुलमिल गये हैं। जनता के लिए लिखने वाला कवि इस बात से सदैव सावधान रहता है कि भाषा में क्लिष्टता और दुरूहता न आने पाये। त्रिलोचन की भाषा में भी यही गुण विद्यमान है। वह सरल, सरस और परिमार्जित है। कुछ कविताओं में तो भाषा का रूप अति साधारण हो गया है, जिसके आधार पर कुछ आलोचक इन्हें सीधी सपाट बयानी का कवि कहने की धृष्टता करते हैं। वस्तुस्थिति इससे भिन्न है। जब वे साम्यवाद के प्रचार-धरातल पर उतरते हैं, तब तो उनकी भाषा का रूप अति साधारण होता है। वे अभिधा के कवि लगने लगते हैं, लेकिन अधिकांश स्थलों में वे लक्षणा और व्यंजना के प्रचुर प्रयोग करते हैं, जिससे भाषा में गुरुत्व एवं गाम्भीर्य उत्पन्न हो जाता है। वे

लोकोक्तियों और मुहावरों का ऐसा सटीक प्रयोग करते हैं कि पाठक उन्हें पढ़कर चमत्कृत हो जाता है। त्रिलोचन अधिक रूप में अँग्रेजी के उन चलते-फिरते शब्दों का भी प्रयोग करते हैं, जिन्हें हम व्यावहारिक जीवन में हिन्दी के साथ प्रयुक्त करते हैं। जैसे —स्टेशन, डिस्ट्रिक्टबोर्ड, म्युनिसपैलिटी आदि। इस प्रकार त्रिलोचन की भाषा कृत्रिमता से लाखों कोस दूर है। उसमें पूर्ण शक्ति से व्याकरण के नियमों का पालन किया गया है। उनका एक-एक शब्द सधा हुआ होता है और उनके वाक्य तो कहीं अति लघु, कहीं अति-विस्तृत और कहीं मध्यम कोटि के होते हैं। उनमें अनेक स्थलों पर वक्रोक्ति-कौशल विद्यमान रहता है, जो बड़ी तीखी मार करता है।

त्रिलोचन की शैली के विविध रूप पाये जाते हैं। जहाँ पर सामाजिक विषमता, अन्याय और उत्पीड़न देखते हैं, वहाँ उनकी शैली में ओजस्विता का प्रवाह आ जाता है। जहाँ जन-साधारण के लिए या जनसाधारण के सम्बन्ध में कुछ लिखते हैं, वहाँ प्रसाद गुण का सागर हिलोरें लेने लगता है और जहाँ कवि जीवन के माधुर्य में रमता है या कोमल भावनाओं की तरंगों मे प्रवाहित होता हुआ मस्ती में डूब जाता है, वहाँ शैली में माधुर्य का सरस संचार देखते ही बनता है। विशेष रूप से 'सबका अपना आकाश' संग्रह के गीतों में माधुर्य-गुण की धारा प्रवाहित होती हुई देखी जा सकती है। जब कवि चिन्तन के क्षेत्र मे आह्वाहन करता है, तब उनके हृदय का दार्शनिक सघकर बोलता है। शब्द-शब्द में बौद्धिक उद्गार रह-रह कर बोलने लगते हैं और शैली में एक अपूर्व चमत्कार आ जाता है, जिसे हम विचारात्मक-शैली के रूप में समझ सकते हैं। त्रिलोचन के काव्य में विविध वर्णनों का प्राधान्य है, इसलिए वर्णनात्मक-शैली उनकी मुख्य शैली है, लेकिन वे अपने कला-कौशल से उसमें ऐसी सजीवता उत्पन्न कर देते हैं, जिससे उसमें चित्रात्मक-सौन्दर्य प्रस्तुत हो जाता है और वह वर्णन अत्यन्त रोचक तथा हृदयग्राही बन जाता है। इनकी व्यंग्यात्मक शैली भी विचित्र है। कभी शासन के प्रति, कभी समाज के प्रति व्यंग्य करने में कवि इस शैली

को अपनाता है। इसमें स्पष्टवादिता, तीक्ष्णता व प्रभावकारिता अधिक होती है। इसके अतिरिक्त कवि की उद्बोधन शैली भी सराहनीय है। इसके माध्यम से त्रिलोचन सुप्त-जनता को जगाने की चेष्टा करतेहैं। उनके निराश मन में आशा का संचार करते हैं। वे अपनी वाणी में उमंग भरकर भैरवी का स्वर संचार करते हैं, जिससे कर्मठता का शंखनाद होता है और जनशक्ति एकत्र होकर नये समाज की संरचना के लिए तैयार हो जाती है। उपर्युक्त शैली के अतिरिक्त त्रिलोचन ने आत्मपरक शैली, परिचयात्मक-शैली, प्रतीकात्मक शैली, संवेदनात्मक शैली और चित्रात्मक शैली में भी काव्य रचनायें की है। इनमें आत्मपरक शैली' प्रमुख है। जब वे कभी अपने विषय में कुछ तथ्य प्रस्तुत करना चाहते हैं, तब इस शैली का प्रयोग करते हैं। इस शैली की यह विशेषता होतीहै कि इसमेंकवि केवल आत्मकेन्द्रित ही नहीं रहता, अपितु यहाँ भी वह समाज के साथ संपृक्त रहता है और अपने माध्यम से वह समाज का भी संकेतात्मक चित्रण कर देता है। इसलिए जो लोग उन पर यह आरोप लगाते हैं कि त्रिलोचन प्रायः अपने ऊपर लिखते हैं, यह आरोप उनकी इस शैली का ज्ञान न होने के कारण ही लग पाताहै, जो सर्वथा भ्रामक है।

त्रिलोचन के काव्य में छन्दों का वैविध्य है। वेजहाँ 'सॉनेट' जैसे क्लिष्ट विदेशी-छन्द पर साधिकार लिखते हैं, वहीं पुरातन भारतीय छन्द 'बरवै' पर भी एकाधिकार रखते हैं। वे यदि संस्कृत वर्णवृत्तों — वंशस्थ, शिखरिणी, और द्रुतविलम्बित आदि कासफल प्रयोग करतेहैं, तो 'सवैया' और 'रोला' जैसे लोकप्रिय छन्दोंका भी ध्यान रखते हैं। इतना ही नहीं, वे उर्दू के 'शेर' और गजलें' पूरी सफलता के साथ लिखते हैं, जिससे छन्दों के विषय में उनकी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय प्राप्त होता है। लयात्मकता उनकी शैली का गुण है। चाहे अर्वाचीन छन्द हो या प्राचीन, सबमें लयात्मकता सुरक्षित रहती है। ये जापानी 'हाइकू' छन्द की भांति 'बूंद कविता' भी लिखते हैं जो कहीं सफल और कहीं निष्फल बिम्ब प्रस्तुत करती है।

त्रिलोचन का बिम्ब-विधान भी अद्भुत है। उन्होंने दृश्य बिम्बों के निर्माण में अपनी कलात्मकता का भरपूर प्रदर्शन किया है। इसके अतिरिक्त उनकी रचनाओं में श्रव्य-बिम्ब भी अपना महत्व रखते हैं। इन दो बिम्बों के अतिरिक्त स्फुटिक रूप से स्पर्श बिम्ब, घ्रातव्य बिम्ब, और आस्वाद्य बिम्ब के भी प्रयोग मिल जाते हैं। इस सब विशेषताओं के कारण हमें त्रिलोचन की भाषा-शैली अत्यन्त प्रभविष्णु और रोचक लगती है। अतः भाषा-शैली की दृष्टि से प्रगतिशील कवियों में त्रिलोचन के समकक्ष किसी अन्य प्रगतिशील कवि को स्थान नहीं दिया जा सकता। उनके भाषाधिकार के विषय में प्रमुख प्रगतिशील कवि केदारनाथ अग्रवाल ने भी मुझे बतलाया था कि प्रगतिशील कवियों में त्रिलोचन ही एक ऐसे कवि हैं, जिनका भाषा पर असाधारण अधिकार है।

त्रिलोचन जो कुछ भी लिखते हैं, मानव के लिए लिखते हैं। लोक-कल्याण की भावना उनके काव्य का मूलाधार है। वे दुखित- पीड़ित, दुर्बल, असहाय और शोषित जनों से विशेष सहानुभूति रखते हैं। सर्वोदय का सिद्धान्त उनके विचारों के सर्वथा अनुकूल है। इसलिए वे यथास्थान 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' का स्पष्ट प्रचार करते हैं। जब वे कभी दुखित मानवता को देखते हैं तब उनका हृदय करुणा से द्रवित हो जाता है और वे उसके साथ हो लेते हैं। श्रमिकों का पसीना उनसे देखा नहीं जाता। वे दैन्य के शृंगार हैं और श्रम के बल पर चिन्ता का बोझ उठाने के लिए जन-जन का आह्वान करते हैं। वे नहीं चाहते कि कोई भी व्यक्ति भूखा, नंगा, असहाय और उपेक्षित रहे। इसलिए वे सबको श्रम की गंगा में स्नान कराकर कृतकृत्य कर देना चाहते हैं। वे अन्याय के विरुद्ध क्रान्ति करने का बीड़ा उठाते हैं और ऐसे वर्गहीन, जातिहीन एवं सम्प्रदायहीन-समाज का निर्माण करने के लिए कृत संकल्प हैं, जो सर्वतंत्र-स्वतंत्र, बन्धन-विनिर्मुक्त और अखण्ड-मानवीय-चेतना के विश्वास पर संगठित हो। इस प्रकार त्रिलोचन की लोककल्याण भावना विदेशी साम्यवाद पर ही

आधारित नहीं है, अपितु भारतीय-परम्परा के अनुकूल स्वस्थ-समाज-कल्याण-कामना की आधार-भित्ति पर स्थित है।

प्रगतिशील कविता का अपना एक सुव्यवस्थित इतिहास है। वैसे तो प्रत्येक युग का काव्य अपने पूर्ववर्ती काव्य की तुलना में प्रगतिशील होता है, किंतु हमारा तात्पर्य उस प्रगतिशील कविता से है, जिसका श्रीगणेश 'भारतेन्दु-युग' से माना जाता है। जब हमारा देश अंग्रेजों के प्रभाव में आया, तब हमारे यहाँ पुनर्जागरण प्रारम्भ हुआ। रूढ़िवादिता में कमी आयी। विदेशी-शिक्षा का प्रभाव आया। अछूतोद्धार और नारी-जागरण के प्रगतिशील विचार पनपने लगे। क्रान्ति के नये नये स्वर गूंजने लगे और भारतेन्दु-मण्डल के कवियों ने नये युग की भूमिका रखने में अपनी कवित्व शक्ति का भरपूर प्रयोग किया। जागरण की इस नवीन दिशा में आगे चलकर द्विवेदी-युग में पर्याप्त कार्य हुआ। तत्कालीन कवियों ने प्रथम बार मानवीय शक्ति का महत्व समझा, श्रम की महत्ता स्वीकार की। स्वावलम्ब को जीवन का आधार बनाया और गाँधीवादी-विचारधारा के अनुसार छुआछूत के भूत को भगाने के लिए सबने समवेत-प्रयास किया। इस क्षेत्र में 'मैथिलीशरण गुप्त' की रचनाओं ने महत्वपूर्ण योगदान किया। इसी समय उपन्यास सम्राट् मुंशी प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों और कहानियों के माध्यम से प्रगतिशीलता का शंखनाद कर दिया।

इस प्रकार मेरी दृष्टि से प्रगतिशीलता का विधिवत् प्रारम्भ उन्नीस-सौ पैंतीस से ही मानना चाहिए, जबकि फ्रान्स में प्रगतिशील-लेखक-सम्मेलन का आयोजन किया गया था। इसी परम्परा में 1936 में लखनऊ में प्रगतिशील-लेखक-संघ की स्थापना की गयी थी, जिसमें मुंशी प्रेमचन्द अध्यक्ष पद पर निर्वाचित हुए। इस समय तक हिन्दी-काव्य के क्षेत्र में छायावाद अपने वायवीपन, असामाजिकता और अस्पष्टता के कारण साहित्य से विदा ले चुका था। इधर रोटी-धोती की जटिल समस्या से जूझता हुआ समाज अपनी इस विषम स्थिति की अभिव्यक्ति के लिए छटपटा रहा था। फलतः

कालमार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के प्रभाव से प्रगतिवादी काव्य का जन्म हुआ और छायावाद के ही स्तम्भ कविवर सुमित्रानन्दन पन्त जी प्रगतिवादी बन गये और 1938 में उन्होंने रूपाभ' शीर्षक पत्रिका निकाल कर प्रगतिवाद काप्रचार किया था। निराला तो अपने उपन्यासों में ही नहीं अपितु 'भिक्षुक' जैसे अनेक कविताओं के माध्यम से भी प्रगतिवाद का समर्थन करने लगे थे। यह प्रगतिवाद प्रगतिशीलता की ही एक प्रारम्भिक कड़ी के रूप में स्वीकृत है। इस सन्दर्भ में तथाकथित 'हालावाद' भी प्रगतिशील-चेतना का ही परिचायक है। प्रगतिवादी कवियों में पंत, नरेन्द्र, शिवमंगल सिंह सुमन, केदारनाथ अग्रवाल' रामेश्वर शुक्ल'अंचल'डा0राम-विलास शर्मा, रांगेय राघव आदि के नाम उल्लेखनीय है, जिन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा प्रगतिशीलता की पुष्टि की है। जब 1942 से प्रयोगवाद साहित्य के क्षेत्र में अपनी विशिष्ट-शिल्पकारिता को लेकर उपस्थित हुआ, तब वहाँ भी प्रगतिशीलता को प्रश्रय मिला। 'अज्ञेय' इस प्रयोगवादी-धारा के नायक सिद्ध हुए और उन्होंने नग्न-यथार्थवाद तथा यौन वर्जनाओं एवं कुण्ठाओं का काव्यात्मक प्रयोग किया। तारसप्तकों के माध्यम से जो काव्य रचा गया उसमें भी प्रगतिशीलता का रूप पाया जाता है। जब प्रयोगवाद का सुधरा हुआ रूप 'नयी कविता' के रूप में उभरा, तब भवानी-प्रसाद मिश्र, शमशेर बहादुर सिंह, गजाननमाधव मुक्तिबोध, नागार्जुन, गिरिजाकुमार माथुर विजयदेव नारायण शाही, कीर्ति चौधरी, मदनवात्सायन आदि अनेक कवि प्रगतिशीलता के समर्थक के रूप में सामने आये और प्रगतिशील कविता पुनः जनजीवन से जुड़ गयी। इस समय प्रगतिशील कवियों में नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, शमशेर बहादुर-सिंह, गिरिजा कुमार माथुर, धर्मवीर भारती, केदारनाथ सिंह तथा 'त्रिलोचन' प्रगतिशील कवियों में अग्रगण्य हैं।

प्रश्न यह है कि प्रगतिशील कवियों में त्रिलोचन का क्या स्थान है? मेरे विचार से प्रगतिशीलता के मुख्य बिन्दुओं को जिस कवि ने जितनी मात्रा में प्रकट किया है वह कवि उतना ही श्रेष्ठ प्रगतिशील कहलाने का अधिकारी है। प्रगतिशीलता

के निम्नलिखित बिन्दु हैं। (1) पीड़ित मानवता के प्रति गहरी सहानुभूति (2) समाज और शासन में व्याप्त भ्रष्टाचार और अमानवीयता पर कठोर व्यंग्य (3) रूढ़ियों तथा अन्य परम्पराओं का खण्डन (4) नवीन जीवन मूल्यों की स्थापना (5) देशप्रेम, राष्ट्रीयता और मानवतावाद पर निष्ठा (6) व्यंग्यात्मकता (7) आशावाद, स्वच्छ-प्रेम और प्रगतिशील चेतना (8) ग्राम्य-चित्रण। इन सभी दृष्टियों से विचार करने पर नागार्जुन प्रगतिशील कवियों में सर्वश्रेष्ठ पद के अधिकारी हैं और उनके पश्चात् त्रिलोचन को द्वितीय स्थान देना न्यायसंगत है। यदि भाव, कल्पना, बुद्धि और शैली इन चार काव्य तत्वों की दृष्टि से प्रगतिशील कवियों की समीक्षा करें, तब हम इस निष्कर्ष पर पहुंचेंगे कि त्रिलोचन की तुलना में कोई भी प्रगतिशील कवि नहीं टिक पाता। नागार्जुन भी उनकी भाषा-शैली की तुलना में नहीं ठहर पाते, क्योंकि उनका भाषायी-स्तर जन-जीवन के अतिशय समीप है और उनका अध्ययन भी त्रिलोचन की भांति बहुमुखी एवं व्यापक नहीं है। इसके अतिरिक्त छन्दों की दृष्टि से कोई प्रगतिशील कवि इतना समर्थ नहीं लगता जो सॉनेट, 'बरवै', गजल और रूबाइयों के क्षेत्र के अतिरिक्त प्राचीन छन्दों में भी इतनी ही दक्षता रखता हो। भावुकता की दृष्टि से भी त्रिलोचन अधिक सहृदय हैं। वे पीड़ित मानवता के प्रति जितनी सहानुभूति रखते हैं वह किसी से छिपी हुई बात नहीं है और प्रेम तथा प्रकृति चित्रण में भी वे गम्भीर से गम्भीरतर और गम्भीरतम हैं। अतः उनका भावतत्व अत्यन्त मनोरम एवं उदात्त है। त्रिलोचन का कल्पना क्षेत्र भी उद्भावनाओं की पुष्कल राशि से परिपूर्ण है। उनके अलंकार-विधान से ही इस बात की पुष्टि हो जाति है, जबकि अन्य प्रगतिशील कवियों ने सरलता और सादगी के नाम पर कल्पना को अधिक प्रश्रय नहीं दिया। बौद्धिक दृष्टि से त्रिलोचन का चिन्तन पक्ष कम नहीं है। उनका 'शब्द' शीर्षक संग्रह उनके बौद्धिक-विचारों का लिखित दस्तावेज है, जिसमें उनका सूक्ष्म-चिन्तन व्यक्त होता है। इतनी गहराई तक चिन्तन करने के लिए किसी प्रगतिशील कवि ने प्रयास नहीं किया। इसके

अतिरिक्त प्रायः प्रत्येक सॉनेट की अन्तिम दो पंक्तियों में त्रिलोचन कोई विशेष-चिन्तन की बात रखते हैं और 'अमोला' शीर्षक संग्रह में तो प्रत्येक क्षेत्र का गम्भीर-चिन्तन अनुभव के रूप में व्यक्त किया गया है, जिससे कवि के बुद्धि तत्व पर महान आश्चर्य होता है।

अस्तु, अब समय आ गया है, जब निष्पक्षता के साथ त्रिलोचन के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का यथार्थ मूल्यांकन होना चाहिए। यदि प्रगतिशील कवियों की सूची में त्रिलोचन का नाम नहीं था, तो यह त्रिलोचन की कमी नहीं, अपितु काव्य के क्षेत्र में भी संकुचित वृत्ति का परिचय देने वाले उन वर्गवादियों का दोष है, जो त्रिलोचन की काव्य-सर्जना का स्वस्थ मूल्यांकन करने में असमर्थ रहे हैं। इस प्रकार मेरी दृष्टि में त्रिलोचन प्रगतिशील-काव्यधारा के शीर्षस्थ कवि हैं और भविष्य में जब उनके साथ निष्पक्ष होकर न्याय किया जायेगा, तब वे इससे भी अधिक महत्व और सम्मान प्राप्त करने के अधिकारी सिद्ध हो सकेंगे।

सहायक ग्रन्थ-सूची

श्री त्रिलोचन शास्त्री की रचनाएँ —

(1) धरती, 1945 ई0 नीलाभ प्रकाशन इलाहाबाद

(2) गुलाब और बुलबुल, 1956, राधाकृष्ण प्रकाशन

(3) दिगन्त, 1957

(4) ताप के तापे हुए दिन, 1980

(5) शब्द, 1980

(6) उस जनपद का कवि हूँ, 1981

(7) अरधान, 1983

(8) अनकहनी भी कुछ कहनी है:, 1985

(9) तुम्हें सौंपता हूँ, 1985

(10) फूल नाम है एक , 1986

(11) देशकाल, 1986

(12) सबका अपना आकाश, 1987

(13) चैती, 1987

(14) अमोला, 1990

अन्य ग्रन्थ :—

(1) त्रिलोचन प्रतिनिधि कविताएँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1985

(2) नागार्जुन की कविता, अजयतिवारी, वाणीप्रकाशन, नई दिल्ली, 1990

(3) समसामयिक हिन्दी कविता, विविध परिदृश्य, डा0गोविन्द रजनीश, देवनागर प्रकाशन, जयपुर, 3

(4) नये प्रतिनिधि कवि , हरिचरण शर्मा, पंचशील प्रकाशन, जयपुर —302003

(5) त्रिलोचन के काव्य, राजू एम0फिलीप, यात्री प्रकाशन दिल्ली, 1985

(6) हिन्दी साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, डा0कृष्णलाल हंस, ग्रन्थम रामबाग , कानपुर, 1968

(7) भारतीय काव्यशास्त्र, डा0कृष्णदत्त अवस्थी एवं यतीन्द्र तिवारी, ग्रन्थम रामबाग कानपुर 1972

(8) हिन्दी की प्रगतिशील कविता, डा0रणजीत, हिन्दी साहित्य संसार, प्रगतिशील प्रकाशन दिल्ली, 1971

(9) हिन्दी कविता : आधुनिक आयाम, डा0रामदरश मिश्र, वाणी प्रकाशन, दिल्ली। 978

(10) सिद्धान्त और अध्ययन - गुलाब राय, प्रगति प्रकाशन आगरा

(11) नयी कविता: स्वरूप और समस्याएँ, डा0जगदीश गुप्त, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, 1971

(12) आधुनिक हिन्दी साहित्य, डा0लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली

(13) हिन्दी साहित्य का इतिहास, डा0रामचन्द्र शुक्ल

(14) राष्ट्रीय स्वाधीनता और प्रगतिशील साहित्य, रामेश्वर शर्मा, मानव भारती प्रकाशन दिल्ली, 1956

(15) जीवन संघर्ष और जीवन सौन्दर्य के कवि त्रिलोचन - ओमभारती

(16) आधुनिक हिन्दी कविता, जगदीश चतुर्वेदी, दि मैकमिलन कम्पनी आफ इंडिया लिमिटेड दिल्ली, 1975

(17) नया हिन्दी काव्य, डा0शिवकुमार मिश्र, नेशलन पब्लिशिंग हाउस दिल्ली

(18) आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ, डा0नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली, 1974

(19) काव्य के रूप - गुलाब राय, आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली, 1970

(20) छायावादोत्तर हिन्दी कविता प्रमुख प्रवृत्तियाँ, डा0त्रिलोचन पाण्डेय, कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल, 1981

(21) नई कविता, डा0कान्त कुमार, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल 1972

(22) नई कविता स्वरू अौर समस्यायें, डा0जगदीश गुप्त भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन 1971

(23) हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना, डा0जनेश्वर वर्मा, ग्रन्थम रामबाग कानपुर 1974

(24) आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन-एम0एन0श्रीनिवास, राजकमल प्रकाशन दिल्ली-6 पटना -6

(25) भारत का इतिहास, को0अ0अंतोनोवा, गि0म0बोंगर्द लेविन ग्रि0ग्रि0कोतोव्स्की संशोधित संस्करण प्रगति प्रकाशन, 1981

(26) भाषा विज्ञान- भोलानाथ तिवारी, किताब महल, 1986

पत्र-पत्रिकाओं के नाम :—

(1) स्थापना — 6, अगस्त

(2) ऋतुगन्ध

(3) वन तुलसी की गन्ध — फणीश्वर नाथ रेणु

(4) सम्बोधन — प्रगतिशील लेखन का साहित्यिक त्रैमासिक

(5) उत्कर्ष — अंक दो, अक्तूबर 1987

—